हिन्दी सूफी काव्य में समन्वय भावना

माया मिश्र

पुस्तक के सन्दर्भ में

यद्यपि सूफी काव्य के विविध पक्षों को लेकर हिन्दी साहित्य में अनेक शोधकार्य हुए किन्तु तत्कालीन सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार सूफी कवियों ने जो विराट समन्वय की भावना प्रस्तुत की उसे स्वतन्त्र रूप से शोध का विषय नहीं बनाया गया जिसके परिणाम स्वरूप उनके देय को विस्तृत रूप से अध्ययन, चिन्तन एवं मनन की आवश्यकता प्रतीत होती रही इसी अभाव को पूरा करने के लिए यह शोध-ग्रन्थ एक महत्वपूर्ण सेतु सिद्ध होगा।

इस शाश्वत सर्वयुगीन हिन्दी सूफी कवियों की महत्ता निर्विवाद है, शोषण, उत्पीड़न और भौतिकता के गर्त में विलीन संस्कृति के ध्वंसावशेषों पर जब प्रेमाभिसिंचित नवयुग की संस्कृति का निर्माण होगा तब आध्यात्म से ओतप्रोत विश्वबन्धुत्व की भावना से प्रेम के एक सूत्र में बँधे समाज की रचना-प्रक्रिया में यह शोध-ग्रन्थ महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगा।

हिन्दी सूफी काव्य में समन्वय भावना

माया मिश्र

राधा पब्लिकेशन्स
नई दिल्ली 110002

हिन्दी सूफी काव्य में समन्वय भावना

माया मिश्र

राधा पब्लिकेशन्स
नई दिल्ली 110002
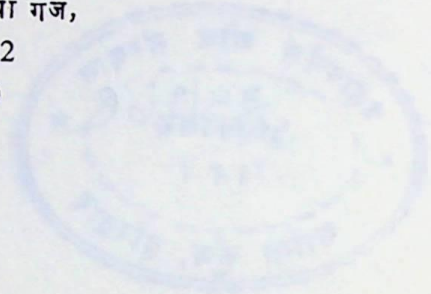
आमुख

भारतवर्ष विभिन्न संस्कृतियों, धर्मों और मान्यताओं का देश है। जिस प्रकार अनेक नदियां, समुद्र में जाकर उसी में अपने अस्तित्व को विलीन कर देती हैं उसी प्रकार विभिन्न संस्कृतियों और धर्मों ने मिलकर इसे विशाल आकार प्रदान किया। यही भारतीय संस्कृति की विशेषता है कि इसने सबको अपने में आत्मसात करके अपने अक्षुण्य रूप को बनाये रखा। समय-समय पर जब-जब कोई व्यक्तिक्रम उत्पन्न हुआ, तब-तब इस भारतभूमि में महापुरुषों ने अवतार लेकर इसकी एकता को सुदृढ़ बनाने का प्रयत्न किया। इस प्रसंग में महावीर स्वामी, महात्मा बुद्ध, रामकृष्ण परम् हंस, रामानन्द, कबीर आदि संत चैतन्य महाप्रभु, तुलसी, सूर आदि महापुरुषों का स्मरण किया जा सकता है।

भारत की इस विविधता के कारण उसका एक विशिष्ट स्थान है। जहां दुनियां के अन्य देशों में प्रबल सभ्यता और संस्कृति ने दुर्बल सभ्यता और संस्कृति को नष्ट करके एकाधिपत्य करने का प्रयास किया, वहीं भारतीय संस्कृति में इसके अपवाद स्वरूप परस्पर दो विभिन्न संस्कृतियां भी बन्धुभाव से पनपती और फूलती रही, इसी परिग्रहणशीलता और तन्मयता के कारण हिन्दू धर्म को अपोरूषेय धर्म कहा जा सकता है। इस देश की सर्व संस्कृतियों की समन्वयात्मक धर्म से युग-युग की साधना को जिस प्रकार गढ़ा गया उसी को हिन्दू धर्म कहना उचित है। धर्म साधना में इसी सन्मवय को सन्त कबीर ने 'भारत-पन्थ' कह कर सम्बोधित किया।

प्रत्येक युग के साहित्य के उद्‌बोधन हेतु कोई न कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रेरक शक्ति आवश्यक है। प्रेरणा का मानव जीवन में विशद और सतत् अनिवार्य स्थान है, प्रेरणा मानव जीवन की वह चालक शक्ति है जो मनुष्य को अनेक सुख-दुःख भोगने पर अनेक निराशाओं के होने पर भी जीवन जीने को प्रोत्साहित करती है ठीक इसी प्रकार साहित्य सृजन के पीछे एक उद्देश्य छिपा रहता है जो उस समय के समाज की प्रेरणा हुआ करती है। मानव जिन भावनाओं से जीवन में सुख व सन्तुष्टि पाना चाहता है। वैसे ही साहित्य की आकांक्षा भी वह करता है साहित्य

के ये प्रेरक तत्व तत्कालीन परिस्थितियों और देश में व्याप्त वातावरण के आधार पर होते हैं।

हिन्दी साहित्य के आविर्भावकाल में देश की राजनैतिक दशा बड़ी डावां-डोल थी। हिन्दी साहित्य का प्रथम चरण वीरता प्रधान तो था किन्तु आपस में राजनैतिक विषमता के कारण एकता का सूत्र टूट चुका था। इसका लाभ उठाकर विदेशी योवनों ने आक्रमण शुरू किया और क्षत्रियों की क्षीण शक्ति मुसलमानों से लोहा लेने में असमर्थ हो गई। इस प्रकार यवनों के उत्तरी भारत पर अधिकार हो जाने से ऐतिहासिक परिवर्तन तो हुए ही साथ ही साथ हिन्दू-मुस्लिम दोनों की सामाजिक धार्मिक और साहित्यिक विषमताओं से क्रान्ति की एक ज्वाला धधक उठी जिसके परिणामस्वरूप जन समूह में आत्मरक्षा, जीवनरक्षा, धर्म रक्षा आदि के लिए त्राहि-त्राहि मच गई। मुसलमानों की प्रवृत्ति हिन्दू धर्म को समाप्त करने की थी उनकी म्यान से निकली रक्त पिपासु तलवार के समक्ष हिन्दू जाति धर्म त्यागने तक को बाध्य होती जाती थी। मुसलमानों ने अपने धर्म का प्रचार करना ही एक मात्र उद्देश्य सामने रखा जिससे स्थिति और भी गम्भीर होती गई।

भारत में मुसलमानों के प्रभाव से दो ही धर्म शेष रह गए थे। एक राजधर्म (इस्लाम) दूसरा लोक धर्म (हिन्दू धर्म)। इस समय परवर्ती धर्म का प्रभाव भी भारतीय धर्म पर पड़ना प्रारम्भ हो रहा था। बहुत से मुसलमान अपने इस्लाम धर्म के प्रचार में लगे हुए थे। ऐसी विषम स्थिति में सन्त कबीर का आविर्भाव हुआ। अत: उन्होंने हिन्दू मुस्लिम धर्म के वैमनस्य को दूर करके दोनों में समन्वय पैदा करने के लिए बीच का रास्ता खोज निकाला। कबीर ने ऐसा धार्मिक सामंजस्य स्थापित किया जिसके फलस्वरूप हिन्दुओं में मुसलमानों की निर्गुण भावना को स्वीकारना प्रारम्भ कर दिया और मुसलमानों ने हिन्दुओं के धार्मिक विद्वानों को खुशी-खुशी अपनाना प्रारम्भ कर दिया। लेकिन कबीर की निर्गुणोपासना पद्धति जनमानस को पूर्ण रूपेण सरस बनाने में असमर्थ रही। ऐसे काल में नीरवता को मिटाकर सरसता लाने का कार्य सूफी भक्तों ने प्रारम्भ किया था।

चौदहवीं शताब्दी में निजामुद्दीन औलिया ने बंगाल में अपना धर्म फैलाया। इनके एक शिष्य हुसैन शाह ने 'सत्यपीर' नामक मत चलाया जिसका उद्देश्य हिन्दू और मुसलमान दोनों का धार्मिक एकता के रूप में बांधना था। इस मत का जन्म हिन्दुओं के सत और मुसलमानों के पीर को मिलाकर हुआ। जिसका लक्ष्य दोनों जातियों को एकता में बांधना था इतना ही नहीं, सूफी कवियों ने अपने भाव और विचारों द्वारा निर्गुण और सगुण का बेजोड़ उदाहरण प्रस्तुत किया।

यद्यपि सूफी काव्य के विविध पक्षों को लेकर हिन्दी साहित्य में अनेक शोध कार्य हुए किन्तु तत्कालीन सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार सूफी कवियों ने जो विराट समन्वय की भावना प्रस्तुत की उसे स्वतन्त्र रूप से शोध का विषय नहीं

बनाया गया जिसके परिणामस्वरूप उनके देय को विस्तृत रूप से समझने और देखने की आवश्यकता प्रतीत होती रही है। इसी अभाव में मुझे इस शोध कार्य के लिए प्रेरित किया। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि सूफियों ने हमारी संस्कृति की गहराई में पहुंचकर उससे जीवन के जिन तत्वों को निकाल कर सरल जीवन पथ का निर्माण किया उस पथ का निर्माण करने के लिए उन्हें जिस विदेशी सामग्री का उपयोग करना पड़ा और जिस प्रकार से वह इसमें सफल रहे, उनके इस समन्वयात्मक दृष्टि को जब तक प्रस्तुत नहीं किया जाता तब तक उनका मूल्यांकन अधूरा ही रहता है।

मैंने अपने इस शोध प्रबन्ध में सूफी काव्य में समन्वय भावना को दो खण्डों में विस्तृत रूप से स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। प्रथम खण्ड में 'सूफी काव्य में समन्वय की पृष्ठभूमि' सूफी कवि और उनका काव्य तथा समन्वय भावना के विविध प्रेरक तत्वों का वर्णन किया गया है। इसके द्वितीय खण्ड में समन्वय भावना के निर्धारक तत्वों का विभेद अनुशीलन एवं विश्लेषण करते हुए सूफी कवियों द्वारा निरूपित प्रेम पद्धति में समन्वय, दार्शनिक समन्वय, धार्मिक समन्वय, संस्कृतियों और सभ्यताओं में समन्वय, तथा साहित्यिक समन्वय का विशद अध्ययन किया गया है। इसके साथ ही साथ निष्कर्ष रूप में उन बिन्दुओं को भी प्रस्तुत किया है जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि आज के संघर्षशील युग में भी सूफी काव्य प्रेरक भूमिका निभा रहा है।

मुझे विश्वास है कि इस शोध-प्रबन्ध जो कुछ मान्यतायें स्थापित की है उसमें सुधिजनों का मुझे आशीर्वाद अवश्य प्राप्त होगा।

मैं सर्वप्रथम अपनी प्रबन्ध निर्देशिका डा० सरोजनी पाण्डेय के प्रति किन शब्दों में आभार व्यक्त करूं, जिन्होंने शोध कार्य की इतनी स्पष्ट रूपरेखा प्रस्तुत की कि मुझे शोध-साधना पूर्ण करने में अधिक कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा, समय-समय पर उनके बहुमूल्य सत्य परामर्शों से मैं बहुत ही लाभान्वित हुई हूं। इसके लिए मैं आजीवन उनकी आभारी रहूंगी। इसके साथ मैं डा० मुन्शी राम शर्मा 'सोम' जैसे आध्यात्मिक विद्वान के प्रति नतमस्तक हूं जिन्होंने इस शोध ग्रन्थ की उपयोगिता की वृद्धि हेतु अपने बहुमूल्य सुझाव दिए हैं।

कृतज्ञता ज्ञापन के इस अवसर पर मैं ब्रह्मावर्त डिग्री कालेज, मन्धना के प्रवक्ता डा० देवशंकर त्रिपाठी जी को कैसे विस्मृत कर सकती हूं जिन्होंने समय-समय पर अपने सुझावों से मुझे लाभान्वित किया है। किन्तु इसके लिए मैं शब्दों में आभार प्रदर्शन कर औपचारिकता का निर्वाह नहीं करना चाहती, बल्कि ऋणी रहना पसन्द करूंगी। इसके अलावा सामग्री संकलन में मैं पं० राजीव कृष्ण मिश्र एवं श्रीमती राकेश बाजपेयी की भी बहुत आभारी हूं, और प्रूफ शंसोधन में देवकी नन्दन शर्मा की भी आभारी हूँ साथ ही अपने छोटे भाई-बहनों के सहयोग को भी नहीं भूल सकती हूं।

मैं उन सभी विद्वजनों एवं अध्यताओं के प्रति भी अपनी हार्दिक कृतज्ञता निवेदित करती हूं जिनकी कृतियों के सूक्ष्मसूत्र संकेतों से भी मुझे अध्ययन की दिशा दृष्टि मिली है।

अन्त में मैं अपने उन परिजनों को भी नहीं भूल सकती, जिनके असीम स्नेह और सहयोग के बिना इस शोध प्रबन्ध की सृष्टि दुसाध्य थी। किन्तु उनके लिए कुछ लिखना, उनके सहयोग का अवमूल्यन करना है। बस, यही कामना है कि आगे भविष्य में मुझे इसी प्रकार उनका सहयोग और स्नेह प्राप्त होता रहे।

रामनवमी

—कु० माया पाण्डेय

अनुक्रमणिका

———

प्रथम खण्ड

प्रथम अध्याय

भारतीय समन्वयात्मक दृष्टि और समन्वय परम्परा

भारतीय समन्वयात्मक दृष्टि और परम्परा

समन्वय ही सृष्टि का आदि कारण है, और विभेदीकरण ही प्रलय का रूप लेता है, अतः समन्वय का मनुष्य के जीवन में अमूल्य महत्व है। विश्व के समस्त प्राणी उस अखिल, अनादि और अनन्त शक्ति (परमेश्वर) की सन्तान हैं। मनुष्य भी उनमें से एक है किन्तु अन्य प्राणियों से मानव श्रेष्ठ है क्योंकि उसके निर्माण में बुद्धि तत्व की अधिकता है और इसी तत्व के कारण परस्पर विचार वैषम्य बना रहता है। एक मानव दूसरे मानव के विचारों, भावों से भेद रखता है, किन्तु इसके बाद भी मूल रूप में उनमें एक साम्य की रेखा रहती है, जहाँ दोनों मिलकर एक हो जाते हैं, यह विशेषता हमारे भारतीय मानस में ही है अन्यत्र नहीं। भारत का तो मूलमंत्र ही अनेकता में निहित एकता का ही उद्घोष है। यह कोई कहने की बात नहीं है, क्योंकि इस विचारधारा का प्रमाण उसका आदिकाल से अब तक का इतिहास है, और यही कारण है कि यहाँ जितने महापुरुषों ने जन्म लिया उन्होंने अपनी पियूष स्त्रोतस्विनी वाग्धारा से इसी स्वर को विश्व में गुंजित किया, जिससे उनकी जननी जन्मभूमि का गौरव आकाश में पताका बनकर लहरा सका।

भारत एक विशाल देश है। यहां विभिन्न संस्कृतियों, धर्मों व सभ्यताओं ने प्रश्रय लिया किन्तु स्थिति कुछ विचित्र ही रही, जिस प्रकार अनेक नदियां समुद्र में जाकर अपना कुछ अस्तित्व न रख कर उसमें आत्म सात हो जाती हैं और समुद्र का वही स्थान बना रहता है, यही वास्तविकता इस भारतीय संस्कृति की है, कि इसने सबको अपने में मिला कर अपना रूप अक्षुण्य बनाये रखा। यद्यपि यह विचारधारा कभी-कभी स्खलित भी हो जाती थी, जिससे मानव मस्तिष्क में व्यक्तिक्रम उत्पन्न हो जाता था, ऐसी स्थिति में किसी महापुरुष ने भारतभूमि पर अवतार लेकर पुनः एकता का पाठ पढ़ाया, जिससे यह परम्परा बनी रही। इस परम्परा को बनाये रखने

वाले सच्चे संत—महावीर, बुद्ध, राम, कृष्ण, रामानन्द, रविदास, कबीर, नानक, चैतन्य, दादू और तुलसी, सूर जैसे महापुरुष ही आते हैं।

इसी विचित्रता के कारण भारत का अपना विशिष्ट स्थान है, क्योंकि अन्य देशों के अध्ययन से हम देखते हैं कि प्राय: एक प्रबल सभ्यता या संस्कृति अन्य दुर्बल सभ्यता या संस्कृति को नष्ट कर एकाधिपत्य चाहती है, जिससे मस्तिष्क और देश विश्रंखल हो जाता है। केवल यहीं यह बात देखने में आती है कि परस्पर दो विभिन्न संस्कृतियां भी पास-पास बन्धुभाव से निवास करती हैं। इसी परिग्रहणशीलता और समन्वयात्मकता के कारण हिन्दू धर्म को अपौरूषेय-धर्म कहा जा सकता है। भारत को हिन्दू भी कहा जाता है, इस देश की सर्व संस्कृतियों के समन्वयात्मक विधाता के निर्देश से जो धर्मयुग-युग को साधना से गढ़ा गया है उसे हिन्द (भारत) का हिन्दू धर्म कहना ही ठीक है। धर्म साधना में इस समन्वय को ही महात्मा ने 'भारत की तपस्या' कहा है। इसी से उनका पंथ 'भारत पंथ' कहलाया।[1]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अपनी इस उदार विचारधारा के कारण ही भारत 'भारत' बना है। अन्यथा इतनी लम्बी अवधि में विभिन्न संस्कृतियों के संघर्ष से भारत, महाभारत का स्थान (कुरुक्षेत्र) बन गया होता। अतः भारत का आदिकाल से ही समन्वयात्मक दृष्टिकोण रहा है जिसे महापुरुषों ने एक परम्परा का रूप दे दिया और अब वह परम्परा इतने दृढ़ और परिपक्व रूप में है कि अनवरत चलती रहेगी, जिससे भारत का शुभ्र किरीट अन्य देशों के मध्य सदैव स्फीत कान्ति से सुशोभित होता रहा है और सृष्टि के अन्त तक होता रहेगा।

भारतीय संस्कृति की विशिष्टता

भारतवर्ष धर्मपरायण देश है, अत: यहां का जन-जीवन धर्म से परिव्याप्त रहता है। मानव के आचार-विचार, दैनिक क्रिया-कलाप सभी कार्य धर्म से प्रभावित होकर एक सीमा रेखा में आवद्ध रहते हैं इसके साथ भारत की संस्कृति में आध्यात्मिकता, कर्मनिष्ठता, कल्याण भावना, और सार्वभौम सिद्धांतों पर आधारित समाज व्यवस्था आदि का पूर्ण समावेश है। समस्त जड़-चेतन प्रकृति के प्रति एकत्व की भावना में विश्वास रखने वाली एकमात्र भारतीय संस्कृति है।

अमृतत्व

भारतवर्ष में धर्म को मानने वाले लोगों की अधिकता है अत: यहां मनुष्य धार्मिक कार्यों से ज्यादा प्रभावित है। यहां की संस्कृति में धार्मिकता का समावेश

1. गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय साधना—डा० व्योहार राजेन्द्र सिंह, पृष्ठ 10।

अधिक होने के कारण भारतीय संस्कृति आध्यात्मिकता की क्रोड में ही पलकर अपने निरन्तर विकास को प्राप्त कर रही है इसी तथ्य की पुष्टि भारत के सुप्रसिद्ध धार्मिक विचारक एवं महान दार्शनिक श्री 'अरविन्द' ने अपनी पुस्तक Foundation of Indian Culture Spiritual aim of Indian Culture शीर्षक के अन्तर्गत की है—

'अन्य संस्कृतियों से इसकी भिन्नता का मूलभूत कारण भारतीय संस्कृति का आध्यात्मिक उद्देश्य है, जो उसमें बाहर से दिखने वाली जीवनगत बाह्य भिन्नताओं में मौलिक एकता प्रदान करता है।'[2]

इसके साथ-साथ धर्म यहां मानव के जीवन से इतना घुलमिल गया है कि मानव अपने संत्रस्त जीवन का त्राण उसी की छाया में प्राप्त करता है जब भी वह विभिन्न परिस्थितियों के चक्रव्यूह में पड़ जाता है तो धर्म के आंचल को पकड़कर ही वह उसका भेदन कर सकता है। डा० राधाकृष्णन ने Cultural Heritage of India शीर्षक में अपनी पुस्तक की भूमिका में लिखा है·········

'इस आध्यात्मिक उद्देश्य के कारण धर्म ही यहां के जीवन का आधार स्तम्भ बनकर उसे भयंकर परिस्थितियों के आघात-प्रत्याघातों से सुरक्षित भी रख सका है।'[3]

आध्यात्मिकता

भारतीय संस्कृति में यत्र-तत्र-सर्वत्र हमें भौतिकता और आध्यात्मिकता का जीवन-साथी के रूप में सम्बंध दृष्टिगोचर होता है। हमारा दर्शन निरंतर उच्च स्वर में यही उद्घोष करता है कि किसी एक का सम्बल, लेने पर जीवनयात्रा अधूरी और असफल ही रहती है, अत: जीवन के हर क्षेत्र में अध्ययन, अनुभव और क्रिया के परिणामस्वरूप दोनों का समन्वय ही अपेक्षित सिद्ध हुआ है इसी कारण उत्कृष्ट साधक एवं विचारक महर्षि अरविन्द ने दोनों की महत्ता बताते हुए कहा है—

'भारत सदैव भौतिक नियमों तथा शक्तियों की महत्ता की ओर सचेष्ट रहकर भौतिक-विज्ञानों के विकास की ओर उत्कृष्ट दृष्टिकोण अपनाता एवं सामान्य जीवन की समुचित व्यवस्था की कला से भली-भांति परिचित रहा है। परन्तु इसके साथ ही उसने यह भी साक्षात्कृत किया था कि अधिभौतिक शक्ति पर अधिष्ठित

---

2. मध्यकालीन हिंदी काव्य में भारतीय संस्कृति, डा० मदनगोपाल गुप्त, पृष्ठ 53 ।
3. कल्चरल हेरीटेज आफ इण्डिया, डा० राधाकृष्णन, भूमिका में ।

हुये बिना भौतिक यथार्थता की परिपूर्णता संभव नहीं है। उसके पीछे प्रक्षिप्त तथा मानव के अन्तर्गत भी अन्य ऐसी शक्तियां विद्यमान हैं जिनसे प्रायः अपरिचित आत्मशक्ति के बहुत छोटे से अंश से ही परिचित है तथा उसके सहित यह समस्त दृश्यमान एवं शान्त जगत उक्त अदृश्य एवं अनन्त शक्ति द्वारा आबद्ध है।'[4]

वस्तुतः मानव जीवन की सार्थकता उसमें आध्यात्मिकता के समावेश से ही है वह जीवन निस्सार एवं अन्धकारयुक्त है जो आध्यात्म की श्वेत एवं स्थिर ज्योति से ज्योतित नहीं हुआ। यही कारण है कि डा० राधाकृष्णन ने भी इस महत्व को स्वीकारते हुए लिखा है—

'भारतीयों ने भौतिक क्षेत्र में यथोचित उन्नति करके जीवनगत चरम-साध्य आध्यात्मिकता को ही स्वीकार किया है। भारतीय मानस पटल पर राजनीतिक विजेता, धनिक बड़े-बड़े सम्राट अथवा महान राजनीतिज्ञ उतना प्रभावी स्थान न प्राप्त कर सके जितना कि संत महात्मा ऋषिमुनि आदि सांस्कृतिक महापुरुषों ने सम्मान एवं श्रद्धा का साम्राज्य उनके अन्तःकरणों में स्थापित किया था।[5]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संसार में धन, ऐश्वर्य, बुद्धि, प्रतिष्टा आदि सभी से श्रेष्ठ आत्म-शक्ति है। इसी आत्म-शक्ति को प्रधान मानने वाले तथा उससे प्रेरित कार्य करने वाले ऋषि-मुनि निरन्तर प्राचीन काल से आज तक होते चले आ रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय संस्कृति अपने सुदूर अतीत से वर्तमान में भी निकट का सम्बन्ध रखने में समर्थ एवं सक्षम है।

लक्ष्ययुक्त एवं क्रमिक जीवन पद्धति

मानव का प्रत्येक कार्य सलक्ष्य होता है। अतः स्वाभाविक एवं आवश्यक है कि उसके जीवन का भी कोई निश्चित लक्ष्य होना चाहिये। इसी लक्ष्य को सदैव सम्मुख रखकर व्यक्ति जीवन-यापन करता है। मूलतः भारतीय संस्कृति में मनुष्य मात्र के जीवन का एक ही लक्ष्य 'मुक्ति-प्राप्त करना' बताया गया है। लेकिन भारतीय संस्कृति की निजी विशेषता 'समन्वय की भावना' के कारण उनके लक्ष्य में नैतिकता का समावेश भी है। अतः इसी दृष्टिकोण से पुरुषार्थ-चतुष्ट्य (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) के द्वारा लक्ष्य प्राप्ति सम्भव है।

---

4. मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति, डा० मदनगोपाल गुप्त, पृष्ठ 54।
5. मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति, डा० मदनगोपाल गुप्त, पृष्ठ 54।

इन चतुष्ट्यों में अर्थ और काम पूर्णतः भौतिक पदार्थ हैं अतः इनमें आध्यात्मिक किरण डालने से इनके सेवन व प्रयोग में कुछ विशिष्टता और नियमितता अवश्य बताई है। स्वार्थ की क्रोड में पलकर और दूसरे की इच्छाओं का हनन करके जो अर्थोपार्जन या कामोपभोग होता है, वह हमें दानव बना देता है और ऐसे ही तत्वों के परिणामस्वरूप हम शीघ्र ही अपने जीवन को विनाश, भय, दुःख आदि त्रस्त परिस्थितियों में जूझने के लिये डाल देते हैं, जिससे स्वतः ही जीवन, बोझ स्वरूप अनुभव होता है। इस सम्बन्ध में डा० सम्पूर्णानन्द ने अपनी पुस्तक समाजवाद के चौथे अध्याय में लिखा है—'काम-वासनाओं के वशीभूत होकर जीवन बिताना पशुप्रवृत्ति है, परन्तु आत्मसंयम द्वारा मनुष्य इस प्रवृत्ति से उठ सकता है।'[6]

इसमें अत्युक्ति न होगी कि भारत का इतिहास इस प्रकार के दृष्टान्तों से परिपूर्ण है, यहाँ बाल्यकाल में ही बालकों ने भौतिक सुखों का यावज्जीवन के लिये त्यागकर चरमसाध्य (मुक्ति) की प्राप्ति की। इस उच्चादर्श की तुलना पाश्चात्य संस्कृति से करते हुए डा० बी०एल० अज्ञेय ने अपनी पुस्तक 'भारतीय संस्कृति की आत्मा' में एक झलक दिखाई है—'पाश्चात्य देशों का सम्पूर्ण जीवन केवल उन भौतिक पदार्थों के अनुसरण में व्यतीत हो जाता है। जिन्हें भारत के नचिकेता तथा गौतम जैसे बालकों ने और मैत्रेयी जैसी नारियों ने जीवन का असन्तोषप्रद उद्देश्य समझकर परित्यक्त कर दिया था।'[7]

आज का मानव सामान्यतः दुःखी, चिन्ताग्रस्त, असंतुष्ट तथा निराशावादी बन चुका है जिसे धनोपार्जन तथा वासनात्मक सुखोपभोग के लिये अपनी समस्त शक्ति का अपव्यय करने के अतिरिक्त जीवन के किसी उच्चतर लक्ष्य का ज्ञान ही नहीं हो पाता है।

भारतीय संस्कृति में समाज-व्यवस्थापकों ने जीवन को चार अवस्थाओं में बाँटा है, और इसी को धर्म की भाषा में आश्रम के नाम से पुकारा है। जीवन की प्रारम्भिक 25 वर्ष की अवस्था तक ब्रह्मचर्याश्रम माना गया है। इसमें व्यक्ति अपने भावी यशस्वी जीवन के निर्माण हेतु शारीरिक एवं मानसिक योग्यता का संचय कर वृद्धि करता है, उसे आदर्श व्यक्ति के सानिध्य में रखकर सचरित्रता, नैतिकता, त्याग, संयम आदि सात्विक मानवीय गुणों के गृहणार्थ प्रेरित किया जाता है, क्योंकि यह अवस्था अधिक संस्कारमय होती है, इसके पश्चात् अवधि पूर्ण होने के बाद

---

6. समाजवाद, डा० सम्पूर्णानन्द, चतुर्थ अध्याय में।
7. मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति, डा० मदनगोपाल गुप्त पृष्ठ 56।

'गृहस्थाश्रम' में प्रवेश करता है और अपने परिवार के भरण-पोषण के लिये वह समुचित रूप से अर्थोपार्जन करता है, साथ ही संयमित रूप से काम-तृप्ति कर उत्तम-संतान उत्पन्न कर देशहित अपने कर्त्तव्य का पालन करता है। इस प्रकार 50 वर्ष तक गृहस्थाश्रम में रहकर वानप्रस्थ आश्रम बताया गया है, इसमें व्यक्ति अपनी अर्जित क्रिया-कलापों, स्वभाव, आदतों का परित्याग कर देता है, यह व्यक्ति की सबसे दुष्कर अवस्था है क्योंकि उसे स्वार्थ-वृत्ति परिवारिक स्नेह त्यागकर समाज सेवा और आध्यात्म-साधना में प्रवृत्त होना पड़ता है। इस आश्रम के सम्बन्ध में डा० राधाकृष्णन ने 'हिन्दुओं का जीवन दर्शन' में 'हिन्दू-धर्म' शीर्षक में लिखा है—इस आश्रम का आरम्भ तब होता है, जब व्यक्ति उत्तरदायित्व से मुक्त होने लगता है।[8]

चतुर्थ अवस्था 'संन्यास' की है। इसमें व्यक्ति अपनी इच्छाओं भावनाओं व इन्द्रिय सुखों का 'न्यास' करके उसे अन्तर्भूत कर लेता है। वह अपने सांसारिक सम्बन्धों को त्याग एवं स्वार्थ की सीमा-रेखा लांघकर लोक-कल्याण की कामना करता है। समस्त विश्व उसका अपना परिवार बन जाता है, और सृष्टि के कण-कण में उसे परम शक्ति का स्पष्ट रूप दृष्टिगत होता है। डा० राधाकमल मुकर्जी ने 'भारतीय समाज विन्यास' के शीर्षक, हमारी आश्रम-व्यवस्था में सन्याश्रम के महत्व को स्पष्ट किया है—

'ऐसा जीवन निर्वाह करने वालों की उपस्थिति सदा ही जीवन के इन सर्वोच्च आदर्शों की, त्याग, चिन्तन और आत्म साक्षात्कार की महत्ता का स्मरण दिलाती रहती है। संन्यास आश्रम की महत्ता एक और दृष्टि से सर्वोच्च है कि उसमें जाति-पाँति के विभेद और तज्जनित संकीर्णता के लिए कहीं स्थान नहीं है।'

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इस प्रकार चतुःसूत्रीय जीवन पद्धति से लक्ष्य की प्राप्ति भी सुगमता से सम्भव है और ऐसा लगता है कि इस प्रकार का क्रमिक रूप जीवन की तीर्थ-यात्रा है, जिसका अन्तिम लक्ष्य मुक्ति है, जो कि समय पर प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार के जीवन-यापन का वर्णन ही हमारे धर्म ग्रन्थों में वर्णित है, जिसे मानना हमारे लिये हितकर है।

सार्वभौम सिद्धान्तों पर आधारित समाज व्यवस्था

भारतीय संस्कृति की समाज व्यवस्था अन्य देश-विदेशों की समाज व्यवस्था से बहुत सीमा तक समता रखती है। पाश्चात्य में मनोवैज्ञानिक, सामाजिक सिद्धांतों, क्रिया-कलापों एवं रुचि के आधार पर वर्ग विभाजन है, उसे ही भारत की साहित्यिक

---

8. हिन्दुओं का जीवन दर्शन, डा० राधाकृष्णन, शीर्षक (हिन्दू धर्म)।

भाषा में वर्ण-व्यवस्था का नाम दिया गया। अधिकांशत: मानव प्रवृत्ति के अनुसार सभी वर्ग 4 प्रकार के अन्तर्गत ही आते हैं—(1) बुद्धिजीवी वर्ग (2) देश या समाज का शासन या रक्षण करने वाले अर्थात् 'शासक वर्ग' (3) व्यवसायी वर्ग (4) शारीरिक श्रम करने वाले या 'श्रमिक वर्ग'। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान कृष्ण की सुधास्त्रोतस्विनी वाणी से भी यही ध्वनि निनादित होती है—

'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः'[9]

अर्थात् 'हे अर्जुन ! गुण तथा कर्मों के विभाजन से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र मेरे द्वारा रचे गये हैं।'

इस वर्ग एवं कर्म विभाग के आधार पर निर्धारित अपने-अपने आदर्शों और नियमों का पालन ही करना चाहिये, क्योंकि दूसरों के आदर्शों को मानने वाले व्यक्ति प्राय: पथ भ्रमित होकर, यावज्जीवन अपने निश्चित उद्देश्य से विमुख ही बने रहते हैं। इसी तथ्य की विवेचना 'स्वामी विवेकानन्द' ने अपनी पुस्तक 'कर्मयोग' के 'अपने-अपने कार्य क्षेत्र में सब बड़े हैं।' शीर्षक में की है—

'वर्गगत विभिन्नता के कारण तत्सम्बन्धी आदर्शों की भिन्नता भी निश्चित होने के साथ-साथ अपने ही अदर्शों का अनुसरण सफलता का निश्चित मार्ग है, क्योंकि दूसरों के आदर्शों के अनुसरण से व्यक्ति सफल नहीं हो सकता।'

इस प्रकार भारतीय संस्कृति में अपने आदर्शों को त्यागने और अन्यों को ग्रहण करने की स्वतन्त्रता नहीं है, यह इसकी अपनी विशेषता है।

कर्म तथा पुनर्जन्म में विश्वास

कर्म तथा पुनर्जन्म में विश्वास मानने की विशेषता हमारी संस्कृति की वैयक्तिता ही है। इस सिद्धांत की पुष्टि के संसार में व्याप्त विविध भिन्नता से करते हैं, क्योंकि कोई तो विपुल साधन सम्पन्न है और कोई दो ग्रास रोटी को भी तड़प कर रह जाता है और कभी-कभी तो क्षुधा उसकी मौत का हेतु बन जाती है। अतः इसका कारण उन्होंने व्यक्ति के पूर्व तथा वर्तमान कृत कर्मों का परिणाम ही माना है। तात्विक दृष्टि से कर्म तथा पुनर्जन्म के सम्बन्ध में उचित जानकारी आवश्यक है। 'स्वामी विवेकानन्द जी' ने 'कर्मयोग' में कर्म की परिभाषा इस प्रकार दी है—

'हमारा हंसना, रोना, सुख-दुःख, धर्म विषाद हमारी शुभ कामनायें एवं अभिशाप, स्तुति और निन्दा ये सब हमारे मन के ऊपर हैं वहिर्गत के अनेक घात-प्रत्याघात के फलस्वरूप उत्पन्न हुए हैं और हमारा वर्तमान चरित्र इसी का फल है। ये सब घात-प्रतिघात मिलकर कर्म कहलाते हैं।'

---

9. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय-4, श्लोक क्रमांक-13, पृष्ठ 87।

इसी प्रकार पुनर्जन्म के सिद्धांत का प्रतिपादन 'श्रीमद्भगवद्गीता' में बड़े ही अलंकारिक ढंग से किया गया है—

'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृहाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा
न्यान्यानि संयाति नवानि देही ।'[10]

'महाभारतकार' ने पुनर्जन्म के कारण की ओर संकेत करते हुए लिखा है—

'कर्म उस बीज के समान है जो बार-बार उत्पन्न होता है तथा पाप और पुण्य के वश में होने वाले जीव को शुभाशुभ योनियों-शरीरों में जन्म धारण करने को बाध्य करता है ।[11]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कर्म, फल और पुनर्जन्म से कोई बच नहीं सकता । कर्म के अनुसार ही पुनर्जन्म मिलता है अतः हमें वर्तमान में कर्मों में सुधार एवं उच्चता रखनी चाहिये ताकि फल श्रेयस्कर हो यही संकेत हमें इस सिद्धांत से मिलता है ।

समस्त जड़-चेतन प्रकृति के प्रति एकत्व की भावना

भारतीय संस्कृति में आत्मतत्व की प्रमुखता समस्त सृष्टि के प्रति एकात्मता की भावना का विकास करती है । बाह्य दृष्टि से भले ही विविधता है, किन्तु आन्तरिक रूप से सूक्ष्म तत्व सभी में एक हैं, अतः स्वाभाविक है सभी में सुख-दुःख की अनूभूति एक ही होती है । भारतीय संस्कृति में विवेकशील वही है जो समत्व बुद्धि रखता है श्रीमद्भगवद्गीता में भी यही बताया गया है—

'तदबुद्धयस्तदात्मानस्तनिष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्ति ज्ञाननिर्धूत कल्मषाः ।।'[12]

अर्थात् हे अर्जुन ! जिनकी मन और बुद्धि निरन्तर एकीभाव से परमात्मा में स्थित रहती है । वे ही व्यक्ति परमगति को प्राप्त होते हैं, अतः वे ही सच्चे साधक हैं ।

भारतीय साहित्य प्रारम्भ से ही प्रकृति का ऋणी रहा है, प्रकृति मानव की उपदेशिका, सहचारिणी एवं प्रेरिका शक्ति के रूप में रही है यह हमारी एकात्मकता

---

10. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय-2, श्लोक-22, पृष्ठ 46 ।
11. महाभारत, वनपर्व, अध्याय-20, श्लोक 31-32 ।
12. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय-5, श्लोक 17 पृष्ठ 105 ।

की भावना का ही स्पष्ट प्रमाण है। हमें अपने सुख-दुःख की अनुभूति प्रकृति के सदृश ही हुआ करती है। इसके साथ ही प्रकृति के प्रति हमारी श्रद्धा एवं सहानुभूति की भावना भी रहती है, इसी कारण तुलसी वृक्ष रोपना और गंगा, यमुना, सरस्वती आदि नदियों को आदर देकर, उनमें स्नान-पूजन कर अपने कल्याण की कामना करते हैं, यह विशेषता अन्यत्र कहीं नहीं है।

लोक मंगल एवं लोक कल्याण की भावना

'उपर्युक्त विशिष्टता से स्पष्ट है कि एकात्मकता की भावना के कारण हम किसी की पीड़ा व कष्ट को कैसे सहन कर सकते हैं, अर्थात् प्रत्येक के सुख एवं कल्याण की कामना ही हमारी स्वाभाविक प्रवृत्ति बन जाती है। इस विशाल भावना के माध्यम से ही व्यक्ति यश और कीर्ति की ऊपरी और अन्तिम मंजिल तक पहुंच जाता है। अत: जो स्वत: को नष्ट कर समस्त को एकीकार कर लेता है वही मानव है। वास्तव में जीवन की सार्थकता दूसरों के काम आ जाने में ही है।

हमारे यहाँ के महापुरुषों का तो यही एक जीवन साध्य रहा है, इसी कारण 'स्वामी विवेकानन्द' ने 'कर्मयोग' पुस्तक में 'परोपकार' हमारा ही उपकार है, नामक शीर्षक में भारतीय संस्कृति के इसी दृष्टिकोण की पुष्टि की है—

'संसार नहीं, हम ही संसार के ऋणी हैं यह तो हमारा सौभाग्य है कि हमें संसार में कुछ कार्य करने का अवसर मिला है। संसार की सहायता करने से वास्तव में हम स्वयं का ही कल्याण करते हैं।'

इस प्रकार संसार के सभी कार्यों को अपना समझ कर करने से हमारे अन्य दोष की मूल 'अहं' का नाश होता है, जो कि हमारे दुःख और क्षोभ का कारण है। और इस अहं के नष्ट होने पर ही हमें आत्मज्ञान सम्भव है जो मुक्ति प्रदाता है, और इसी लक्ष्य की प्राप्ति ही हमारे अनेक जन्मों को ग्रहण कर साधनारत रहना है। निष्कर्षत: यही सर्वोच्च आदर्श है—आत्म-त्याग और इस आत्म-त्याग को सम्पूर्ण जीवन बनाये रखना ही साधना है। हमारे नैतिक आदर्शों की यही आधार शिला है, सभी आदर्शों में सूक्ष्म तत्व भी यही है।

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि आत्म त्याग की भावना जब प्राणी के जीवन में संचालित होगी तभी वह लोक कल्याण की भावना को सार्थक बनायेगा।

आर्य, अनार्य और द्रविड़ संस्कृतियों का सम्मिलन

हमारी प्राचीन सभ्यता कितनी उच्च थी, इस बात का प्रमाण इतिहास में वर्णित मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई से स्पष्ट है। आर्यों ने जब नाग आदि

अनार्य जातियों को भगाया, तो वे जलाशयों के किनारे रहने लगे, अतः उनकी सभ्यता में जल की प्रधानता हो गई, इसी जल को वे 'तीर्थ' कहते हैं। बाद में धीरे-धीरे दोनों संस्कृतियों के मिलन से स्वरूप संस्कृति में अन्तर आ गया। पूर्व में यह संस्कृति यज्ञवेदी प्रधान थी तदनन्तर तीर्थ के समावेश से 'तैर्थिक-सभ्यता' कहलाई। यज्ञ की प्रधानता रहने पर हिंसा का भी स्थान था, किन्तु अनार्य और द्रविड़ सभ्यता के प्रभाव से उनके विचारों में उत्कृष्टता आने लगी और वे निरामिष आहार, व्रत-उपवास, अहिंसा, योग वैराग्य, जन्मांतरवाद आदि आध्यात्मिक सिद्धांतों के पुजारी बन गये।

सामाजिक रीति-रिवाजों की दृष्टि से भी परिवर्तन सिद्ध हुए। दोनों जातियों में परस्पर विवाह सम्बन्ध होने लगे। आर्यों ने पितृ-प्रधानता को त्याग द्रविड़ों के सम्पर्क से मातृ-प्रधानता को ग्रहण कर लिया, और माता की जाति से संतानें चलने लगीं। नृत्य, गीत और वाद्य भी अनार्यों की ही देन है, पहले केवल वेद पाठ ही होता था। इसी प्रकार जाल, नौका, मछली, शंख, सिन्दूर आदि वस्तुयें अनार्य जातियों (जल समीपी) से ही प्राप्त हुई हैं।

द्रविड़ों का मूल निवास दक्षिणी भारत माना जाता है, और इन दोनों संस्कृतियों के मिलन का श्रेय मुनि 'अगस्त्य' को है, उन्होंने मार्ग के अनेक पर्वतों, जंगलों व नदियों को काटकर निवास योग्य स्थान बनाकर उत्तर और दक्षिण भारत में सम्बन्ध बनाने का द्वार सदा के लिये खोल दिया। और आर्य सभ्यता का विकास अर्थात् 'शैव भक्ति' दक्षिण में फैलाई। द्रविड़ माता के उपासक थे, अतः उनसे शक्ति की उपासना आर्यों ने ग्रहण की, उन्हीं की चित्रलिपि से वर्णमाला बनाई और तालव्य-व्यंजन इसी से ग्रहण किये। दोनों संस्कृतियों के अपूर्व सम्मिलन की उद्घोषणा 'आयंगर' के कथन से स्पष्ट हो जाती है—

'जिस प्रकार भारत का इतिहास, आर्यों के आगमन से प्रारम्भ होता है, उसी प्रकार दक्षिण का इतिहास भी आर्यों के दक्षिण भारतीय संसर्ग से प्रारम्भ होता है।'[13]

आर्यों के संसर्ग के पूर्व ही द्रविड़ भाषायें काफी उन्नत पर थीं, किन्तु ब्राह्मणों, जैनों और बौद्धों ने धर्म प्रचार के लिये वहां लोक प्रचलित भाषाओं को ही साहित्यिक रूप देकर धर्म एवं भाषा का उचित विकास कर सम्बन्ध की गांठ सुदृढ़ कर दी। इन संस्कृतियों के पारस्परिक मिलन का पुष्ट प्रमाण एक अन्य भी है; तमिल साहित्य में 'कुरल' नाम का ग्रन्थ एक जुलाई सन्त 'तिरुवलुबर' द्वारा लिखा

---

13. गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय साधना—व्योहार राजेन्द्र सिंह, पृष्ठ 27।

गया है इसमें नीति तत्वों के विशद और तात्विक विवेचन है इस ग्रन्थ को वैदिक, जैन, बौद्ध सभी अपने-अपने आचार्यों द्वारा रचित बताते हैं, जिससे उनकी संस्कृति की एकरूपता का आभास हो जाता है।

इसी प्रकार तमिल साहित्य में सामाजिक सम्पन्नता और अति व्याप्त विलासिता के कारण 'राजसूय-यज्ञ' का उल्लेख इतिहास द्वारा ज्ञात होता है जो कि आर्य-सभ्यता के सम्मिलन का ही अपूर्व फल है। अन्ततः स्पष्ट है कि परस्पर विभिन्न संस्कृतियाँ किस प्रकार मिलीं और धीरे-धीरे इतनी एक रूप हो गईं कि उनमें कहीं से अन्तर कर पाना दुष्कर कार्य हो गया है। वे परस्पर एक दूसरे में अपने निजी अस्तित्व को मिटाकर समष्टिगत हो गईं, जिससे उनका विकास उच्चतर होकर एक विशिष्टता के रूप में प्रकट हुआ।

इस प्रकार आर्य और द्रविणों की संस्कृति में भी समन्वयात्मक दृष्टिकोण प्राप्त हुआ। पहले तो आर्यों ने इनको अपनी संस्कृति का हिस्सेदार नहीं बनाया परन्तु धीरे-धीरे जब दोनों का मेल-मिलाप हुआ तो एक दूसरे के विचारों और संस्कृतियों में समन्वय प्राप्त हुआ दोनों ने एक दूसरे को कुछ न कुछ आदान-प्रदान किया। जो कि ऐतिहासिक प्रमाणों से ज्ञात होता है इस प्रकार आर्यों, अनार्यों और द्रविड़ संस्कृतियों का सम्मिलन भी समन्वय में सहायक हुआ।

सम्मिलन का अपूर्व फल

विभिन्न संस्कृतियों के पारस्परिक मिलन से अपूर्व फल की प्राप्ति हुई, जो कि निम्न उदाहरणों से स्पष्ट है। धर्म ग्रन्थों में ऋषियों की ब्राह्मणी और शूद्रा दोनों पत्नियों का उल्लेख आया है। कहा जाता है कि शूद्रा पत्नी से उत्पन्न पुत्र को यज्ञ से वंचित रखा गया, जिससे उसने पृथ्वी की उपासना की और अपने पुत्र ऐतरेय को विद्वान रूप में चाहा। उपासना करने पर उसे इष्ट की प्राप्ति हुई, और उसके पुत्र ने 'ऐतरेय ब्राह्मण' की रचना की, और धर्म के वर्षों से चले आये स्कित रूप को गति प्रदान कर उसके रूप में परिवर्तन कर दिया।[14]

इस प्रकार समन्वय की पावन वाणी का उद्‌घोष 'महर्षि ऐतरेय' ने किया। उन्होंने अनार्य को पृथ्वी की संतान बताकर पृथ्वी से घनिष्ठ सम्बन्ध माना और आर्य अनार्य के सम्मिलन से जिन विधाओं का अविर्भाव हुआ वे 64 कलाओं की तालिका देखने से स्पष्ट हो जाती हैं। अस्तु प्रत्यक्ष है कि विभिन्न संस्कृतियों के मिलन से हमें सदैव कुछ प्राप्त होता रहा है और इस प्रकार अनेक संस्कृतियों के बिन्दु-बिन्दु से ही भारतीय संस्कृति का समुद्र अथाह, गंभीर एवं स्थिर है। कोई भी

---

14. ऐतरेय ब्राह्मण, 1-15-1-5।

सम्प्रदाय या समूह अपने में पूर्ण नहीं होता, इसलिए सभी से कुछ न कुछ लेने वाला और अपने में समाहित करने वाला विशद हो सकता है, हमारी संस्कृति इसका बेजोड़ दृष्टान्त है।

वैदिक साहित्य में समन्वय

भारतीय साहित्य की विशालता और गम्भीरता ही उसकी समन्वयात्मक प्रवृत्ति की परिचायक है। प्रत्येक देश का साहित्य उस देश की विभिन्न साँस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक उथल-पुथल का ही परिणाम होता है, हर परिस्थिति का अवलोकन हम साहित्य के द्वारा सुगमता से कर लेते हैं। भारत में अनेक संस्कृतियाँ आई, अनेक धर्म शाखायें उत्पन्न हुई, और अनेक जातियां मूल रूप में दृष्टिगत हुईं, लेकिन इनमें से किसी एक के आधार पर भारतीय साहित्य का अध्ययन करना समीचीन न होगा, क्योंकि भारतीय साहित्य में सभी के कुछ बीज मंत्र पड़े हैं, सभी को समाहित करके अपने को विस्तार देना ही भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र रहा है। इसी बात की पुष्टि के लिए हम उसके प्राचीन साहित्य के अध्ययन से इस उद्देश्य की सहमति प्राप्त करेंगे। संस्कृत साहित्य संसार के साहित्य में सबसे अधिक महत्व रखता है, क्योंकि उसमें संसार का समस्त ज्ञान पूर्णरूप से विद्यमान है।

वैदिक साहित्य में वेदों की चर्चा ही हुई है, और समस्त वेदों में ऋग्वेद को अधिक सम्मानित और श्रेष्ठ माना गया है। ऋग्वेद का सर्वप्रथम रूप पुरुष सूक्त में स्पष्ट रूप से वर्णित है।

'पूजन करने योग्य एवं समस्त लोगों द्वारा ह्यमान बुलाये गये उस परमेश्वर (सहस्त्र शीर्षपुत्र) से ही ऋक, साम, छन्द और यजु उत्पन्न हुये अतः अनुमान होता है कि तब तक अथर्ववेद चौथे वेद के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हुआ था।'[15]

इस प्रकार स्पष्ट है कि मंत्रों में परस्पर किसी प्रकार के विरोध की संभावना नहीं रहती। उदाहरण के लिए ऋग्वेद में एक मंत्र के द्वारा सम्पूर्ण समन्वय दृष्टिगत होता है—

'इन्द्रं मित्रं वरुणमाग्नि माहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरूत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मारिश्वानमाहुः ।।'[16]

---

15. तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ।। (पुरुष सूक्त—9)

16. हिन्दी ऋग्वेद भाष्य भूमिका-व्याख्याकार श्री जगन्नाथ पाण्डेय पृष्ठ 3।

अर्थात् वह (परमेश्वर) एक है तथापि उसे विप्रों ने इन्द्र, मित्र (सूर्य), वरुण, अग्नि, दिव्य, सपर्ण, गुरूत्मान, यम, मातरिश्वा (वायु) इस प्रकार बहुत नामों से कहा है।

इसी प्रकार अनेक देवताओं को विभिन्न नामों से पुकार कर उनके अभ्यन्तरिक एक रूप की ओर संकेत है। यहां तक कि 'ईरानी और आर्य सभ्यता' में काफी साम्य है, ऋग्वेद का यम और अवस्था का मिम, ऋग्वेद का मित्र और ईरान का मिश्र देवता एक ही है।[17]

कभी-कभी तो विचारों में परिवर्तन होता रहा है क्योंकि कभी अनेक शक्तियों का एक ही रूप माना गया है और कभी विभिन्न शक्तियों में उस रूप का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, किन्तु अन्त में एकेश्वरवाद की शरण में ही शान्ति प्राप्ति हो सकी है। और इस प्रकार एक देवता को ही भिन्न शक्तियों से सम्पन्न मानने के कारण एकता की ओर अधिक पुष्टि हो जाती है। अग्निदेव का आह्वान करते समय कहा गया है—

'हे अग्नि ! तू जन्म के समय वरुण हो जाती है। हे बल पुत्र ! तुम में सब देवता बसते हैं, मनुष्यों के लिए तू इन्द्र है।'[18]

इस प्रकार वैदिक साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट है कि अनेकता में ही एकता है, समन्वय ही उसका आधार है। वैदिक काल का प्रधान देवता अग्नि है, वह विभिन्न रूपों—पृथ्वी में अग्नि, आकाश में सूर्य और अंतरिक्ष में विद्युत रूप में द्योतित है, अतः ऊपर से बहुदेववाद होते हुये भीतर में एकेश्वरवाद ही दृष्टिगत होता है।

उपनिषद के अनुसार 'ईश्वर सर्वव्यापी तेजस्वी (शुक्र) अशरीर (अकाय) शुद्ध और पाप रहित है। उसकी प्राप्ति के लिए स्वयं भी उसी प्रकार बनने की आवश्यकता है।'[19]

निष्कर्षतः वैदिक साहित्य के विभिन्न ग्रन्थों का सरल अध्ययन करने में उसकी रूपरेखा और प्रधान दृष्टिकोण से हम अवगत हो जाते हैं। जैसे ऋग्वेद में मंत्रों द्वारा देवताओं की स्तुतियां और यजुर्वेद में यज्ञ की महत्ता बताकर कर्मकांड

---

17. गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय भावना—डा० व्योहार राजेन्द्र सिंह, पृष्ठ 6।
18. गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय भावना—डा० व्योहार राजेन्द्र सिंह, पृष्ठ 8।
19. वही, पृष्ठ 10।

की प्रधानता की ओर संकेत किया है, और अनेक देवताओं की स्तुतियां करके अंत में फिर सर्वेश्वर या एकेश्वरवाद की ओर ही उन्मुख होना पड़ता है। इसी दृष्टि-कोण की प्रमाणिकता के लिए पुरुष सूक्त का आश्रय लेकर उस उज्ज्वल उद्देश्य की शाश्वत ज्योति में मन और बुद्धि को प्रकाशित रखना है—

'पुरुषऽऐवेद सर्वच्यदंमूत चयच्चे मात्व्यम्।
उतामृंतत्वस्ये शानो यदन्नेना तिरोहित ॥'[20]

अर्थात् जो हो चुका और जो होने वाला है वह सब पुरुष ही है, वह अमृतत्व का भी स्वामी है।

इसी प्रकार—

'एतान्नोनस्य महिमायतो ज्यांयाश्च पुरुष:।
पादोयस्य त्विश्वो भूतानि त्रिपादस्यामृतन्दिवि ॥'[21]

अर्थात् यह सब इसका विस्तार है और पुरुष इससे अपेक्षाकृत अधिक बड़ा है। सारे प्राणी इसका एक चौथाई भाग हैं। इसका तीन चौथाई भाग आकाश में नष्ट न होता हुआ (अमृत रूप में) है।

उपनिषदों का समन्वय

भारतीय साहित्य का आदि स्त्रोत उपनिषद ही है, उपनिषद में दर्शन अर्थात् आत्मा और परमात्मा के तत्व ज्ञान का विशद एवं विभिन्न रूपों में विवेचन किया गया है। यहां का प्राचीन साहित्य ही हमारे देश के गौरव गरिमा का प्राण-तत्व है। शाब्दिक अर्थ में भी उपनिषद का अभिप्राय ईश्वर के समीप ले जाने वाला ज्ञान अर्थात् आध्यात्मवादी चिन्तन है अत: निश्चित है कि उपनिषद में माया, ब्रह्म और जीव को लेकर ही विशेष चर्चा हुई है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से प्रथम माया के विभिन्न वर्णित रूप का ही दिग्दर्शन उचित है—

'ईशोपनिषद में सत्य के आवरण के रूप में एक स्वर्णमय पात्र की वर्णना की गई है। यह स्वर्णमय पात्र संसार का समस्त आकर्षण का मूल्य है, यही अन्तवर्ती सत्य के ज्ञान में बाधक है।'[22]

(हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखं। तत्वं पूषम पाहणु सत्यधमांय दृष्टये ॥)

---

20. पुरुषसूक्तम् सम्पादक—विद्याभूषण शर्मा, क्रमांक-2।
21. वही, क्रमांक-3।
22. शंकराचार्य—उनके मायावाद तथा अन्य सिद्धान्तों का आलोचनात्मक अध्ययन—डा० राममूर्ति शर्मा, पृष्ठ 73।

इसी प्रकार कठोपनिषद में अविद्या अर्थात् माया के रूप को वर्णित किया गया है। 'ये अज्ञानी पुरुष अविद्या के द्वारा मोहित होकर अपने आप में पाण्डित्य का आरोप कर लेते हैं। इनकी दशा अन्य पुरुष द्वारा निर्देशित अन्ध पुरुष सी ही होती है। इनके लिए सत्य का दर्शन ही असम्भव है।'[23]

मुण्डकोपनिषद में माया तत्व को अधिग्रहण कर उसे एक ग्रंथि के रूप में सम्बोधित किया है—

'पुरुषस्वेदं विश्वं कर्म तपोब्रह्म परामृतम् एतद्योवेद निहितं गुहायाम् सो विद्या ग्रंथि विकिरतीह सौम्य।'

अर्थात् यह ग्रंथि तभी खुलती है जबकि परमात्मा का ज्ञान हो जाता है।

अतः निष्कर्षतः स्पष्ट हो जाता है कि माया तत्व प्रमुख रूप से है, लेकिन उसका अस्तित्व ब्रह्म से विलग होने पर ही है, ब्रह्म के ज्ञान होने पर माया का अस्तित्व विनष्ट हो जाता है।

छान्दोग्योपनिषद में विद्या और अविद्या की भेद को निरूपित किया गया है—'जो कर्म विद्या, श्रद्धा और योग से युक्त होकर किया जाता है, वही प्रबलतर होता है। इस प्रकार विद्या के निरूपण द्वारा अविद्या मूलक कर्म का निषेध किया गया है।'[24]

उपनिषदों में ब्रह्म के सम्बन्ध में जो धारणा है वह वैदिक धारणा से कुछ गुह्य और जटिल हो गई है। उसके अनुसार सत्य का मुख ज्योतिर्मय पात्र से ढका हुआ है।[25] किन्तु कठोपनिषद में उसके लिये कहा गया है कि वह स्थित हुआ भी दूर तक जाता है, शयन करता हुआ भी सब ओर पहुंचता है। हर्ष से युक्त और हर्ष से रहित उस देव को भला मेरे अतिरिक्त कौन जान सकता है।[26]

इसी उपनिषद में यम ने अपने शिष्य नचिकेता को उसी तत्व का उपदेश सविस्तार दिया है। यम कहते हैं—वह नित्य है, चेतन है, अनेकों में एक है।[27]

---

23. कठोपनिषद—ई०उ० 15।
24. छान्दोग्योपनिषद।
25. हिरण्ययेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। बृहदारण्यकोपनिषद 5।15।1।
26. आसीनो दूरं व्रजति शयानोमाति सर्वतः।
    कस्तं महामदं देवं मदन्यो ज्ञातु मर्हति।। कठोपनिषद 1।2।21।
27. नित्योयनित्यानां चेतना चेतनां।
    एको बहुनायोविद धाति कामान। कठो० 2।2।13

सूर्य, चन्द्रमा, ताकि, विद्युत, अग्नि आदि कोई भी उसके समक्ष प्रकाश नहीं कर पाते हैं उल्टे उसी के प्रकाश से प्रकाशित हैं ।[28]

इसी प्रकार छन्दोपनिषद के अनुसार जो सर्वकर्मा, सर्वकाम, सर्वगन्ध, सर्वरस, इन सबको सब ओर से व्याप्त करने वाला, वाक् रहित और संभ्रम-शून्य है वह मेरी आत्मा हृदय-कमल के मध्य में स्थित है वही ब्रह्म है ।[29] यह समस्त जगत निश्चय ब्रह्म ही है । वह उसी से उत्पन्न होने वाला, उसी में लीन होने वाला और उसी में चेष्टा करने वाला है ।[30]

इस प्रकार जो ब्रह्म गुह्य था और उसका मुख सत्य पाल से ढका था उसे समस्त जगत में देखना उसकी व्यापकता का द्योतक ही कहा जायगा और उपनिषद कार्य की ब्रह्म और जगत की एकाकारिता दिखा कर दोनों को भेद रहित दिखाने का प्रयास है । ईषावास्य उपनिषद का आरम्भ ही जगत में एक ईश्वर की व्यापकता से होता है । [31] वही विद्या, अविद्या और अमृत है सभी भूतों में उसी के साथ एकत्व दर्शन करना चाहिए ।[32] इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि उपनिषदों में केवल ब्रह्म की बौद्धिक प्राप्ति का ही निरूपक नहीं किया गया है वरन् सत्यज्ञान की प्राप्ति के लिये आवश्यक व्यावहारिक साधनों पर भी प्रकाश डाला गया है जिनके माध्यम से साधक ब्रह्मानन्द की अनुभूति करके उससे अविभूत होता है ।

उपनिषदों ने कर्म और ज्ञान के समन्वय से प्रारम्भ कर भक्ति का भी समन्वय किया । अन्त में आरणयकों में उपासना पद्धति मिलती है । किन्तु उपनिषदों ने उसे और भी विशद कर दिया है । कहीं पर कर्म की अपेक्षा ज्ञान पर अधिक बल दिया है और कहीं पर ज्ञान की अपेक्षा उपासना पर अधिक जोर दिया है ।

इसके अलावा उपनिषदों ने पहले पहल सगुण और निर्गुण का समन्वय किया गया है जब ब्रह्म सर्वमय और सर्व रूप है तब उसे किसी एक रूप नाम में नहीं बांध सकते हैं । किन्तु निर्गुण रूप में वह सब गुणों से रहित है । सब कानों का कान, सब मनों का मन है । सब आंखों की आंख और सब शक्तियों की शक्ति है । इस प्रकार उस परम ब्रह्म परमात्मा का एक परम शक्ति रूप है जो शाश्वत अटल और अमर है ।

---

28. न तत्र सूर्योमाति न चन्द्रतारकं ।
 नेमा विद्युतो भान्ति कुतो यमग्निः । 2।2।15
29. सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः । छन्दो० 3।14।4
30. सर्वखल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शांत उपासीत । छन्दो० 3।14।1
31. ईशावास्यमिदं सर्व यत्विंच जगत्यां जगत् । ईशावा० 1
32. यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्ये वाणु पश्यति ।
 सर्व भूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति । ईसा० 6

श्रीमद्भगवद्गीता का समन्वय

भारतीय साहित्य व धर्म क्षेत्र में आदिकाल से जो दिशायें प्रेरक ग्रंथ चले आ रहे हैं, उनमें गीता का अपना अलग और विशिष्ट स्थान है। श्रीमद्भगवद्गीता उस अथाह समुद्र के समान है जिसमें समस्त वेद, उपनिषद, पुराण, ब्रह्मसूत्र आदि धार्मिक ग्रन्थ अपने सम्पूर्ण अस्तित्व युत समाहित हैं, अतः निःसदेह सिद्ध है कि गीता सरोवर में क्षणिक मार्जन मात्र से ही मनुष्य अपने अन्तःकरण के कलमक्ष को सुगमता से दूर कर देता है। इस तथ्य की पुष्टि निम्न श्लोक द्वारा होती है—

'सर्वोपनिषदों गयो दोग्धा गोपाल नन्दनः।
पार्थो वत्सः सुक्षीर्भोक्ता दुग्ध गीतामृतं महत् ।।'[33]

अर्थात् जितने उपनिषद हैं, वे मानो गाय हैं, श्रीकृष्ण स्वयं दूध दुहने वाले (ग्वाला) हैं, बुद्धिमान अर्जुन (उस गौ को पन्हाने वाला) भोला बछड़ा है और जो दूध दुहा गया है वही मधुर गीतामृत है।

तथ्य प्रमाण हेतु एक अन्य तर्क यह है कि प्रत्येक अध्याय की समाप्ति 'इति श्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां·········आदि' शब्दों में हुई है, जिससे उसमें उपनिषद के सार तत्व की विलीनता का बोध होता है, नहीं तो गीता के आगे 'भागवतम्' 'भारतम्' 'गीतम्' आदि अन्य शब्दों का प्रयोग सम्भव था। श्रीमद् भगवद्गीता में उपनिषदों के विचारों का प्रतिबिम्ब दोनों के शब्द—साम्य से स्पष्ट परिलक्षित होता है। गीता में अध्यात्मज्ञान और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, विचार, अक्षर ब्रह्म स्वरूप आदि का वर्णन उपनिषदों के आधार पर किया गया है। उदाहरणार्थ गीता के द्वितीय अध्याय में कठोपनिषद के विचार संगुफित हैं—

न जायेते प्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वान भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोयूमं पुराणों,
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।।[34]

इसी प्रकार गीता के छठे अध्याय में जो योगाभ्यस और चित्त-निरोध की प्रक्रिया बताई गई है वह पांतजल योगसूत्र में विस्तृत रूप से वर्णित है। इस क्रिया से सम्बन्धित सूत्रों के चार अध्याय हैं। गीता में भी इनका क्रमानुसार वर्णन है—

---

33. श्रीमद्भगवद्गीता माहाल्य-पृष्ठ 6।
34. श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय-2 पृष्ठ 20।

प्रथमतः उसकी आवश्यकता, पुनश्च साधन और तत्पश्चात् किस रीति से करना चाहिए यह सभी यथा विधि वर्णित है। उदाहरणार्थ साधन बताते हुए भगवान कृष्ण स्वयं कहते हैं—

'असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्राह्यंचलम्।
अभ्यासेन तुकौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ (गीता छः 35)

इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर श्रीकृष्ण भगवान बोले, हे महाबाहो! निःसन्देह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है, परन्तु हे! कुन्ती पुत्र अर्जुन! अभ्यास से और वैराग्य से वश में होता है, इसलिए इसको अवश्य वश में करना चाहिए।

उपनिषदों में ज्ञान और कर्मयोग दोनों की परम्परायें प्राप्त होती हैं, उन्हीं का प्रतिपादन गीता में भी भगवान कृष्ण ने अपनी वाणी से किया है—

'लोकेऽस्मिद्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।'[35]

अर्थात् इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर भगवान श्रीकृष्ण महाराज बोले, हे निष्पाप अर्जुन! इस लोक में दो प्रकार की निष्ठा मेरे द्वारा पहले कही गई है, ज्ञानियों के ज्ञानयोग से और योगियों की निष्काम कर्मयोग से।

प्राचीन काल में ईश्वर की सगुण साकार अवतरण न करके उसके निर्गुण निराकार रूप की ही प्रतिस्थापना की, किन्तु इससे चित्त की एकाग्रता में बाधा पड़ती है, क्योंकि मन की जाति बड़ी चंचल है, अतः उस समय के लोगों ने मन, सूर्य, आकाश, अग्नि और यज्ञ आदि सगुण प्रतीकों को अपनाया, फिर विष्णु और रुद्र दो देवता माने गये किन्तु कोई मानव देहधारी देवता की कल्पना न की गई थी। गीता में उस साकर ईश्वर की सकाम और निष्काम आराधना से भक्तियोग का भी प्रतिपादन किया गया है सांख्य दर्शन के प्रणेता द्वारा सांख्य में वर्णित प्रकृति-पुरुष के सहयोग से सृष्टि-निरूपण और तीनों गुण (सत्, रज, तम्) का मानव जीवन में समन्वय जिस प्रकार से है गीता में भी उसी प्रकार दर्शाया है।

इस प्रकार प्रस्थानत्रयी की एक विद्या 'ब्रह्मसूत्र' रह जाती है। 'ब्रह्मसूत्र' में कोई प्रथक धर्म विवेचना का सिद्धान्त प्रतिपादित न करके उपनिषदों में वर्णित भिन्न-भिन्न ऋषियों द्वारा बताये हुए आध्यात्मिक सिद्धांतों का ही नियम पूर्वक

35. श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय 3, श्लोक 3, पृष्ठ 66।

विवेचन किया गया है। अतः ब्रह्मसूत्रों से गीता के समन्वय का प्रश्न ही नहीं उठता, लेकिन यदि विचार की दृष्टि से देखें तो एक ऐसी समान्तर रेखा प्रतीत होती है कि भिन्नता ज्ञात करना मुश्किल सा हो जाता है। उदाहरणार्थ गीता में क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का विवेचन हमें ब्रह्मसूत्र की स्पष्ट स्मृति दिलाता है—

'ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक।
ब्रह्मसूत्र पदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ।।'[36]

इस प्रकार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का वर्णन ऋषियों ने गीतों और छन्दों में विविध प्रकार से समझाया है, और वेदों में भी अनेक प्रकार से वर्णन है, दर्शन, एवं अध्यात्म का यही तो सूक्ष्म तत्व है, जिसकी विवेचना करना और समझना ही जीवन के वास्तविक तत्व को जानना है। गीता में इस विषय को भी अपना प्रमुख अंग माना गया है। विशेषता तो इस बात की है कि जहां गीता में अध्यात्म में गूढ़ विषयों का विवेचन है वहां मानव के व्यवहारिक जीवन के विविध पक्षों का कर्म और अकर्म सिद्धान्तों द्वारा स्पष्टीकरण किया गया है, परिवार के व्यक्तियों के साथ किस परिस्थिति में क्या कर्त्तव्य करना चाहिए यह भगवान ने स्वयं अपनी पावन वाणी से अर्जुन के मोह उत्पन्न होने के माध्यम से कहा है, जीवन का कितना यथार्थ चित्रण है, प्रत्येक मानव संसार की ऊहापोह में पड़ा रह कर जीवन के सभी क्षण व्यर्थ गवां देता है, इसके लिये गीता हमें अवलम्ब देकर विभिन्न उलझनों से शीघ्र ही निकाल लाती है। इस प्रकार लौकिक एवं परलौकिक दोनों ज्ञान का समन्वय ही मानव के निखरे हुये जीवन में समन्वय लाने में सहायक सिद्ध होता है। उसकी सर्वग्राह्यता ही उसकी लोकप्रियता का एक मात्र कारण बनी। श्री अरविन्द के शब्दों में—

'गीता विभिन्न तत्वज्ञानों के वाग्युद्ध का अखाड़ा नहीं किन्तु वह आध्यात्मिक सत्य और उसके अनुभव का द्वार खोलती है, और वह ऐसी व्यापक दृष्टि प्रदान करती है, जो सभी क्षेत्रों और विचारों को आत्मसात कर लेती है। वह एक मानचित्र अवश्य उपस्थित करती है किन्तु वह न किसी चित्र को काटती और न किसी के बीच ऐसी दीवार उठाती है जिसमें हमारी दृष्टि संकुचित हो जाय।'

शैव और वैष्णव संतों की समन्वयात्मक वृत्ति

भक्ति का यौवन रूप दक्षिण में ही देखने को मिलता है, इस बात का प्रमाण श्रीमद्भगवत और वर्तमान में स्थित मन्दिर आदि जाग्रत रूप में हैं। प्रायः क्रान्ति का भीषण रूप ही शान्ति का उत्पादक होता है, जब तक विरोध नहीं होगा, तब

---

36. श्रीमद्भगवद्गीता-अध्याय-13, श्लोक-4, पृष्ठ 225।

तक एकाकार की भावना कहां आयेगी। अतः धार्मिक क्षेत्र में भी विभिन्न युद्धों व विद्रोहों के बाद विरोध व भेदता की अग्नि सुलगी, लेकिन धीरे-धीरे वह अपनी स्वभाविक क्रिया के परिणाम से तद्रूप होती चली गई। शैव भक्तों और वैष्णव भक्तों का उद्भव द्रविड़ देश में ही हुआ है अतः इसे यों कहें कि मुख से भक्ति द्रविड़ देश की ही देन है। प्राचीन काल में धनधान्य से सुसम्पन्न होने के कारण मन्दिर पूजा, तीर्थाटन, यज्ञ आदि वैदिक कर्मकाण्ड की प्रधानता थी, फिर अधिक विलासिता में रत रहने के कारण समयानुसार उनमें विरक्त की भावना जन्म लेने लगी और वे लोग संन्यास प्रधान भक्ति को अपनाने लगे जो जैन और बौद्ध मतों से साम्य करती है इसके साथ ही अथर्व में वर्णित तन्त्र-मन्त्र का एक रूप द्रविड़ों के जादू-टोने से भी मिलता-जुलता है। साथ ही देवताओं की प्रसन्नता के लिये नृत्य, गीत आदि उनकी मूर्ति के सामने करना इनकी पूजा विधान के अन्तर्गत आता है।

भारत में सबसे प्राचीन जाति आर्यों की मानी जाती है। आर्य स्वभाव से भावुक व प्रकृति प्रेमी थे इसलिये उन्होंने प्रकृति के रमणीय रूप में ऊषादेवी और भयानक रूप में इन्द्र की अवतारणा की। द्रविड़ों ने भी 'आकाश देवता' को माना है. अतः आकाश नील वर्ण का होने के करण इनके रुद्र भी श्याम वरण के माने जाते हैं, ये वर्ण साम्य दोनों संस्कृतियों के पारस्परिक मिलन का परिणाम है, फिर धीरे-धीरे आर्य और आर्येतर जातियों के मिलन से शिवभक्ति भावना की सीढ़ियां बढ़ती गईं और रुद्र ने ब्रह्म का स्थान ले लिया। यद्यपि आर्य पुरोहित शिव पूजा के विरोधी थे, परन्तु धीरे-धीरे द्रविड़ों की कन्याओं से विवाह सम्बन्ध होने के परिणाम-स्वरूप शिवपूजा की वृद्धि हुई है, क्योंकि गृहों में स्त्रियों की प्रधानता होती है। पौराणिक ग्रन्थों में 'शिवपुराण' नामक ग्रंथ में तो शिव लिंग पर अर्पित किया हुआ प्रसाद ग्रहण करना निषिद्ध माना गया है, उसे वे अशुद्ध कहते हैं।

शिव सम्बन्धी कलपना का विकास औष्ट्रिक व नीग्रो संस्कृति की देन भी मानते हैं क्योंकि शिव का भांग-धतूरा खाना, शमशान में वास करना और सर्पादि की माला पहनना आदि क्रियायें उनकी जंगली जाति की संस्कृति से उद्भव मानी जाती हैं। इस प्रकार शैव मत पर विचार करने के बाद क्रमशः कुछ शैव संतों की भक्तियुक्त क्रियाओं को दृष्टिगत करना आवश्यक है—

श्री व्योहार राजेन्द्र सिंह ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि तृतीय संगम के युग में (ईसा की पहली सदी) पांड्य दरबार के 49 कवियों में शिवभक्त संत नक्किर सबसे प्रसिद्ध हैं। संत कराणय भी (दूसरी सदी) प्रसिद्ध शिवभक्त हो गये, जिन्होंने अपने नेत्र तक चढ़ाकर शिव जी की पूजा की थी। वे 63 शिवभक्तों मे सबसे प्रधान माने जाते हैं।[37]

---

37. तुलसी की समन्वय साधना—डा० व्योहार, पृष्ठ 34।

अतः शैव-संतों की परम्परा में तिरुज्ञान, संम्बधर, अप्पर, सुंदरा मूर्ति, मणिक्कवाचक तथा तिरुमूलर आदि सभी संतों ने अपनी-अपनी प्रतिभा और भक्ति साधना के आधार पर पावन वाणियों को उच्चारित किया और उनके सम्मिलित रूप का एक ग्रंथ बनाया गया। इसके साथ ही ये शैव संत नृत्य गीत आदि एवं मन्दिर में आत्मविभोर होकर कीर्तन करते थे। व्योहार राजेन्द्र सिंह लिखते हैं—'ये शैव भक्तिमय गीतों के साथ नाचते-गाते तथा बेशुध हो जाते थे। इनकी आंखों से आंसुओं की धारा बह निकलती तथा उसकी निरवाध तल्लीनता में मूर्ति के सामने गिर पड़ते थे।[38]

इस प्रकार स्पष्ट है कि शैव संत हृदय प्रधान व्यक्ति-भावना से ओत-प्रोत थे, उनमें ज्ञान से भक्ति की अधिक महत्ता थी प्रभु के सम्मुख अश्रु प्रवाहित करना अपने अन्तरतम की कलुषता को नष्ट कर उसे शाश्वत निर्मल बनाना है। किन्तु जीवन में बुद्धि और हृदय (मन) दोनों का समन्वय आवश्यकीय है, क्योंकि दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, एक के अभाव में दूसरा अपंग हो जाता है, अतः शैव संतों ने भी इस बात को अपना कर कुछ ज्ञान चर्चा भी की है। व्योहार राजेन्द्र सिंह लिखते हैं कि 13वीं सदी में 'मकन्दर' ने 'शिवज्ञान बोधम्' नामक ग्रंथ में शैव मत के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। इसमें केवल 12 सूत्रों में ये सिद्धांत संक्षिप्त रूप से ग्रंथित है, इस ग्रंथ की प्रशंसा में कहा गया है कि 'वेद गौ है' आगम उसका दुग्ध है। शैव संतों ने उसका घृत निकाला और 'शिवज्ञान बोधम्' उसका स्वाद है। इसके बाद 'अरूनंदी' का शिवज्ञान सिन्तियर है, जिसमें 14 दर्शनों की समालोचना कर शैव मत की श्रेष्ठता बयायी है।

इतने विशद अध्ययन के बाद सिद्ध है कि शैव मत जन सामान्य का मत है, जिसे सभी स्वीकार कर सकते हैं, बुद्धि प्रधान व्यक्ति अपने ढंग से ग्रहण करता है और हृदय प्रधान व्यक्ति अपने ढंग से। इसी कारण इस परम्परा ने और अधिक वृहद रूप धारण किया और शैव सन्तों में स्त्री, पुरुष, ब्राह्मण, चाण्डाल सभी ने सामान रूप से भाग लिया। इस प्रकार की समानता की भावना उनकी समन्वयात्मक बुद्धि की परिचायक है।

वैष्णव धर्म

शैव सन्तों को आदियार और वैष्णव भक्तों को आलवार कहा जाता है, आलवार का अर्थ श्री राधाकृष्णन के शब्दों में देवलीन Immersed in Deity है।

---

38. गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय साधना, डा० व्योहार राजेन्द्र सिंह, पृष्ठ 36।

वैष्णव मत में विष्णु की उपासना होती है। भारतीय संस्कृति की यथार्थता का परिचय हमें वेदों और मोहन जोदड़ों व हड़प्पा की खुदाई से मिलता है। ऋग्वेद में 'विष्णु' का उल्लेख 'सूर्य' के अर्थ में मिलता है, लेकिन मतभेद यह है कि सूर्य उज्ज्वलता और प्रकाश के पर्याय हैं, जबकि इन्होंने विष्णु को श्यामवर्णीय माना है। यहां ध्यान उस ओर आकर्षित होता है जहां द्रविड़ संस्कृति का सम्पर्क है, द्रविड़ों ने 'आकाश देवता' की अवतारणा की है, और आकाश नील वर्ण का होता है, अतः समन्वयात्मक दृष्टिकोण से विष्णु को श्यामवर्ण का मान लिया जाता है इसका उल्लेख श्री रामधारी सिंह दिनकर ने डा० सुनीति कुमार चटर्जी के अध्ययन के आधार पर किया है—'आर्यों के सूर्यवाचक देवता विष्णु भारत में आकर द्रविड़ों के आकाश देवता से मिल गये, जिनका रंग द्रविड़ों के अनुमान से आकाश के सदृश नीला अथवा श्याम था। तमिल भाषा में आकाश को 'विन्' कहते हैं, जिसका विष्णु शब्द से निकट का सम्बन्ध हो सकता है।'[39]

इन आलवार वैष्णव सन्तों का समय दूसरी सदी से आठवीं सदी तक माना जाता है। वैष्णव सन्तों ने भी अनेक ग्रंथों की रचना की, जिसमें उन्होंने कुछ अपने मौलिक सिद्धांतों का भी उल्लेख किया और साथ ही भक्ति पूरक गीतादि का भी उल्लेख किया। डा० व्योहार राजेन्द्र सिंह के शब्दों में 'इनके गीतों का संग्रह' 'नालियिर प्रबन्धम्' के नाम से प्रख्यात है। आगे चलकर इन सन्तों की वाणियों का संग्रह 'चतु: सहस्त्र प्रबन्धम' में संकलित किया गया, यह ग्रंथ वैष्णव वेद माना जाता है। इनकी शिक्षाओं में दो बातों की प्रधानता है।

1. भक्ति का द्वार सबके लिए मुक्त है।
2. गुरु की आवश्यकता अनिवार्य है।[40]

इस कथन से स्पष्ट है कि इसके पूर्व गुरु की महत्ता न थी, इस समय तक आते-आते भक्ति और ज्ञान अपने यथार्थ रूप में पहुंच गये थे, जिन्हें समझने के लिये गुरु रूपी माध्यम आवश्यक था और तभी से गुरु जीवन साधना का एक आवश्यक अंग बन गया है। ये वैष्णव आचार्य मन्दिरों में जाकर नृत्य गीतादि शैव सन्तों की तरह करते थे। वैष्णव सन्तों में एक नम्मालवार सन्त हुए जो कि जाति के शूद्र थे, लेकिन भक्ति के कारण उनका सर्वश्रेष्ठ स्थान हो गया। इन्होंने रहस्यवाद तथा भक्ति की कविता का प्रारम्भ किया और प्रेम प्रधान धर्म का प्रचार किया। इनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर मधुर कवि ने इनकी मन्रिर मूर्ति स्थापित कराकर उनकी पूजा की और उनके गीतों की क्रियात्मक रूप दे दिया। नम्मालवार ने वेदों के

---

39. संस्कृति के चार अध्याय—श्री रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ 60।
40. गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय साधना, व्योहार राजेन्द्र सिंह, पृष्ठ 38।

गुप्त रहस्य को प्रकट करने का दावा किया था, उनकी रचना में कहीं पारस्परिक विरोध या साम्प्रदायिक पक्षपात के दर्शन नहीं होते हैं, जबकि उस समय बौद्ध मत और वैदिक मत में परस्पर चढ़ा-ऊपरी चल रही थी, लेकिन फिर भी आर्य मत में समन्वय की भावना आन्तरिक रूप से काम कर रही थी।

इस प्रकार अन्त में दोनों के समन्वय सम्बन्ध की हृदय प्रधान भक्ति भावना एवं सगुणोपासना की सरस धारा जनता के लिए अधिक ग्राह्य थी, साथ इनकी रचनायें मात्र भाषा में थीं जो कि रचना के यथार्थ स्वरूप को जनता के निश्छल हृदय पर पहुंचाने में समर्थ थी। दूसरी बात यह थी कि इस काल में मूर्ति पूजा का खूब प्रचार हुआ, इससे लाभ यह हुआ कि इसके पूर्व आर्यों की पूजा व्यक्तिगत और पारिवारिक होती थी, किन्तु धीरे-धीरे विशाल मन्दिर के निर्माण उनकी पूजा सार्वजनिक और सामूहिक हो गई, जो कि उनके सामाजिक समन्वय का परिचय देती है।

ईश्वर और जीवन के बीच तत्व ज्ञान की रूप रेखा भक्ति की तन्मयता व तल्लीनता के बीज इसी युग में साहित्य में रोपित किये गये थे जो कि आगे चलकर रामानुज आदि आचार्यों के द्वारा पुष्पित एवं फलित हुए। सगुण ब्रह्म की उपासना और आत्मसमर्पण की भावना वैष्णव सन्तों की वाणी द्वारा आज भी भारतीय साहित्य के विशाल प्रांगण में सूत्र रूप में चिर व्याप्त है। इस प्रकार इनके सिद्धांतों में इतनी पुष्टि थी कि जिसका सूक्ष्म प्रभाव आज भी देखने को मिलता है और जो हमारी समन्वयात्मकता का जीता जागता मुखरित रूप प्रस्तुत करता है।

आचार्यों का समन्वय

ऐतिहासिक परिस्थिति—भारत के इतिहास में एक ऐसा भी युग आया जिसमें विभिन्न आचार्य हुए और इन आचार्यों ने विभिन्न मत चला कर जनता की भावनाओं को अपनी-अपनी ओर आकर्षित किया। इसी युग में लगभग धर्म के विभिन्न सम्प्रदाय चल पड़े थे, धर्म के सभी प्रारूपों का बीजारोपण इसी युग की देन है। देश में मुसलमानों के निरन्तर आक्रमण से जनता संत्रस्त थी, उसमें सामाजिक व आर्थिक दुर्बलता तो आ गई थी साथ ही हिन्दू धर्म की जड़ को भी उखाड़ना चाहा और इसके लिए उन्होंने देव मन्दिरों व मूर्तियों को ध्वस्त करना प्रारम्भ कर दिया मन्दिरों में स्थापित बहुमूल्य सोना, चाँदी व रत्नजड़ित आभूषण व मूर्तियां वे चुरा कर ले जाने लगे। ऐसी स्थिति में हिन्दू जनता चुप न रह सकी, उसके मुंह से वेदना की कराह निकल पड़ी, क्योंकि धर्म ही मानव का प्राण तत्व है। अतः शनैः-शनैः यह कुत्सित व्यवहार बढ़ता ही गया, और एक दिन हिन्दू जनता में विद्रोह की आग भड़क उठी, क्योंकि उसमें चिनगारी तो व्याप्त थी ही, आवश्यकता केवल अनुकूल वायु की थी, जिससे वह प्रज्ज्वलित हो सकती। वैसे भी अधिक पीड़ित व

संसार से निराश व्यक्ति भगवान की ही शरण लेता है, उसी के चरणों में उसे चिरशांति मिलती है। इस युग में धर्म कर्म सभी में विकार आ गये, जनता वास्तविकता से कोसों दूर पहुंच गई थी, वैदिक कर्मकांड में बाह्य कुरीतियां आ गई थीं, समाज की आस्था ईश्वर के प्रति न होकर जड़ वस्तुओं के प्रति हो गई थी।

इतिहास के दृष्टिकोण से उस समय मुसलमानों का आधिपत्य हो गया था, भारत के दक्षिण में ही भक्ति की यथार्थता और युवावस्था देखने को मिलती है। इसके साथ ही दक्षिण ही धनाढ्यता में श्रेष्ठ है, वहां के मन्दिरों में सोने-चाँदी और रत्न माणिक आदि अधिकता में पाये जाते हैं। मुसलमानों ने उन्हीं मन्दिरों को ध्वस्त कर सारी सम्पत्ति लूट ली और सम्पूर्ण दक्षिण देश को नष्ट भ्रष्ट कर दिया था। इस प्रकार धर्म पर कुठाराघात होते देखकर हिन्दू जनता में विद्यार्थियों के प्रति विद्रोह की अग्नि भड़की और सभी हिन्दू साम्प्रदायिक मतभेदों से अलग होकर एकता के सूत्र में बांधकर अपने वास्तविक धर्म की रक्षा के लिये सक्रिय तत्पर हो गये। विजय नगर हिन्दुओं द्वारा स्थापित सबसे विशाल और धनवान नगर माना जाता है, अतः इसमें दक्षिण की रक्षा करने का यथाशक्ति संभव प्रयत्न किया और इस प्रकार आत्मरक्षा से निवृत होने के बाद वहां के राजा कृष्णदेव राय ने दक्षिण के मन्दिरों के पुनः निर्माण के लिये दस हजार स्वर्ण मुद्रायें दान में दीं। इसके साथ ही तेलगू और संस्कृति भाषा को अधिक प्रणय दिया।

कुमारिल भट्ट शंकराचार्य का समन्वय

हिन्दू धर्म के आदि प्रवर्तक शंकराचार्य माने जाते हैं, किन्तु उनसे भी पूर्व कुमारिल भट्ट और मंडन मिश्र का नाम आता है, जिन्होंने शंकराचार्य का मार्ग प्रशस्त किया था। प्रायः प्रत्येक महापुरुष का प्रादुर्भाव संघर्ष और विरोध की ही स्थिति में होता है, अतः कुमारिल भट्ट के समय जैन और वैदिक मतावलम्बियों में मतभेद प्रचुर मात्रा में था, जिससे दोनों में द्वेषभाव बहुत बढ़ गया था। ऐसी स्थिति में धर्म के यथार्थ स्वरूप का स्पष्ट पृष्ठ जनता के सम्मुख रखना अनिवार्य था, अतः कुमारिल भट्ट ने वेद-विरोधी कर्मकाण्डों व मतों का खंडन करके धर्म के वास्तविक स्वरूप की स्थापना की और वेदान्त के सूत्रों पर भविष्य भी लिखा। समाज को आकर्षित करने और दिशा परिवर्तित करने के लिए व्यक्ति में अलौकिक प्रतिभा होना नितान्त आवश्यक है। इन्होंने वैदिक कर्मकांड का खूब प्रचार करके एक बार फिर समाज को वास्तविक पथ-प्रदर्शन कराकर उस पर अग्रसर होने की दिशा प्रदान की। अतः स्पष्ट है कि कुमारिल भट्ट ने किस प्रकार दोनों के मतों में समन्वय कराकर अपने धर्म की एक बार फिर नव जागृति कराई, इस प्रकार की सफलता उनकी समन्वयात्मक बुद्धि की परिचायक है, जो कि हमारी आदि कालीन परम्परा है।

आचार्यों के इतिहास में शंकराचार्य का नाम श्रद्धा और महानता के स्वरों में लिया जाता है। आपकी अखण्ड प्रतिभा और समस्त सृष्टि के हित की बात सोचने की प्रक्रिया ने ही आपको जगद्गुरु की उपाधि से विभूषित किया। शंकराचार्य सनातन धर्म के आदि प्रवर्त्तक माने जाते हैं, उन्होंने ज्ञान और भक्ति के आधार पर वैदिक धर्म के यथार्थ स्वरूप की स्थापना की, प्रचलित धर्म के कर्मकाण्डों को जिन्होंने वास्तविकता को त्याग कृत्तिमता का जामा पहन लिया था, उसका स्पष्ट और सशक्त शब्दों में खण्डन किया। सामान्य दृष्टि में उन्हें बौद्ध, जैन आदि प्रचलित मतों का उच्छेद कर्त्ता मानते हैं पर वास्तव में उन्होंने सभी शास्त्र सम्मत मतों का सार तत्व ग्रहण कर अपनी समन्वयवादिता का परिचय दिया है, यथार्थ में उनका धर्म सभी के मूल रूप को लेकर अपने में विशिष्टता रखकर चलने वाला है। शंकराचार्य ने न्याय, मीमांसा, सांख्य आदि मतों का खण्डन करके एक नवीन अद्वैतवाद मत की स्थापना की, जिसका मूलमन्त्र 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' जनता को उद्घोषित किया। इनके अनुसार सम्पूर्ण संसार में वही ब्रह्म व्याप्त है, उसमें और मुझमें कोई भेद नहीं, क्योंकि हम सब उसी के अंश हैं, अर्थात् सोऽहं ब्रह्मास्मि।

स्वयं स्वामी शंकरचार्य ने अद्वैतवादी ज्ञान की प्रतिमूर्ति होते हुए भी भक्ति की मूक कंठ से सराहना की है उनके अनुसार ज्ञान की परियत्वावस्था ही भक्ति में परिणित हो जाती है, क्योंकि श्रेष्ठ भक्त का लक्षण सम्पूर्ण सृष्टि में ब्रह्म के दर्शन करना है और ज्ञान भी इसी की पुष्टि करता है कि जहां द्वैत न रह जाय, अर्थात् सृष्टि के प्रत्येक अणु में वही ईश्वर व्याप्त है। इसके साथ ही जगद्गुरु जी उत्कृष्ट संन्यासी होते हुए भी गृहस्थाश्रम की महानता को ग्रहण करने में पूर्ण समर्थ हैं, इसीलिए उन्होंने प्रधान सूत्रों की रचना की क्योंकि गृहस्थ अपने कर्तव्यों में आबद्ध रहकर उस ईश्वर की झलक कुछ विशिष्ट स्थलों और कार्यों में ही देख सकता है उससे कोई साधना की अपेक्षा करना उसको उसके कर्त्तव्य से च्युत करना होगा। स्वामी जी ने ब्रह्म और जगत के सम्बन्ध को समुद्र और तरंग के रूपक से सजाया है जिस प्रकार समुद्र अंशी का तरंग अंश है, उसी प्रकार ब्रह्म अंशी का जगत अंश है, अतः वह अपने प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष रूप में सदा सर्वदा उसमें व्याप्त रहता है, इसी तत्व को जान लेना ज्ञान की यथार्थ स्थिति से परिचित होना है। दर्शन के अन्य अंग वेदान्त सांख्य आदि के गहन तत्व साधारण जनता की समझ और समय से बहुत दूर थे, उनको केवल संन्यासी ही ग्रहण कर सकते थे, अतः शंकराचार्य ने उन्हें ही सरल और सुलभ बना कर जन सामान्य तक पहुंचाने का अपनी श्रेष्ठता का उद्देश्य बनाया।

शंकराचार्य जी ने कर्मकाण्ड का स्पष्ट स्वरों में विरोध किया कर्मकाण्ड की आवश्यकता उन्होंने अज्ञानावस्था तक ही सीमित रखी क्योंकि ज्ञान होने पर व्यक्ति कर्मकाण्ड को नश्वर व कृत्रिम व्यवहार बना कर त्याग देता है लेकिन कर्मकाण्ड का सर्वथा विरोध उन्होंने कहीं नहीं किया क्योंकि ज्ञान की सीढ़ी तक

पहुंचने का प्रथम चरण तो कर्मकाण्ड ही है, अतः कर्मकाण्ड को ज्ञान तक पहुंचने और लोक संग्रह के लिए अपनाना आवश्यक है। साथ ही जो संन्यासी अधूरी स्थिति में है, अर्थात् मध्य में ही त्रिसंकु सा लटक रहा है, जिसने कर्मकाण्ड को अपने वेश के कारण त्याग दिया और ज्ञान तक भी नहीं पहुंच पाया ऐसे अज्ञानी भ्रमित संन्यासी से तो कर्मकाण्ड गृहस्थ अनेक परिस्थितियों में श्रेष्ठ ठहरता है। इन कर्मकाण्ड के अन्तर्गत यज्ञादि कर्म ही आते हैं, प्रायः यज्ञ में बलि की प्रथा थी उसके लिए शंकराचार्य जी ने निष्काम भाव से अहिंसक यज्ञों को महान बताकर उस पर जोर दिया। श्रीमद्भगवद्गीता में भी निष्काम कर्मयोग का उपदेश भगवान कृष्ण ने अपनी सुधापाषिणी वाणी से अर्जुन के सम्मुख किया है—

> **लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।**
> **ज्ञान योगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ।।**[41]

दूसरा सिद्धान्त शंकराचार्य जी ने 'ब्रह्म सत्यंजगतमिथ्या' अपनाया है, लेकिन किसी भी सिद्धान्त के एक पक्ष को लेकर वे कहीं नहीं चले हैं। यद्यपि आध्यात्मिक दृष्टि से संसार को सत्य मानना चाहिए, वही मनुष्य संसार में प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता है, व्यवहार में सत्यता किन्तु भाव में वास्तविकता नश्वरता रहनी चाहिए, अर्थात् (व्यवहार में जग सन्य है और पारमार्थिक रूप में जगत असत्य है, ताकि उसके सुखद या दुखद परिणाम का किंचित प्रभाव न पड़े। सांख्य के अनुसार सृष्टि प्रकृति और पुरुष के संसर्ग से उत्पन्न हुई, तो अचेतन प्रकृति से सचेतन संसार की सृष्टि कैसे हो सकती है, जो कि 'कर्मकारण-सम्बन्ध' के विपरीत है।

शंकराचार्य जी ने अपने समय में सभी प्रचलित धर्म मतों को अपनाकर उसके कोई न कोई रूप को लेकर उसकी उपयोगिता को जनता के सामने रखा। यह निर्विवाद सत्य है कि उस समय प्रचलित बौद्ध धर्म से शंकराचार्य जी प्रभावित अवश्य हुये थे, और विशेषता इस बात की है कि इन्होंने सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता और सद्भावना का ही परिचय दिया। श्रुतियों के साथ-साथ स्मृतियों का भी समन्वय आपने दिखाया है। 'शास्त्र वाक्य' यद्यपि प्रामाणिक है, किन्तु वे आत्मानुभव की प्रतीति तक ही सीमित है। लोक व्यवहार से बिल्कुल अछूते रह जाते हैं शास्त्र वाक्यों को उन्होंने मुक्तावस्था में सुख-दुःख का भाव मिटाने तक उपयोगी सिद्ध किया है। तभी तक शास्त्र सम्मत कार्यों को करना चाहिए। इन्होंने अपनी आचार्य पदवी को सार्थकता के लिए उपनिषदों और गीता पर भी भाष्य लिखा और सम्पूर्ण भारत की यात्रा करके उसे जनता के कर्णछिद्र तक पहुंचाने का सफल प्रयास किया।

---

41. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय-3, श्लोक 3।

शंकराचार्य जी ने यद्यपि अपनी अलौकिक प्रतिभा और अकाट्य तर्कबुद्धि से विभिन्न मतों का खण्डन करके स्वधर्म की श्रेष्ठता बताकर उसकी स्थापना की। किन्तु इनके सिद्धांतों की अपेक्षा तीन वर्णों तक ही सीमित थी, क्योंकि देववाणी में रचना होने और सिद्धान्तों की गहनता तथा वर्णाश्रम व्यवस्था के आधार पर (अनाधिकार) होने के कारण शूद्र उससे वंचित ही रहे। ब्रह्म सूत्र में अद्वैतवाद का प्रतिपादन करते हुए उन्होंने अपशूद्राधिकरण में शूद्रों के लिए वेद के अध्ययन श्रवण तथा अनुष्ठान तीनों का प्रतिबंध किया। इतना ही नहीं बल्कि वेद सुनने पर धातु से कान मूंदने, वेदपाठ करने पर जिव्हा छेदने और धारण करने पर शरीर छेद तक का विधान किया।[42]

इस प्रकार शंकराचार्य के सम्पूर्ण जीवन साहित्य के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि उनका कितना समन्वयात्मक दृष्टिकोण था, उन्होंने किसी भी धर्ममत सम्प्रदाय या सिद्धान्त का स्पष्ट विरोध और त्याग न करके उसके परिष्कृत और उपयोगी रूप को अपनाने पर यथासम्भव बल दिया है विभिन्नता में एकता का नाम ही जनजीवन है, अतः हमें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समन्वयवादी दृष्टिकोण ही अपनाना श्रेयस्कर होगा।

वैष्णव आचार्यों का समन्वय

वैष्णव आचार्यों का प्रादुर्भाव आलवार भक्तों के बाद और उनसे प्रभावित माना जाता है। आलवार भक्तों में शिव और विष्णु की उपासना व्याप्त थी। धीरे-धीरे उनमें भागवत धर्म का प्रसार होता गया और वे कृष्ण भक्त भी बनते गये। रामानुज आदि इसी सम्प्रदाय के अन्तर्गत आते हैं। इसी समय में धर्म में एक बाढ़ सी आ गई है, जिससे वैष्णव धर्म की पुष्टि होती गयी। इसके साथ ही इसी युग में भक्ति ने पुनः कर्मकाण्ड को ग्रहण किया और ईश्वर की पूजापद्धति प्रचलित हो गई भगवान की लीलाओं का दर्शन और कथाओं का श्रवण भक्ति का प्रमुख प्रधान अंग बन गया।

वैष्णव धर्म के प्रथम आचार्य नाथमुनि माने जाते हैं। इन्होंने धर्म के दुरूह और दुःसाध्य वेद आदि धार्मिक प्रत्यंगों को जो साधारण जनता के स्पर्श से दूर थे, जनता तक पहुंचाने का सफल और सक्रिय प्रयास किया। इन्होंने आलवारों के उपदेशों के प्रचार हेतु एक संगठन स्थापित किया और भक्तिपूर्ण गीतों की रचना की। ये गीत मन्दिर आदि देव स्थानों में गाये जाने लगे, जिससे जन सामान्य ने इसे प्रेम से अपनाया इन गीतों की भाषा लोक-व्यवहार की प्रचलित भाषा थी, जिसका

---

42 गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय भावना—डा० व्योहार राजेन्द्र सिंह पृष्ठ 86।

परिणाम यह हुआ कि सामान्य जनभाषा भी देववाणी के समानान्तर स्थान पर आसीन हो गयी । भाषा का सरस और लोक प्रचलित रूप इसको और भी अग्रसारित करने में सहायक सिद्ध हुआ । वैष्णव धर्मों का उद्देश्य ही वेदशास्त्रों व प्रबन्धों की दुरूहता को विलग कर उसके सरल साधारण रूप में समन्वय कराकर जन सामान्य तक पहुंचाना । नाथ मुनि ने इसके लिए 'आचार्य' की गद्दी स्थापित की जो स्थायी परम्परा बन गई । इस गद्दी पर सर्वप्रथम नाथ मुनि आसीन हुए और उन्होंने 'योग-रहस्य' तथा 'न्यायशास्त्र' नामक ग्रन्थों की रचनायें की, जिसमें उनकी अलौकिक प्रतिभा और प्रकाण्ड विद्वता की स्पष्ट झलक मिलती है ।

यामुनाचार्य और रामानुजाचार्य

आचार्य नाथ मुनि के पश्चात् यामुनाचार्य जी हुए, जिन्होंने शंकर के अद्वैत-वाद का खंडन करके अपने 'सिद्धित्रय' ग्रंथ में विशिष्टताद्वैत की स्थापना की । वास्तव में विशिष्टाद्वैत का बीजारोपण ही यामुनाचार्य कर सके थे, किन्तु उसे पल्लवित, पुष्पित और फलित रूप प्राप्त करने का श्रेय यामुनाचार्य जी को है, इसलिए विशिष्टाद्वैत के प्रमुख प्रवर्तक रामानुजाचार्य अर्थात् रामानुज का विशिष्टा-द्वैत नाम से प्रचलन हुआ । यामुनाचार्य वैष्णव भक्त थे, इनके बहुत कुछ सिद्धान्त और मत आलवार भक्तों से अधिक प्रभावित थे, अतः उन्होंने यामुनाचार्य जी की शिष्यता ग्रहण की और उनके पर्यवसान के पश्चात् उनकी गद्दी पर वे ही आसीन हुये । रामानुज के अथक परिश्रम और प्रकाण्ड विद्वदत्ता के कारण उन्होंने जो सिद्धान्त ग्रंथ लिखे और जिन मतों व क्रियाओं का जनता में प्रचलन किया उनका प्रभाव अधिकता और स्थिरता के साथ पड़ा । सर्वप्रथम रामानुज की महानता और विशेषता का कारण उनका ब्राह्मणेतर जातियों को मन्दिर पूजा और वैष्णव चिन्ह धारण करने का अधिकार प्रदान कर धर्म के प्रति उदारता व्यक्त करना था ।

विशिष्टाद्वैत

इस प्रकार रामानुज के विशिष्टाद्वैत का विशद रूप से अध्ययन कर लेना आवश्यकीय है, कि इनके सम्प्रदाय के कौन-कौन सिद्धान्त थे । रामानुजाचार्य का ब्रह्म निर्गुण न होकर चिदाचिद् विशेषणों से विशिष्ट है । ब्रह्म के सम्बन्ध में उनकी धारणा यह है कि ब्रह्म समस्त द्वैत प्रपंच का कारण है और सर्वत्र सर्वशक्तिमान तथा सर्वव्यापी एवं कल्याण कर है । आचार्य रामानुज के मतानुसार 'चित-जीव और अचित् जगत ब्रह्म के शरीर है । शरीर तथा आत्मा के सम्बन्ध के अनुरूप ही ब्रह्म

और चिदाचिद् में भी शरीर-शरीरी भाव ही समझना चाहिए ।'[43]

उसी ब्रह्म के रूप का निरूपण डा० शर्मा ने अपनी पुस्तक में 'यतिपति मत दीपिका' के आधार पर इस प्रकार किया है—'प्रलयकाल में जीव जगत के सूक्ष्म रूप हो जाने पर सूक्ष्म चिद्चिद् विशिष्ट ब्रह्म कारणावस्था कहलाता है और सृष्टि काल में स्थूल रूप धारण करने के कारण स्थूल चिद्चिद् विशिष्ट ब्रह्म कार्यावस्था कहलाता है ।[44] इस प्रकार इनके अनुसार ब्रह्म कार्य और कारण दोनों ही हैं भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में उसका रूप बदलता रहता है । यथार्थतः रामानुज का जो सगुण ब्रह्म है शंकराचार्य का वही मायावी ईश्वर है ।

इसी प्रकार रामानुज के ईश्वर सम्बन्धी दृष्टिकोण पर भी विचार कर लेना युक्तिसंगत है । इनके अनुसार समस्त सृष्टि का नियन्ता एवं संचालक होने के कारण ही वह अंतर्यामी है और इसी कारण वह सर्वत्र व्याप्त है । डा० राममूर्ति शर्मा के अनुसार—'जिस प्रकार भौतिक शरीर का आत्मा जीव है उसी प्रकार जीव का आत्मा ईश्वर है ।'[45] 'सर्वदर्शन संग्रह' में विशिष्टाद्वैतवादी ईश्वर का रूप इस प्रकार वर्णित है—

'परमेश्वरस्य भोक्तृभोग्योरूम्योरन्तर्यामित्व रूपेणावस्थानम् ।[46]

अर्थात् ईश्वर भोक्ता जीव और भोग्य जगत दोनों में अंतर्यामी रूप में अवस्थित है ।

इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में ईश्वर की उत्पत्ति भगवान कृष्ण ने स्वयं अपने मुख से बतायी है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमद्धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यह्म् ।।[47]

अर्थात हे भारत ! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब तब ही मैं अपने रूप को रचता हूं अर्थात् प्रकट करता हूं । क्योंकि अधर्म के बढ़ने पर धर्म पर कुठाराघात होता है । और धार्मिक व्यक्ति को बड़ा कष्ट मिलता है, अतः

---

43. शंकराचार्य—उनके मायावाद तथा अन्य सिद्धान्तों का आलोचनात्मक अध्ययन, डा० राममूर्ति शर्मा, पृष्ठ 199 ।
44. वही, पृष्ठ 199 ।
45. वही, पृष्ठ 199 ।
46. सर्वदर्शन संग्रह 4, पृष्ठ 31 ।
47. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय-4, श्लोक 7 ।

उस कष्ट का निवारण इसी अलौकिक शक्ति के हाथ में है, अन्यथा कोई और धार्मिक व्यक्ति को बड़ा कष्ट मिलता है, अत: उस कष्ट का निवारण उसी अलौकिक शक्ति के हाथ में है अन्यथा कोई और शक्ति या उपाय नहीं है। इसी ईश्वर के सम्बन्ध में गोस्वामी जी ने स्पष्ट स्वरों में लिखा है—

ईश्वर अंश जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।[48]

मीमांसा की दृष्टि से भी यदि विचार किया जाय तो ईश्वर 'शेषी' है और जीव 'शेष' है। शेष जीव ईश्वर का उपकारक है, और उसी के निर्देशानुसार क्रिया करता है।

इसी प्रकार जीव के सम्बन्ध में रामानुज ने जीव को ब्रह्म का अंशी माना है। साथ ही उन्होंने बताया कि परमात्मा ध्यान, ज्ञान और भक्ति का वाचक है, और इस प्रकार उपासना करने पर परमात्मा प्रसन्न होकर मुक्ति देता है, इस मुक्ति की अवस्था में जीव और ब्रह्म में भिन्नता दृष्टिगत होती है। डा० राममूर्ति शर्मा ने 'गेटे' के विचार 'द वेदान्त' नामक पुस्तक से इस प्रकार उद्धृत किया है— 'रामानुज के सत्कार्यवाद के सिद्धांत के अनुसार जीव एवं जगत की सत्तायें ब्रह्म के परिणाम हैं। कार्य रूप जीव एवं जगत की सत्तायें ब्रह्म में वर्तमान रहती हैं।'

रामानुज दर्शन में जीव को 'ज्ञ' न कहकर 'ज्ञाता' कहा गया है और ज्ञाता होने के साथ-साथ जीव सर्वगत न होकर अणु है, आचार्य रामानुज का कथन है कि 'जिस प्रकार एक देशवर्ती मणि आदि का प्रकाश अनेक देशव्यापी देखा जाता है उसी प्रकार अणु जीवात्मा भी अपने ज्ञान के द्वारा सकल देश में व्याप्त रहता है।'[49]

जगत के सम्बन्ध में भी विशिष्टता द्वैत के अनुसार जगत ब्रह्म का शरीर है, इस अभिन्न सम्बन्ध के कारण उसे पुष्प में स्थित सुगन्ध को दूर या प्रथक नहीं किया जा सकता उसी प्रकार जगत को ब्रह्म से प्रथक विचार ही नहीं कर सकते, दोनों का अभेद सम्बन्ध है अत: ब्रह्म रूप विशेष्य से जगत उस ब्रह्म में ही एक भाव से अन्तर्भूत है।

इस क्रम से प्रलय काल में जीव और जगत ब्रह्म में एकाकार होकर लीन हो जाते हैं और सृष्टि या उत्पत्ति के समन्वय की कार्यावस्था में पहुंच कार्य प्रारम्भ करते हैं। चूंकि ब्रह्म से जगत की उत्पत्ति और दूध में दही की विद्यमानता के समान शाश्वत सम्बन्ध माना जाता है, इसलिए ब्रह्म के साथ जगत भी सत्य है, परिणाम-वाद के अनुसार ऐसा होता है, अतः इसे सत्यरूपातिवाद भी कहते हैं।

---

48. रामचरितमानस उत्तर काण्ड पृष्ठ।
49. श्रीभाष्य-2-3-26।

मुक्ति के विषय में रामानुज दर्शन के अन्तर्गत यह कहा गया है कि जब तक शरीर है, तभी तक दुःख-सुख का अनुभव रहता है, इसलिए जीवदशा में सायुज्य मुक्ति संभव नहीं। वस्तुत: कर्मनष्ट होने पर अर्थात् जीवन लीला समाप्त होने के बाद प्राणी का स्थूल शरीर चला जाता है और उसे दिव्य देह प्राप्त होती है, जिससे वह परमात्मा के सामीप्य का आनन्द लेने में समर्थ हो जाता है। भारतीय दर्शन ज्ञान मंडल के अक्षय और ध्रुव तारे के समान सदैव समान ज्योति प्रकाशित करने वाले है। विद्वता एवं बुद्धिमत्ता के प्राण डा० राधाकृष्णन ने 'भारतीय दर्शन' नामक पुस्तक में रामानुज दर्शन पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—

'रामानुज दर्शन में जीव और ब्रह्म का एक्य सम्भव नहीं है। मुक्त जीव में ब्रह्म के समान ही सर्वश्रत्व तथा सत्यसंकल्पत्व गुण तो आ जाते हैं, परन्तु उसमें ब्रह्म के सर्वव्यापकत्व एवं कर्तव्य गुण नहीं होते हैं। जीव अणु हैं परन्तु ब्रह्म सर्व-व्यापक है।'[50]

मुक्ति धर्म का एक विशेष अंग है किन्तु प्रत्येक मत और धर्म सम्प्रदाय को यह मान्य नहीं, क्योंकि मुक्ति प्राप्त होने पर मनुष्य की सारी क्रियायें शांत हो जाती हैं और निष्क्रिय हो जाता है। साथ ही पुनः वह संसार में नहीं आता है। उनका स्वरूप परमात्मा के रूप में तदरूप हो जाता है, अपनी सत्ता का परम सत्ता में लीन होना ही जीवन का प्रमुख और वास्तविक उद्देश्य होता है।

रामानुज दर्शन में शंकर के मतानुसार एक मायावी ईश्वर और एक निर्गुण ब्रह्म न होकर केवल एक सगुण ब्रह्म ही एक प्रमुख तत्व है। उन्होंने माया के सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार दिये हैं माया परमात्मा की विचित्र रूपाशक्ति है। आचार्य रामानुज माया शब्द को आश्चर्यवादी मानते हैं जिस प्रकार ये है 'माया परमात्मा की विचित्र रूप शक्ति है। आचार्य रामानुज माया शब्द को आश्चर्यवादी मानते हैं जिस प्रकार स्वप्न में रथादि का पूर्णतया अभाव होने पर भी रथादि की आश्चर्यजनक सृष्टि देखने में आती है, उसी प्रकार परमात्मा की यह सृष्टि भी आश्चर्य रूप है। परमात्मा की यह सृष्टिकर्ता शक्ति अचिन्त्य है।[51]

इस प्रकार माया परमात्मा की सहयोगिनी शक्ति के रूप में आती है, क्योंकि उसके ही क्रियाकलाप के सक्रिय सहयोग से सृष्टि उत्पन्न होती है। परमात्मा अकेला सृष्टि के उत्पन्न करने में समर्थ नहीं है। माया के संसर्ग से सृष्टि की उत्पत्ति संभव है, इसलिये माया परमात्मा की स्त्री रूप है, जो कि परमात्मा के साथ अपना

---

50. भारतीय दर्शन, डा० राधाकृष्णन, संस्कर 11-पृष्ठ 710।
51. श्रीभाष्य-3-2-3।

विशिष्ट स्थान रखती है। इसके अतिरिक्त 'आचार्य रामानुज ने कहीं-कहीं माया का अर्थ 'कूटयुक्ति' भी किया है।[52]

अतः धर्म के क्षेत्र में आचार्य रामानुज का जो व्यावहारिक और सफल रूप हमारे सामने आया है, उससे उनकी विद्वता, बुद्धिशीलता एवं धार्मिक उदारता की भावना स्पष्ट व्यक्त होती है। समाज की आवाज को सही अर्थ में सुनने वाले उस समय वही थे, इसीलिए जनता ने भी उन्हें अपना समझ उनके आदेशों व सिद्धांतों को ग्रहण किया। सर्व प्रमुख कार्य उनका शूद्रोद्धार करना था, यद्यपि ब्रह्म विद्या और वेदाध्ययन का अधिकार शूद्रों को नहीं प्राप्त था, लेकिन भागवत धर्म के अनुसार भगवान की निष्ठापूर्वक भक्ति करने का अधिकार उन्हें भी था, जो कि मुक्ति का एक साधन है। साथ ही अपनी विद्वता के कारण अनेक धर्मग्रन्थ का सरलीकरण कर उसे जनता के हृदय तक पहुंचाने का प्रयास किया, अनेक भाष्य लोक प्रचलित भाषा में लिखे, जिन्हें सामान्य जनता अपने हित में समझ प्रयोग में लाने लगी, मन्दिरों में नृत्य, कीर्तन आदि का प्रचलन इसी समय हुआ। इसलिए रामानुज का नाम ही विशिष्ट द्वैत के साथ प्रथम पंक्ति व शब्दों में आता है।

श्रीविष्णु सम्प्रदाय

रामानुज द्वारा प्रवर्तक श्री विष्णु सम्प्रदाय या वैष्णव सम्प्रदाय चला। इसी का ऐतिहासिक रूप में कुछ अध्ययन यहां अनिवार्य हो गया है। श्री रामानुज अपने धर्म प्रचार हेतु सम्पूर्ण भारत की यात्रा की और यथाशक्ति अपने धर्म का प्रचार किया। अपने धर्म की रक्षा भी उन्होंने बराबर की। एक बार चोल नृपति 'कुलोतुंग' ने वैष्णवों पर अत्याचार भी किये, जिसके लिये वे स्वयं श्रीरंगम् से मैसूर गये, और वहां के जैन राजा को अपनी अखंड प्रतिभा और सशक्त विचारों से प्रभावित किया और उन्होंने वैष्णव धर्म को स्वीकार कर लिया। आचार्य रामानुज के धर्म में प्रमुख रूप में जातिभेद और छुआछूत को दूर करना था तथा मोक्ष का भार गुरू के ऊपर माना जाता था इसमें प्रवृत्ति शब्द का प्रयोग किया गया है, प्रवृत्ति का अर्थ सर्वस्व रूप से ईश्वर की शरणागति होना, जैसा कि गीता में भी कहा गया है—

'सर्वधर्माणि परित्यज्य मानेकं शरणं व्रज'[53]

---

52. रामानुज भाष्यगीता-7-15।
53. श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय 18, श्लोक 66, पृ० 323।

कुछ वैचारिक विभिन्नता के कारण इस सम्प्रदाय वालों के दो भेद हो गये— वेदगलाई और तेगंलाई । 'वेदगलाई सम्प्रदाय वाले प्रवृत्ति को अर्थ मोक्ष का मात्र एक उपाय मानते हैं और स्वकर्म पर जोर देते हैं, तथा इन्होंने संस्कृति भाषा को ही धर्म की भाषा माना है ।

जबकि 'तेगंलाई' मत के अनुयायी प्रवृत्ति को ही मोक्ष का साधन मानते हैं और लोक भाषा को ही धर्म की भाषा मानते हैं, और गुरु की आवश्यकता मोक्ष के लिए अनिवार्य माना है, गुरु को ही प्रवृत्ति का आधार माना है। इसके साथ ही दूसरा मतभेद यह है कि वेदगलाई मत के अनुयायी ब्राह्मणों को ही धर्म का और वेद मंत्र का अधिकार देते हैं, जबकि तेगंलाई शूद्रों को भी वेद मंत्र पढ़ने का अधिकार देते हैं।

वैष्णव सम्प्रदाय के इतिहास में रामानुज के बाद कुरूकेश और उनके बाद विष्णुचिन्त हुये । इन्होंने भी धर्म ग्रन्थों में अपने धर्म का प्रचार किया, इसके ग्रंथ 'साराफी चतुष्ट्य' तथा 'विष्णु-पुराण' है । विष्णुचित के बाद बरदाचार्य जी गद्दी पर बैठे, आपने 'तत्वसार' तथा 'श्रुत प्रकाशिका' टीका लिखी जिसमें रामानुज के श्रीभाष्य का सरलीकरण है, अत: श्रीभाष्य को समझने में बहुत सहायक है । इसके बाद 'ऐत्रेय रामानुज' और फिर 'वेदान्त देशिक' जी हुये, जो कि अपनी अलौकिक और अद्वितीय प्रतिभा के कारण वैष्णव आचार्यों में सबसे प्रसिद्ध हैं, आप कवि तत्ववेन्ता और लेखक सभी रूपों में गोरव प्राप्त है, आपने संस्क्रत और तमिल भाषा में सभी प्रकार के ग्रंथ जो कि विद्वानों और जनसामान्य सभी के लिये उपयोगी सिद्ध हुये ऐसे ग्रंथों की रचना की, आपने सैकड़ों की संख्या में ग्रन्थ रचे इस प्रकार वैष्णव सम्प्रदाय में ये प्रमुख आचार्य हुये, जिन्होंने अपने मत का प्रचार करने में पूरा सहयोग दिया और अपनी साधना का परम उद्देश्य सम्पूर्ण भारत में अपने धर्म का प्रचार करना ।

मध्वाचार्य कांकर और रामानुज

मध्वाचार्य का जन्म दक्षिण कांडा क्षेत्र में उडुपी के सास्र पाजक नामक ग्राम में हुआ था । ये कर्नाटकी आश्वलायन ब्राह्मण थे । इनके पिता का नाम मध्वगेह तथा माता का नाम वेदवेदी था । चूंकि अनतेश्वर की उपासना के परिणामस्वरूप होने के कारण इनका नाम वासुदेव रखा गया । गुरुगृह रहकर ही विद्याध्ययन किया और गुरु आज्ञा से युवावस्था में ही संन्यास ग्रहण कर लिया, अत: गुरु ने इनका नाम आनन्दतीर्थ रखा, किन्तु फिर भी ये मध्वाचार्य के नाम से ही प्रसिद्ध हैं । आपने जगत को ईश्वर से प्रथक सत्य मानकर द्वैतवाद सिद्धांत की स्थापना की । इसके साथ ही इन्होंने ब्रह्मसूत्र गीता और उपनिषदों पर भाष्य लिखे तथा वेदान्त का अध्ययन कर अपने मत और बुद्धि के अनुसार कई टीकायें लिखीं । अपने द्वैतवाद के आधार

पर आपने रज्जुगत सर्प-भ्रम मिथ्या न होकर सत् ही है। अश्वदर्शन में मुख्य रूप से पाँच प्रकार के भेद माने गये हैं—

ईश्वर और जीव भेद—वास्तव में ईश्वर और जीव दो भिन्न-भिन्न सत्तायें हैं। ईश्वर सेव्य और जीव सेवक है। ईश्वर सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है। जबकि जीव अल्पज्ञ एवं अल्पशक्तिमान है, ऐसे ही ईश्वर सतत् स्वतंत्र एवं पूर्ण है, इसमें किसी भी प्रकार का अभाव नहीं, जबकि जीव में अभाव ही अभाव हैं तथा वह निरन्तर परतन्त्र रहने वाला है। अत: मध्वाचार्य जी ने इस प्रकार अपने दर्शन में ईश्वर और जीव में कैसा वैभिन्नय है, स्पष्ट किया है।

ईश्वर और जड़ जगत का भेद—उपर्युक्त कथनानुसार जैसा कि ईश्वर और जीव में भेद बताया है वैसे ही ईश्वर और जगत में भी भेद है क्योंकि ईश्वर चेतन शक्ति है और जगत जड़ ईश्वर सृष्टा है और जगत उसकी सृष्टि। अर्थात्, उसका मूल रूप ईश्वर में ही है। अत: स्पष्ट है कि ईश्वर और जगत के इन स्वाभाविक गुणों से दोनों में भेद अवश्यम्भावी है, क्योंकि वह उससे उत्पन्न रूप है न कि वही है।

जीव और जगत का भेद—जीव में चेतन सत्ता होने के कारण ईश्वर का चेतन गुण है, जब कि जगत में उसका सर्वथा अभाव है अर्थात् जगत जड़ है उसमें किसी प्रकार की स्वत: क्रियाशीलता सम्भव नहीं। साथ ही एक महत्वपूर्ण भेद बुद्धि तत्व का भी है, जीव में बुद्धि विद्यमान रहती है, जबकि जगत् उससे शून्य है।

जीव और जीव में भेद—यह एक विचारणीय तथ्य है कि जीवों में भी परस्पर भेद मध्वाचार्य जी ने यह भेद उनकी विभिन्न विचारधारा के आधार पर स्पश्ट किया है। विचार और अनुभव अनन्त है अत: प्रत्येक जीव पहुंच एक-सी और एक निश्चित स्थान तक नहीं होती। डा० राममूर्ति शर्मा के अनुसार वृद्धावस्था एवं मुक्तावस्थाओं में जीवों के विलक्षण अनुभव इसके प्रमाण हैं। प्रत्येक व्यक्ति की जीवन पद्धति में प्रथकता जीव-जीव में भेद का स्पष्ट उदारण है।

जड़ और जड़ का भेद—जब जीवों में परस्पर भेद होता है तो जड़ वस्तुओं में तो भेद स्वाभाविक है प्राय: दो जड़ वस्तुओं में तो भेद स्वाभाविक है, प्राय: दो जड़ वस्तुओं को एक ही समय में दर्शन करने से उनमें व्याप्त पारस्परिक भेद स्पष्ट हो जाता है।

अत: सिद्ध है कि इसी भेदभाव के कारण ही मध्वाचार्य जी ने अपने मत का नाम करण 'द्वैतवाद' किया। अर्थात् सृष्टि के अणु से अणु पदार्थ से लेकर महान से महान वस्तु में भेद दिखाई पड़ता है। इन्होंने अपने पंथ में छाप लगवाना (अंकन

कराना) नामकरण करना और भजन करना ये तीन प्रकार की सेवा बतायी है। इनके अनुसार विष्णु परमात्मा का रूप है अत: विष्णु के आभूषण शंख, चक्र, आयुध आदि का शरीर पर अंकन कराना और अपने पुत्रादि का नाम विष्णु के नाम पर रखना ताकि विष्णु का नाम प्रतिपल निरन्तर लिया जा सके, यह नामकरण सेवा है। भजन के अन्तर्गत आपने सत्य, हि, प्रिय भाषण स्वाध्याय तथा दया, स्पृहा और श्रद्धा आदि को अपने स्वभाव में लाना और समस्त कृष्णार्षण करना ही भजन कहलाता है, इसके साथ ही द्वादशी व्रत, पूजा आचार्य मध्वाचार्य के मत के अनुयायियों के प्रिय कार्य थे। ऐसा द्वैतमत का मूल सिद्धान्त माना गया है। वैसे आचार्य जी ने अपने विचार ईश्वर, जीव, मुक्ति और माया के स्वरूप पर भी दृष्टिपात किया है।

ईश्वर—विष्णु परमात्मा का रूप है, अतः उत्पत्ति स्थिति संहार, नियमन, ज्ञान, आवरण, बन्धन और मोक्ष आठो के कर्ता वही हैं। इन्होंने अपने सिद्धान्त की प्रतिष्ठा के कारण शिव व रुद्र की कटु अवहेलना की। शिव के विरुद्ध आक्षेप करने के कारण दक्षिण में शैव और वैष्णव में झगड़ा ही हो गया। डा० राममूर्ति शर्मा के अनुसार 'आचार्य महल का ईश्वर' कारण मात्र है। ईश्वर उपादान कारण नहीं है। ईश्वर एक होकर भी अनेक रूपों में व्यक्त होता है। लक्ष्मी परमात्मा की सहचरी-शक्ति है। परमात्मा से अत्यन्त भिन्न होकर भी लक्ष्मी पूर्ण रूप से परमात्मा के आश्रित हैं।'[54]

जीव—जीव की सत्ता परमात्मा से पृथक मानी गई है क्योंकि जीव परमात्मा से उत्पन्न है न कि परमात्मा है। जीव में अज्ञानता के कारण दु:ख, मोह, ईर्ष्या आदि दोष व्याप्त रहते हैं। जीव की इनसे मुक्ति नहीं, क्योंकि ये मानसिक दुर्बलतायें सदैव ही रहती हैं। जीव अनेक झंझाबातों से झूझते रहने के कारण परिवर्तनशील हो हो जाता है। अत: स्वाभाविक रूप से ईश्वर और जीव में बहुत बड़ा अन्तर है। डा० राममूर्ति शर्मा ने जीवों की भी तीन कोटियां बतायी हैं—(1) मुक्तियोग (2) नित्य संसारी और (3) तमोयोग्य, मुक्तियोग्य जीव देव, ऋषि पितृ, चक्रवर्ती तथा उत्तम मनुष्य रूप पांच प्रकार के होते हैं।

नित्य संसारी जीव कर्मानुसार सदा स्वर्ग नरकीय लोकों में विचरण करते रहते हैं। वे कभी मुक्त नहीं होते।

---

54. शंकराचार्य—उनके मायावाद तथा अन्य सिद्धान्तों का आलोचनात्मक डा० राममूर्ति शर्मा पृष्ठ 214।

ऐसे ही तमोयोग्य जीवों में दैत्य, राक्षस, पिशाच तथा अधम मनुष्य में चार प्रकार के जीव आते हैं।[55] इस प्रकार द्वैत दर्शन के आधार पर जीवों का वर्गीकरण युक्ति संगत है, वस्तुतः संसार में प्रत्येक जीव में अपनी विशिष्टता रहती है। अतः सभी के बीच एक सीमा रेखा खींचना उचित नहीं है।

मुक्ति—जीव के जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष है, क्योंकि वहीं पहुंच कर व्यक्ति अपने अनुरूप सुख की अपेक्षा करता है, मध्य दर्शन का पार ब्रह्म एक विष्णु हैं। अतः विष्णु का साक्षात्कार करना ही मोक्ष कहलाता है। व्यक्ति जीवन के अनेक सुख-दुःख के टेढ़े-मेढ़े कंकरीले पथ पर अग्रसित होते, जिस लक्ष्य की प्राप्ति एकनिष्ठ और सच्चे सरल साधनात्मक ढंग से करता है वहीं मोक्ष है। मोक्ष की कोई विशिष्ट दशा या अवस्था निश्चित नहीं, बल्कि जीव में मैं और तू का भेद मिटा कर सम्पूर्ण सृष्टि को ब्रह्ममय देखकर दुःख-सुख के परे की अनुभूति जब हो जाती है तभी जीव मुक्त हो जाता है। डा० शर्मा के शब्दों में 'मध्वामत के अनुसार मुक्त पुरुष आनन्दानुभव अवश्य करता है, परन्तु आनन्दानुभूति में परस्पर तादात्मय होता है। मुक्तावस्था में प्रत्येक जीव का आनन्दानुभव भिन्न होता है।'[56]

जीव को सम, दम, नियम, आदि साधनों एवं गुरु तथा ईश्वर की अवाध्य भक्ति से प्रसन्न होकर ही परमात्मा मोक्ष देता है। व्योहार राजेन्द्र सिंह के विचारानुसार 'हृदय में बिम्ब रूप से वर्तमान परमात्मा का अपरोक्ष ज्ञान तथा पांच भौतिक देह सम्बन्धी निवृत्ति ही मोक्ष है।'[57]

मध्व-दर्शन में माया का स्वरूप—मध्वाचार्य जी ने अपने पूर्ण प्रदर्शन ब्रह्मसूत्र भाष्य में 'माया भान्तु कात्स्न्यें नार्मभि व्यक्त स्वरूप त्वात्।' सूत्र का भाष्य करते हुये माया शब्द का अभिप्राय स्वप्न से ही लिया है।'[58] अतः स्पष्ट है कि माया का स्वरूप स्वधावत है क्योंकि माया प्रतिछाया स्वरूप है, ईश्वर ने सृष्टि उत्पत्ति के समय असहयोग अवश्य लिया, किन्तु वैसे माया नश्वर है, और इसी कारण दोनों के सह-सहयोग से सृष्टि अपने शाश्वत रूप में किसी सीमा तक होने के बाद भी माया सेआवद्ध होने के कारण नश्वरता स्वाभाविक लक्ष्य है।

---

55. शंकराचार्य—उनके मायावाद तथा अन्य सिद्धान्तों का आलोचनात्मक अध्ययन, डा० राममूर्ति शर्मा, पृष्ठ 214।
56. शंकराचार्य—उनके मायावाद तथा अन्य सिद्धान्तों का आलोचनात्मक अध्ययन, डा० राममूर्ति शर्मा, पृष्ठ 214।
57. गोस्वामी तुलसीदास, की समन्वय साधना-व्योहार राजेन्द्र सिंह, पृष्ठ 94।
58. पूर्ण प्रज्ञदर्शन-(3।2।3)।

निम्बार्काचार्य, बल्लभाचार्य, आलवार और आचार्य

निम्बार्काचार्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि—आचार्य निम्बार्काचार्य जी ने अपनी विचारधारा के अनुसार द्वैताद्वैत सिद्धान्त की प्रतिस्थापना की। वस्तुतः यह द्वैता-द्वैतवाद भाष्कर (8वीं शताब्दी) और यादव (11वीं शताब्दी) के भेदाभेद सिद्धान्त का नवअंकुरित विकसित रूप था। आचार्य निम्बार्क यादव के लगभग सौ वर्ष बाद हुआ था, और इन्होंने उस यश एवं कीर्ति की जगमगाहट को खो देने वाले भेदाभेद सिद्धान्त के प्रखर एवं प्रज्ज्वलित प्रकाशित रूप को पुनः प्राप्त करा दिया। पुनः भेदाभेद सिद्धांत को गौरव प्राप्त कराने का श्रेय आचार्य निम्बार्क को ही है। आचार्य निम्बार्क के दर्शनान्तर्गत जीव, जगत, ईश्वर और मोक्ष के सम्बन्ध में निम्नांकित विचार थे :—

जीव—आचार्य निम्बार्क का मत बहुत ही समन्वयात्मक है, उसमें द्वैत और अद्वैत दोनों सिद्धान्तों का सम्मिश्रण है अतः जीव के सम्बन्ध में उनका मत रामानुजाचार्य के अनुसार चेतन स्वरूप ज्ञान, प्रज्ञा और ज्योति युक्त है, क्योंकि वह ब्रह्म से उत्पन्न है अतः उसमें और ब्रह्म में अभेद न होने से अंशी और अंश भाव है। इसी कथन की पुष्टि निवासाचार्य ने 'वेदान्त कौस्तुभ' में इस प्रकार कि अंश शब्द का शक्ति रूप है।[59]

अज्ञान और माया के पटाक्षेप के कारण जीव में कर्त्तव्य और भोतृत्व की अहं भावना बनी रहती है, अतः विभिन्न साधना के बाद प्रभु के प्रसन्न होने पर ही यह आवरण दूर होता है और जीव मुक्तावस्था को प्राप्त करने में समर्थ होता है इसके साथ ही 'मुक्ति' सच्चे ज्ञान और भक्ति दोनों का सम्मिलन है।

जगत—जगत के सम्बन्ध में निम्बार्क ने विभिन्न दर्शनों एवं उपनिषदों की समन्वयात्मक व्याख्या की है। उन्होंने अपनी पुस्तक में लिखा है कि मूलरूप से जगत अचित् जड़ पदार्थ है, और इस जड़ जगत के उन्होंने तीन रूप माने हैं—प्राकृत, अप्राकृत और काल।[60]

इसके पश्चात् प्राकृत, अप्राकृत और काल का पृथक्-पृथक् विवेचन किया है। सांख्यामत के अनुसार महत् तत्व से लेकर महाभूत पर्यन्त, जगत प्राकृत है, यह प्रकृति भी सांख्यवत त्रिगुणात्मिका है, लेकिन परतन्त्र है अतः ईश्वराधीन है। भगवान के लोक और आभूषण आदि अप्राकृत पदार्थ है, क्योंकि प्रकृति के गुणों से निर्मित नहीं

---

59. वेदान्त-कौस्तुभ-(2।3।42) निवासाचार्य।
60. दशश्लोकी-3 श्लोक।

होते । यहाँ निम्बार्क की अप्राकृत तत्व की कल्पना आचार्य रामानुज के शुद्ध सत्व से साम्य रखती है । लेकिन काल तत्व दोनों से प्रथक् है सम्पूर्ण संसार के चक्र का नियात्मक वही है, लेकिन ईश्वर के वह भी आधीन है । काल स्वरूप से नित्य होते हुए भी कार्यरूप में अनित्य रहता है ।

द्वैताद्वैत सिद्धान्त के अनुसार जगत असत्य और मायाविक नहीं है, वरन् ब्रह्म का ही दूसरा (परिणाम) या रूप है । जगत की असत्यता उसकी नश्वरता के कारण है, और ब्रह्म के बिना उसकी कोई सत्ता नहीं है । अतः वह ब्रह्म से एक रूप भी है और पृथक् मी, जैसे लहर समुद्र से पृथक् है और एक भी । यही द्वैताद्वैत है ।

ईश्वर—आचार्य निम्बार्क ब्रह्म को सगुण मानने के पक्ष में रहे हैं । उनका ईश्वर अशेषबंगन, बल आदि कल्याण गुणों का भण्डार और अविद्या आदि दोषों से मुक्त है । साथ ही जीव को ब्रह्म का अंश माना है, और इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है कि—

देहबुद्धया तु दासोच्हं जीव बुद्धया त्वंदशकः ।
वस्तुतस्तु त्वमेवाइहं इति में निशिचता भतिः ।।[61]

आचार्य निम्बार्क ने 'कमलनेत्र भगवान कृष्ण को ही ईश्वर का रूप दिया है ।'[62] इसके साथ ही में ईश्वर को उपादान और निमित्त दोनों कारण मानते हैं। क्योंकि चित् और अचित् शक्तियों का स्थूल रूप में प्रकटीकरण जगत का उपादान कारण कहलाता है और वही ईश्वर जब जीव के कर्मानुसार उसके फल का नियन्ता और व्यवस्थापक बन जाता है, तो निमित्त कारण कहलाता है । यह मत रामानुज के मत से साम्य रखता है । रामानुज ने चित्त और उचित को ब्रह्म का शरीर माना है तो निम्बार्क ने दोनों को ब्रह्म की शक्तियां माना है, और इसी शक्ति का परिणाम जगत की सृष्टि है, अर्थात् दोनों ही परिणामवाद के समर्थक हैं । अतः इस प्रकार निम्बार्क और रामानुज में परस्पर बहुत ही साम्य दिखाई देता है , साथ ही समय-समय पर उपनिषदों और श्रुतियों के वाक्यों को अंगीकृत किया है ।

मुक्ति—जीवन की एक अवस्था मुक्ति की भी है किन्तु यह मुक्ति मानव प्रयास का परिणाम नहीं बल्कि सभी आचार्यों ने इसे भगवदनुग्रह का कृपाफल ही माना

---

61. दशश्लोकी-4 श्लोक ।
62. वही ।

है। बिना उसकी कृपा के मुक्ति सम्भव नहीं। व्यौहार राजेन्द्र सिंह के शब्दों में जीव की मुक्ति उसके असली स्वरूप पहिचानने में हैं जो कि सच्चे ज्ञान और भक्ति के सम्मिलन से ही हो सकता है। ज्ञान से सर्वव्यापी ब्रह्म का अनुभव होता है और भक्ति से सर्वग्राही प्रेम उत्पन्न होता है, जिसकी अन्तिम परिणति सात (आत्मा) के अनन्त (परमात्मा) में समवेत हो जाने में है। इस दशा में आत्मा का व्यक्तित्व तो कायम रहता है परन्तु उसकी इच्छा ब्रह्म के समान हो जाती है।[63]

अत: स्पष्ट होता है कि जीव बह्म से पृथक होते हुए भी एक है अस्तु यही द्वैताद्वैत सिद्धान्त है। जीव के इसी द्वैत रूप होने के कारण डा० राममूर्ति शर्मा ने मुक्त जीव के भी दो भेद माने हैं—1. नित्यमुक्त जीव और 2. साधना भौरा संसार-चक्र से मुक्त होकर परमानन्द की प्राप्ति करने वाला जीव। भगवद्भावोत्पन्न जीव समस्त सांसारिक क्लेशों से मुक्ति पा लेता है, परन्तु यह भगवद्भावायन्ति शरीर सम्बन्ध रहने पर असम्भव है। अतएव निम्बार्क दर्शन में जीव-मुक्ति मान्य नहीं है।[64]

निम्बार्क-दर्शन में माया का स्वरूप—माया के स्वरूप को भी इन्होंने रामानुज के ही समान विचित्र रूपा शक्ति माना है। निम्बाकाचार्य ने 'माया को आश्चर्यवाची माना है।'[65] उन्होंने कहा है कि 'सत्य, संकल्प, सर्वज्ञ' परमेश्वर ही स्वप्नदृष्टि रथादि कार्यों का निर्माता है। प्रधान त्रिगुणात्मिका प्रकृति के अर्थ में ही निम्बार्क दर्शन में माया का व्यवहार मिलता है।[66] इस प्रकृति का सहचरी रूप में स्वीकारने से निम्बार्क का सांख्यदर्शन से प्रभावित होना परिलक्षित होता है। एक अन्य स्थल पर निम्बार्क का कथन है कि 'गुणमयी प्रकृतिरूपिणी अनादि माया से आवृत होने के कारण जीव का धर्मभूत ज्ञान संकुचित हो जाता है।'[67] इस प्रकार निम्बार्काचार्य ने स्वयं ही माया को प्रकृति शक्ति के रूप में माना है, इस माया के ही कारण जीव अज्ञान के पर्दे से आवृत रहता है।

बल्लभाचार्य—बल्लभाचार्य का सिद्धांत शुद्ध द्वैतवाद के नाम से प्रख्यात है, किन्तु उनका लक्ष्य यह सिद्ध करना था कि शंकर के मायावाद के अज्ञान में भी अद्वैत की सिद्धि सम्भव है। उनका कहना है कि अद्वैत सदैव शुद्ध रहेगा, क्योंकि कारण रूप ईश्वर और कार्य रूप विश्व दोनों ही माया रहित हैं और शुद्ध हैं। इसके

---

63. गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय साधना, व्योहार राजेन्द्र सिंह, पृष्ठ 96।
64. डा० राममूर्ति शर्मा, शंकराचार्य उनके मायावाद—पृष्ठ 211।
65. वेदान्त पारिजात सौरभ 3-2-3।
66. दशश्लोकी-3।
67. दशश्लोकी-2।

साथ ही उन्होंने ब्रह्म के दो रूप माने हैं—1. पूर्ण ब्रह्म या पुरुषोत्तम और 2. अक्षर ब्रह्म।

पूर्णब्रह्म में ज्ञान और भोक्ता दोनों हैं, सम्पूर्ण विश्व उसकी लीला मात्र है। इसके विपरीत अक्षर ब्रह्म में सत् और चित् तो पूर्ण है किन्तु आनन्द की मात्रा अत्यन्त है। वह भिन्न-भिन्न रूपों को धारण करता है। लेकिन पुरुषोत्तम तत्वाक्षर और अक्षर दोनों से परे है, इस प्रकार परब्रह्म और अक्षरब्रह्म में भेद करने वाले प्रथम आचार्य बल्लभाचार्य ही थे।

बल्लभाचार्य के श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं जो दिव्य गुणों से सम्पन्न होकर पुरुषोत्तम कहलाते हैं। वे सगुण रूप को ही सत्य और परमार्थिक रूप मानते हैं तथा निर्गुण को उसका अंशत: तिरोहित रूप। वे भक्ति प्रधान आचार्य थे, और उसमें भी प्रेमलक्षणा भक्ति को ग्रहण किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में 'प्रेम साधना में बल्लभ ने लोक मर्यादा और वेद मर्यादा दोनों का त्याग विधेय ठहराया। इस प्रेम लक्षण भक्ति की ओर जीव की प्रवृत्ति तभी होती है, जब भगवान का अनुग्रह होता है। जिसे पोषण या पुष्टि कहते हैं। इसी से बल्लभाचार्य जी ने अपने मार्ग का नाम 'पुष्टि मार्ग' रखा हैं।[68]

ब्रह्म—उपर्युक्त विवेचन से बल्लभाचार्य जी के ब्रह्म सम्बन्धी विचार स्पष्ट हो जाते हैं। अब स्वयं आचार्य जी के शब्दों में ब्रह्म सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वगुण सम्पन्न तथा सच्चिदानन्द स्वरूप है ब्रह्म की निर्गुणता की सूचक-श्रुतियों के सम्बन्ध में अणुभाष्यकार का कथन है कि ऐसी श्रुतियां ब्रह्म के साधारण गुणों का निषेध करती हैं।[69] बल्लभ मत में जगत और ब्रह्म में कोई भेद नहीं माना गया है, वह उसका तथ्य है। आविर्भाव काल में जो जगत है वह तिरोभाव में ब्रह्म बन जाता है। व्योहार राजेन्द्र सिंह के अनुसार 'ज्ञान के द्वारा मोक्ष देने की इच्छा से ब्रह्म चार रूपों में विभक्त होता है—अक्षर, काल, कर्म और स्वभाव। अक्षर के दो रूप होते हैं—प्रकृति और पुरुष। यह प्रकृति ही जगत रूप में परिवर्तित होती है।'[70]

जीव—सृजन की इच्छा होने पर ईश्वर अक्षर में अनेक अग्नि कणों को हजारों रूप में जीवों की उत्पत्ति करता है, अर्थात् वह उसी का अंश रूप है, केवल आनन्द का अभाव होने के कारण वह बन्धन में पड़ा हुआ है। आचार्य रामचन्द्र

---

68. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 152।
69. अणुभाष्य-13-2-22।
70. गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय साधना, व्योहार राजेन्द्र सिंह, पृष्ठ 98।

शुक्ल के अनुसार 'उन्होंने जीव तीन प्रकार के माने हैं—1. पुष्टि जीव जो भगवान के अनुग्रह का ही भरोसा रखते हैं और नित्य लीला में प्रवेश पाते हैं। 2. मर्यादा जीव जो वेद की विधियों का अनुसरण करते हैं और स्वर्गादि लोक प्राप्त करते हैं। 3. प्रवाह जीव—जो संसार के प्रवाह में पड़ें सांसारिक सुखों में ही निरत रहते हैं।'[71]

जगत—ईश्वर शुद्ध एवं सत्य है। परिणामस्वरूप उसका अंशज भी सत्य एवं शुद्ध होगा। बल्लभाचार्य जी ने भक्ति के प्रेममय स्वरूप को ही महत्व दिया है, समस्त सृष्टि ईश्वर रूप है, अत: सभी से प्रेम आवश्यकी है। इस प्रेम-तत्व की प्रखरता और यथार्थता के लिए सर्वात्मभाव उसका एक प्रेरक अंग है। ज्ञानियों और भक्तों के सर्वात्मभाव में विशेष अन्तर यह है कि ज्ञानी ब्रह्म को सर्वत्र देखता है, लेकिन भक्त सम्पूर्ण सृष्टि को ब्रह्म में देखता है। इस प्रकार की दृष्टि हो जाने पर जिस आनन्द की प्राप्ति होती है, वह ब्रह्मानन्द से कहीं श्रेष्ठ है। डा० राममूर्ति शर्मा ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया है कि 'बल्लभाचार्य के दार्शनिक विचारानुसार शुद्ध ब्रह्म ही कारण एवं कार्य है। शुद्ध ब्रह्म को जगत की सृष्टि के लिए किसी अन्य वस्तु की अपेक्षा नहीं है।'[72]

डा० व्योहार जी के शब्दों में विश्व उसकी लीला से उत्पन्न है अत: विश्व के रूप में परिवर्तित होकर भी ब्रह्म में कोई विक्रिय (विकार) नहीं आती। यही 'अविकृत परिणामवाद' है। अर्थात् ब्रह्म स्वेच्छा से जगत की सृष्टि और संहार करता है।'[73]

मोक्ष—मोक्ष या मुक्ति की प्राप्ति के दो साधन हैं—एक भक्ति और दूसरा ज्ञान। भक्ति भी दो प्रकार से मानी जाती है—मर्यादा भक्ति, और पुष्टि भक्ति। मर्यादा भक्ति के अन्तर्गत जीव को वैदिक क्रियाओं को बराबर ईश्वर से अखंड प्रेम हो जाने तक करते रहना है, और उस प्रेम से प्रसन्न होकर ही ईश्वर 'सायुज्य मुक्ति' देता है। उसके विपरीत पुष्टि मार्ग में केवल सर्वात्म भाव ही है, इसी से सबको (स्त्रियों, शूद्रों) इसे अपनाने का अधिकार है जबकि मर्यादा केवल तीन वर्गों और पुरुषों को ही सुलभ है। भगवद्नुग्रह के द्वारा ही जीव को मुक्ति लाभ होता है। भागवत में

---

71. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 152।
72. शंकराचार्य—उनके मायावाद तथा अन्य सिद्धांतों का आलोचनात्मक अध्ययन, डा० राममूर्ति शर्मा, पृष्ठ 216।
73. गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय साधना, डा० व्योहार राजेन्द्र सिंह पृष्ठ 98।

भी भगवद्नुग्रह को ही पोषण या पुष्टि कहा गया है।'[74] मुक्तावस्था में ईश्वर और जीव का भेद समाप्त हो जाता है, पुष्टि मार्ग का यही वास्तविक और एक मात्र लक्ष्य है।

माया का स्वरूप—शुद्ध द्वैत दर्शन के अनुसार मायिक जगत मिथ्या न होकर सत्य है जो कि शंकर के मायावाद से सामीप्य रखता है। आचार्य बल्लभ माया के मिथ्या मानने में पूर्णतः असहमत हैं। वस्तुतः माया ब्रह्म का भिन्न और कार्य शक्ति रूप है। डा० राममूर्ति शर्मा 'इस सिद्धांत के अनुसार ब्रह्म एवं उसकी शक्ति माया में परस्पर भेद मान कर सम्बन्ध नहीं मानना चाहिए। जैसा कि 'मम माय' आदि वाक्यों से प्रतीत होता है।'[75] इस प्रकार के वाक्य भगवान और उनकी माया के अभिमत्व की ही सूचक है।

आलवार तथा अन्य आचार्यों के मतों में समन्वय

वस्तुतः आलवार ही सर्वप्रथम धर्म प्रणेता माने जाते हैं। आलवारों ने ईसा की छठी शताब्दी में तमिल प्रदेश में जो भक्ति की पावन गंगा बहाई, वह बाद की शताब्दियों अर्थात् आज तक प्रवाहमान बनी रही। आलवार भक्ति प्रधान थे, ये हृदय के भावुक थे। उनका काम केवल भक्ति भावना के समाधिमय क्षणों में अपने मानस में उत्पन्न होने वाले उद्गारों को सुन्दर पदावली में व्यक्त करना था। आलवारों ने भक्ति को प्रधानता दी और यही रूप आगे चलकर वैष्णव धर्म में अत्यधिक प्रकाशित हुआ। बल्लभाचार्य ने जिस सर्व समर्पण भाव का प्रतिपादन किया है, उसका मूल आलवार युग में ही दृष्टिगत होता है। डा० मलिक मुहम्मद ने लिखा है 'भगवान की शरण में अपने को पूर्ण समर्पित करने से भगवान के अनुग्रह का उदय हो सकता है। आलवारों ने अन्य सभी मार्गों से भक्ति-मार्ग को श्रेष्ठ बताकर शरणागति तत्व पर अधिक जोर दिया है।'[76] आलवरों ने अपनी रचना 'प्रबन्धम्' में की और इनकी भाषा लोक प्रचलित थी। उनके प्रबन्धम् की महत्ता 'दिनकर' के शब्दों में डा० मलिक मोहम्मद ने व्यक्त किया है—'गीता और भागवत प्रथा गीता और रामानुज के बीच की कड़ी यह आलवार संत है। भक्ति का दर्शन

---

74. भागवत-12-10।
75. शंकराचार्य उनके मायावाद तथा अन्य सिद्धांतों का आलोचनात्मक अध्ययन, डा० राममूर्ति शर्मा, पृष्ठ 216।
76. आलवार भक्तों का तमिल प्रबन्धम् और हिन्दी कृष्ण काव्य, डा० मलिक मोहम्मद, पृष्ठ 57।

आलवारों के तमिल प्रबन्धों से आया है और कदाचित भागवत भी उसी प्रबन्ध से प्रेरित है।[77]

इस प्रकार आलवारों के दर्शन का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि जो धर्म की विभिन्न धारायें आगे चलकर समयानुकूल विभिन्न रूपों और नामों से प्रचलित हुई। उनका उद्बीजन पूर्व से ही हो चुका था। वैष्णव आचार्यों में भी नाथमुनि ने आलवारों के गीतों को वेदों के समान एक निश्चित गीत पद्धति में गाये जाने की योजना थी।

आलवारों और आचार्यों के विचारों में यद्यपि बहुत साम्य दिखाई देता है किन्तु फिर भी कुछ अन्तर होते हुए भी दोनों ने ऐक्यहोन का ही प्रयास किया। आलवरों ने जिस दर्शन पद्धति को लोक भाषा में प्रचलित किया, आचार्यों ने उसे ही दार्शनिक पृष्ठभूमि देकर देववाणी में ग्रन्थित किया और उसे विद्वानों के मस्तिष्क योग्य बनाया, आलवारों के गीत यद्यपि विद्वानों के बीच स्थान नहीं रखते थे फिर भी पंडितों में उनका गौरवपूर्ण स्थान रहा। इस प्रकार संस्कृत शास्त्रों तथा तमिल प्रबन्धों के बीच समन्वय रखने का आचार्यों ने एक महत्वपूर्ण कार्य किया, यह उनकी निजी विशेषता थी। आलवारों के प्रबन्धकों को वेदों की बराबरी में बिठाने का श्रेय आचार्यों को ही है। इसके साथ ही आचार्यों ने इनकी पूजा पद्धति व्रत उपवास तथा राजनीति सभी को ग्रहण किया, अन्तर केवल अपनाने के ढंग में था, क्योंकि आलवार हृदय प्रधान थे, अत: वे विधि विधान रहित मुक्ति भक्ति के उपासक थे जबकि आचार्य मर्यादा के आँचल से आवृत्त अपनी पुरातन परम्परा के अक्षरशः पोषक एवं समर्थक थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आलवारों और आचार्यों के मतों में पर्याप्त साम्य है, जो कुछ बाह्‌य अन्तर भी था उसका उन्होंने एकीकरण करने का ही प्रयास किया, जिससे धर्म की दृढ़ता और सत्यता का पता चलता है। दार्शनिक परिपेक्ष्य के अन्तर्गत आलवारों के विचार भी आचार्यों की भांति ही हैं, उनका ब्रह्‌म भी सर्वशक्तिमान और अद्वितीय है, वही शिव ब्रह्‌मा, इन्द्र आदि सभी के देव हैं, और इनके इष्टदेव वे ही हैं। जीव का ब्रह्म के साथ अंश और अंशों का भी सम्बन्ध माना जाता है यही विचार विशिष्य द्वैतवाद में मिलते हैं। इनके लिये इन्होंने समुद्र और तरंग का रूपक दिया है, जिस प्रकार तरंगें समुद्र से ही उत्पन्न होकर समुद्र में ही विलीन हो जाती हैं उसी प्रकार जीव भी, आलवारों का जगत सम्बन्धी दृष्टिकोण भी ब्रह्‌मा की लीला उत्पन्न करने की इच्छा से, अर्थात् ब्रह्‌मा से उत्पन्न होने के कारण इनका जगत सत्य एवं नित्य है।

---

77. वही पृष्ठ 61।

आलवारों ने भी 'माया को शक्ति स्वरूप माना है, क्योंकि आदिकाल में न जीव था, न जगत, तब ब्रह्मा ने माया शक्ति से प्रेरित होकर ही सृष्टि की रचना की। साथ ही यह माया ही अज्ञान है जिसके वश में होकर जीव अनेक कुकृत्यों को करता हुआ उसी में भ्रमित रहता है।

मुक्ति को आलवारों ने भी अपने जीवन का लक्ष्य बनाया है। उन्होंने भक्ति द्वारा ही मुक्ति प्राप्ति सम्भव मानी है। 'भक्ति ग्रंथों में मुक्ति चार प्रकार की मानी गई है—1. सालोक्य 2. सामीप्य 3. सारूप्य और 4. सायुज्य।[78]

मोक्ष का सुख भी दो प्रकार का होता है जीवन युक्त और दूसरा देह त्याग के बाद का मोक्ष। इन्होंने प्रथम मुक्ति को देह त्याग के बाद से अधिक उत्तम माना है। इस प्रकार आलवारों के समस्त दार्शनिक-वैचारिक विवेचन से उनमें और आचार्यों में पर्याप्त साम्य के ही चिन्ह दृष्टिगत होते हैं।

संत कवियों का समन्वयात्मक-वृत्ति

संत कवियों के प्रादुर्भाव के समय देश में विद्रोह की अग्नि अपनी प्रचण्ड और जाज्वलयरूप में विद्यमान की। सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थिति इतनी बिगड़ चुकी थी, कि उसमें सुधार लाना साधारण एवं अस्थिर मस्तिष्क का कार्य न था, नियमानुसार किसी भी स्थिति की समाप्ति या कम करने के लिए उसी प्रतिद्वंद्वी उससे अधिक शक्ति सम्पन्न स्थिति लाई जाये, तभी सफलता सम्भव है। इन संत कवियों के विचार अपने पूर्ण और पूर्व के समस्त धर्मशास्त्रों, वेदान्तों का सार लिये हुए थे अतः उनकी नींव अपने में बहुत ही शक्तिशाली थी। उन्होंने समाज, धर्म आदि के अन्दर जाकर उसे निकटता से देखकर अपनी दृष्टि विधि निषेधमयी को अपने काव्य के माध्यम से साकारता दी है। ये सन्त कवि हिन्दू और मुस्लिम दोनों संस्कृतियों से सम्बन्धित थे, इसलिए इनके काव्य में वेदान्त के अद्वैतवाद और सूफी मत के एकेश्वरवाद का सुन्दर समन्वय परिलक्षित होता है।

संत कवियों में कबीर का स्थान प्रथम व प्रमुख है, कबीर उदारचित समस्त सुविचारों को आत्मसात् करने वाले थे, उनके काव्य में कहीं भी धार्मिक जातिगत या सांस्कृतिक संकीर्णता नहीं दिखाई देती है। जबकि कबीर के प्रादुर्भाव के समय समाज इतना विश्रृंखलित था कि कोई नई दिशा दिखाना एक कठिन कार्य हो गया था। समाज में अनेक रूढ़ियाँ व्याप्त थीं जनता सत्यता और यथार्थ से कोसों दूर जाकर बाह्याडम्बरों के झूले में झोंके लेकर तन्मय हो रही थी। ऐसे विद्रोही

---

78. श्रीमद्भागवत- (3-29-13)।

वातावरण में कबीर जैसे अक्खड़ संत कवि की ही आवश्यकता थी इसलिए कबीर ने हिन्दू-मुसलमान दोनों के समाज सुधार की बात ध्यान में रखकर जीवनधारा बनाई। उन्होंने दोनों के आन्तरिक दोषों को देखकर उन्हें दूर करने का व्यावहारिक उपाय किया। कबीर के दार्शनिक विचारों के अन्तर्गत ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों ही रूपों को आत्मीयता से अपनाया है। निर्गुण ब्रह्म का निम्न उदाहरण व्यक्त है—

हृदय भीतर दोऊ बलय, धुआं न प्रकट होइ।
जाके लागि सो लखे, कै जिहिं लाइ सोई ॥[79]

इसी प्रकार कबीर ने ब्रह्म के सगुण साकार रूप को भी हृदय से लगाया है, उन्होंने ईश्वर से दाम्पत्य जीवन स्थापित करके उन्हें पति रूप में पाने की अभिलाषा व्यक्त की—

हरि मोरे पिय मैं राम की बहुरिया।[80]

ऐसे ही उन्होंनें ब्रह्म से अपने विवाह की रूपरेखा की प्रस्तुति की है।

दुलहिन गावहु मंगलाचार।
हम घर आए हो राजाराम भरतार।[81]

इसके साथ ही कबीर ने हठयोग साधना का भी महत्व अपने जीवन दर्शन में रखा है। कबीर हठयोग के प्रवर्तक माने जाते हैं, उन्होंने हठयोग साधना का भी क्रमिक वर्णन अपनी पुस्तक 'कबीर-ग्रन्थावली' में किया है, सभी नाड़ियाँ और कुंडलिनी की साधना तत्पश्चात् धीरे-धीरे योगी ब्रह्माण्ड में चित्त एकाग्र कर अनहद नाद सुनता है, सबसे उच्च स्थिति सहस्नाधार की है और साधना की प्रारम्भावस्था मूलाधार से मानी है, जिसका स्थान सबसे नीचे है।

इस प्रकार महात्मा कबीर के बारे में पूर्ण जानकारी करने के पश्चात् हमें सभी संत-कवियों की समन्वयात्मक वृत्ति का अध्ययन कुछ आधार लेकर करना उचित होगा। ये आधार निम्न हैं—

---

79. कबीर ग्रन्थावली—सम्पादक भगवत स्वरूप मिश्र साखी-3 पद।
80. वही, पृष्ठ 288, पद 117।
81. वही, पृष्ठ 205 पद-1।

आलवारों ने भी 'माया को शक्ति स्वरूप माना है, क्योंकि आदिकाल में न जीव था, न जगत, तब ब्रह्मा ने माया शक्ति से प्रेरित होकर ही सृष्टि की रचना की। साथ ही यह माया ही अज्ञान है जिसके वश में होकर जीव अनेक कुकृत्यों को करता हुआ उसी में भ्रमित रहता है।

मुक्ति को आलवारों ने भी अपने जीवन का लक्ष्य बनाया है। उन्होंने भक्ति द्वारा ही मुक्ति प्राप्ति सम्भव मानी है। 'भक्ति ग्रंथों में मुक्ति चार प्रकार की मानी गई है—1. सालोक्य 2. सामीप्य 3. सारूप्य और 4. सायुज्य।[78]

मोक्ष का सुख भी दो प्रकार का होता है जीवन युक्त और दूसरा देह त्याग के बाद का मोक्ष। इन्होंने प्रथम मुक्ति को देह त्याग के बाद से अधिक उत्तम माना है। इस प्रकार आलवारों के समस्त दार्शनिक-वैचारिक विवेचन से उनमें और आचार्यों में पर्याप्त साम्य के ही चिन्ह दृष्टिगत होते हैं।

संत कवियों का समन्वयात्मक-वृत्ति

संत कवियों के प्रादुर्भाव के समय देश में विद्रोह की अग्नि अपनी प्रचण्ड और जाज्वल्यरूप में विद्यमान की। सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थिति इतनी बिगड़ चुकी थी, कि उसमें सुधार लाना साधारण एवं अस्थिर मस्तिष्क का कार्य न था, नियमानुसार किसी भी स्थिति की समाप्ति या कम करने के लिए उसी प्रतिद्वंद्वी उससे अधिक शक्ति सम्पन्न स्थिति लाई जाये, तभी सफलता सम्भव है। इन संत कवियों के विचार अपने पूर्ण और पूर्व के समस्त धर्मशास्त्रों, वेदान्तों का सार लिये हुए थे अतः उनकी नींव अपने में बहुत ही शक्तिशाली थी। उन्होंने समाज, धर्म आदि के अन्दर जाकर उसे निकटता से देखकर अपनी दृष्टि विधि निषेधमयी को अपने काव्य के माध्यम से साकारता दी है। ये सन्त कवि हिन्दू और मुस्लिम दोनों संस्कृतियों से सम्बन्धित थे, इसलिए इनके काव्य में वेदान्त के अद्वैतवाद और सूफी मत के एकेश्वरवाद का सुन्दर समन्वय परिलक्षित होता है।

संत कवियों में कबीर का स्थान प्रथम व प्रमुख है, कबीर उदारचित समस्त सुविचारों को आत्मसात् करने वाले थे, उनके काव्य में कहीं भी धार्मिक जातिगत या सांस्कृतिक संकीर्णता नहीं दिखाई देती है। जबकि कबीर के प्रादुर्भाव के समय समाज इतना विश्रृंखलित था कि कोई नई दिशा दिखाना एक कठिन कार्य हो गया था। समाज में अनेक रूढ़ियाँ व्याप्त थीं जनता सत्यता और यथार्थ से कोसों दूर जाकर बाह्याडम्बरों के झूले में झोंके लेकर तन्मय हो रही थी। ऐसे विद्रोही

---

78. श्रीमद्भागवत- (3-29-13)।

वातावरण में कबीर जैसे अक्खड़ संत कवि की ही आवश्यकता थी इसलिए कबीर ने हिन्दू-मुसलमान दोनों के समाज सुधार की बात ध्यान में रखकर जीवनधारा बनाई। उन्होंने दोनों के आन्तरिक दोषों को देखकर उन्हें दूर करने का व्यावहारिक उपाय किया। कबीर के दार्शनिक विचारों के अन्तर्गत ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों ही रूपों को आत्मीयता से अपनाया है। निर्गुण ब्रह्म का निम्न उदाहरण व्यक्त है—

हृदय भीतर दोऊ बलय, धुम्रां न प्रकट होइ।
जाके लागि सो लखे, कै जिहि लाइ सोई ॥[79]

इसी प्रकार कबीर ने ब्रह्म के सगुण साकार रूप को भी हृदय से लगाया है, उन्होंने ईश्वर से दाम्पत्य जीवन स्थापित करके उन्हें पति रूप में पाने की अभिलाषा व्यक्त की—

हरि मोरे पियु मैं राम की बहुरिया।[80]

ऐसे ही उन्होंनें ब्रह्म से अपने विवाह की रूपरेखा की प्रस्तुति की है।

दुलहिन गावहु मंगलाचार।
हम घर आए हो राजाराम भरतार।[81]

इसके साथ ही कबीर ने हठयोग साधना का भी महत्व अपने जीवन दर्शन में रखा है। कबीर हठयोग के प्रवर्तक माने जाते हैं, उन्होंने हठयोग साधना का भी क्रमिक वर्णन अपनी पुस्तक 'कबीर-ग्रन्थावली' में किया है, सभी नाड़ियाँ और कुंडलिनी की साधना तत्पश्चात् धीरे-धीरे योगी ब्रह्माण्ड में चित्त एकाग्र कर अनहद नाद सुनता है, सबसे उच्च स्थिति सहस्नाधार की है और साधना की प्रारम्भावस्था मूलाधार से मानी है, जिसका स्थान सबसे नीचे है।

इस प्रकार महात्मा कबीर के बारे में पूर्ण जानकारी करने के पश्चात् हमें सभी संत-कवियों की समन्वयात्मक वृत्ति का अध्ययन कुछ आधार लेकर करना उचित होगा। ये आधार निम्न हैं—

---

79. कबीर ग्रन्थावली—सम्पादक भगवत स्वरूप मिश्र साखी-3 पद।
80. वही, पृष्ठ 288, पद 117।
81. वही, पृष्ठ 205 पद-1।

ईश्वर सम्बन्धी संत-कवियों के विचार

समस्त संत कवियों के विचार से ईश्वर एक है, उसे ही विविध रूपों में हम अपनी धारणा व रूचि के अनुसार नाम-रूप की पृथकता प्रदान करते हैं। वस्तुतः ब्रह्म असीम अलौकिक अंखड शक्ति एक ही है, सम्पूर्ण सृष्टि उसका एक अंश मात्र है। कबीर के शब्दों में ईश्वर की परिभाषा इस प्रकार है—

दुई जगदीश कहां ते आये, कहु कौने भरमाया।
अल्लाह, राम, करीमा, केशों, हरि हजरत नाम धराया।।
गहना एक कनक से कहना, तामें भाव न दूजा।
कहन सुनन को दोइ कर राखे, सोइ नमाज सोइ पूजा।।

(कबीर)

'कनक' शब्द का प्रयोग इनमें वेदान्त का प्रभाव परिलक्षित करता है इसके साथ ही उन्होंने 'सर्ववाद' की प्रतिष्ठा भी की है—

मोकों कहां ढूंढ़े बन्दे मैं तो तेरे पास में। (कबीर)

× × × ×

आपुहि देवा, आपुहि पाती। आपुहि कुल आपुहि वे जाती। (कबीर)

× × × × ×

कावर अंगम कीट पतंगा पूरि रह्यो हरिराई। (रैदास)

× × × ×

दादू देख दयाल को सकल रहा भरपूर
रोम-रोम में रमि रहया तू जनि जानै दूर। (दादू)

ऐसे ही मलूकदास ने ईश्वर के समष्टिगत रूप की कल्पना की है, इसमें ज्ञान की अपेक्षा भक्ति की प्रधानता है, जो कि निम्न पंक्तियों से स्पष्ट है—

सवहिन के हम सवै हमारे। जीव जंतु मोहि लगै पियारे। (मलूकदास)

इस प्रकार हम देखते हैं कि संत-कवियों की मूल विचारधारा निर्गुणमयी थी, किन्तु एकान्तिक न होकर उसमें सूफियों के प्रेम और वैष्णवों, के भक्ति सिद्धांतों को सांगोपांग निरूपण है। ये संत कवि शिक्षा में अधिक न थे, किन्तु इनका ज्ञान

बहुत आगे था, इन्होंने अध्ययन व गुरु शिष्य परम्परा के माध्यम से अपने जीवन को नई दिशा दी, जो समाज व व्यक्ति दोनों के लिये हितकर थी।

एकता सम्बन्धी—एकता से अभिप्राय यहां जातीय एकता से है। ये संत कवि विभिन्न जातियों के थे। प्रायः इनमें निम्न कोटि के ही थे, लेकिन समाज की इतनी विषम स्थिति ने इन्हें इन संकुचित विचारों से दूर ले जाने को बाध्य कर दिया था, इन्होंने हिन्दू, मुसलमान, राम, रहीम दोनों के भेद को अपनी कटु सूक्तियों से नष्ट कर दिया—

जहां देखो तह एक ही साहित्य का दीदार। (नानक)

कबीर की शैली में रूपकात्मकता स्थान-स्थान पर दृष्टिगत होती है इस सम्बन्ध में भी उन्होंने अपने धर्मपट को हिन्दू का ताना और मुसलमान का बाना डालकर सुदृढ़ वस्त्र बना डाला है।

तुरूक मसीद देहुरे हिन्दू दुहुंठाराम खुदाई।
जहां मसीद देहुरा नाहीं, तहं काकी ठकुराई॥ (कबीर)

दादू किसके हैव रहे।
यह मेरे मन मांहि।
अलख इलाही जगत गुरु:
दूजा कोऊ नाहि॥ (दादू)

इन्हीं संतों में एक बाबा धरनीदास हुये, जिन्होंने भगवान की एकता को मूक स्वर में स्वीकार किया—

ठाकुर एक है सिरजनहारा।

अतः जब जनक (उत्पादक) एक है, तो उसकी संतान में पृथकता कैसी? यह तो नियम विरुद्ध बात है, इसलिये उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है—

जाहिर जीव जहान जहां लौ सब में, राम खुराई।

इस प्रकार विचार करने से यह प्रतीत होता है कि इन संत-कवियों में धार्मिक उदारता अपार थी। इनमें हिन्दू मुस्लिम दोनों धर्मों के संत हुये किन्तु किसी ने धर्म के कुत्सित बाह्य रूप को न अपनाकर उसकी वास्तविकता (आंतरिक पक्ष) को ही दृढ़ता से ग्रहण किया और उसके ही परिणामस्वरूप हिन्दू-मुसलमान में एकता का सूत्रपात हुआ।

बाह्य उपचार सम्बन्धी—बाह्याडम्बरों को त्यागे बिना वास्तविकता को पाना दुष्कर कार्य है, अतः यही मानकर इन संत कवियों ने एक वाणी से इनका खंडन किया। कबीर की भाषा तो साधु संतो के सत्संग और शिक्षा के अभाव से बहुत ही अक्खड़ थी, उन्होंने उसी में इनका घोर विरोध किया है। उन्होंने हिन्दुओं के विरोध में कहा—

बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल।
जो नर बकरी खात है तिनको कौन हवाल ।। (कबीर)

इसी प्रकार मुसलमानों की भी नमाज आदि की आलोचना की है—

दिन भर रोजा रहत है, रात हनत है गाय।
यह तो खून वह बंदगी, कैसे खुशी खुदाय ।। (कबीर)

अरे इन दोउन राह न पाई।
हिन्दू अपनी करे बड़ाई, गागर छुअन न देई।
वेश्या के पयन तर सोवे यह देखो हिन्दुआई ।।
मुसलमान के पीर अब लिया मुर्गी मुर्गा खाई।
खाला केरी बेटी व्याहै घर मांह करे सगाई ।। (कबीर)

इस प्रकार के उद्धरणों से स्पष्ट धर्म का रूप बिल्कुल परिवर्तित हो चुका था, अतः ऐसे ही कट्टर धर्मावलम्बी संत पुरुषों की आवश्यकता समाज को थी। धर्म के पर्दे पर अधर्म का नाटक रचा जाता था और उनके आश्रय से मानव-मानव का शोषण बन गया था। इसी संत मत के सभी कवियों ने काव्य के अन्य उद्देश्यों को त्याग कर मूल रूप धार्मिकता की सच्ची नींव की जनता के शुद्ध हृदय में डालना था, जिसे असत्यता के कठिन से कठिन भयावह झोंके व आघात उसे डिगा न सके। अतः ऐसी स्थिति में किसी एक मत या सम्प्रदाय पर जोर देना सफल प्रयास नहीं होता था, अस्तु इसीलिए इन संत कवियों ने वेदान्त के अद्वैतवाद, सूफियों के भावनात्मक रहस्यवाद और हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद तीनों के परस्पर संयोग से एक सुदृढ़ आधार शिला बनायी, जिससे शोषित कर्म को शांति एवं सुरक्षा की क्रोड में पलकर अपने समुचित विकास का अवसर मिल सका।

वर्ण साम्य सम्बन्धी—संत कवियों के समय समाज में विकार अत्यधिक मात्रा में था। हिन्दू जनता छुआछूत के भेद-भाव से पूर्णतः आवद्ध थी, उच्च कुल में जन्म लेना ही उच्चता की सूचक थी। शूद्र या अन्य निम्न जाति के लोगों को पूजा पाठ या मन्दिर में प्रवेश सर्वथा निषेध था, ऐसी स्थिति में निम्न जाति में विद्रोह की अग्नि सुलगना स्वाभाविक था, क्योंकि जब सभी अखंड शक्ति की ज्योति से
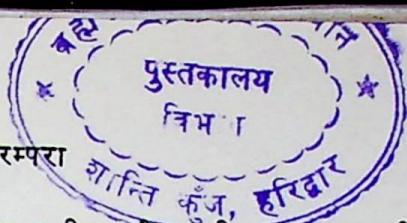
उत्पन्न हैं तो फिर भेद कैसा ? ईश्वर सभी का है उसकी आराधना और चिन्तन प्राणिमात्र का कर्त्तव्य है वर्ण व्यवस्था तो समाज व्यवस्थित करने के उद्देश्य से वैदिक काल में स्थापित की गई थी, वास्तव में उच्च वर्ग में जन्म लेने से कोई महत्व नहीं है। मनुष्य का कर्म ऊंचा होना चाहिए कर्म के अनुसार ही तो वर्ण व्यवस्था निर्धारित हुयी थी अत: प्रत्येक व्यक्ति को सतकर्म करने का अधिकार है। कहा जाता है कि जब तिरूपनालवार को निम्न जाति का होने के कारण श्री रंग के मन्दिर में प्रवेश करने से रोका था तो एक भक्त ब्राह्मण उन्हें कंधे पर बिठाकर अन्दर ले गया इसका क्या अभिप्राय है, कि मानव अपनी वैचारिक संकीर्णता के कारण दूसरे की हृदय की सद्भावना को ठोकर मारता है। वास्तविक ऊंच-नीच तो मनुष्य के ईश्वर ज्ञान के आधार पर ही हो सकता है इस छुआछूत व जाति पांति की संकीर्ण विचारधारा ने संत कवियों को इसके विरुद्ध आवाज उठाने को बाध्य कर दिया। उन्होंने कहा—

एक बूंद एके मन मून्तर, एक चाम एक गूदा।
एक जाति ते सब जग उपजा, को ब्राह्मण को शूद्रा।। (कबीर)

उच्चकुल में जन्म ले लेने से उन्हें ऊंच-नीच का भेद भाव मान्य नहीं था—

जो तू बोमन बाभनी जाया। ग्रान बीर ह्वै क्यों नहीं आया।
जो तू तुरक तुककिनी जाया। भीतर खतना क्यों न कराया।।
(कबीर)

इसी प्रकार कबीर ने मानव-मात्र की उत्पत्ति का एक ही रूप व आधार देख कर अपनी स्पष्ट वाणी में जनता को सचेत किया और बताया कि समस्त संसार ही अपवित्र है, पवित्र तो केवल एक ईश्वर की अखंड शक्ति है—

काहे को कीजै पांडे छूत विचारा। छूतहि ते उपजा संसारा।
हमारे कैसे लोहू तुम्हरे कैसे दूध। तुम कैसे वामन हम कैसे शूद्र।
क्षेति क्षेति करते तुम आये। गर्भवास काहे को जाये।।
जन्मत क्षेति भरत पुनिछोति। कह कबीर हरि निर्मल जोति।।
(कबीर)

संत धरनीदास ने तो जाति-पांति को सर्वथा हटाकर कर्म पर ही जोर दिया है—

करनी पार उतारि है, धरनी कियो विचार।
साकित ब्राह्मन नहिं भला, भक्ता भला चमार।।

मांस अहारी ब्रह्मना, तो पापी बहि जाऊ ।।
धरनी शूद्र वैश्नवा, लागि चरन सिर नाऊ ।। (धरनीदास)

वास्तव में आत्म-दृष्टि से सब एक है, विषमता तो सभी में पायी जाती है। दादू के शब्द में—

जब पूरण ब्रह्म विचारिए ।
सकल आत्मा एक ।।
काया के गुण देखिये तो ।
नाना वरण अनेक ।। (दादू)

इस प्रकार संत कवियों पर सामान्य दृष्टि डालने से उनके द्वारा प्रवाहित सामंजस्य की विशाल एवं गंभीर नदी में स्वाभावत: प्रवाहित पड़ता है वह गंगा के समान पावन व स्पर्शमात्र से कल्याण करने वाली है । वस्तुत: संत-कवियों की काव्य विचारधारा युगानुकूल न होकर शाश्वत है वह तो हर युग हर परिस्थिति और हर मनुष्य के लिये ग्राह्य है । भारत भूमि पर जितने भी महामानव होते आये हैं सभी के उदार विचारों ने स्त्रोत व मूल रूप में इन्हीं विचारों का संदेश दिया है । महात्मा तुलसीदास ने भी लिखा है—

जाति पांति पूछे नहिं कोई । हरि को भजै सो हरि का होई ।

सुखी जीवन बनाने का एक मात्र आधार मानव की उदारता है । इन संत-कवियों ने बड़े ही मनोरम ढंग से जीवन के व्यावहारिक प्रचिलित रूप का आकलन निर्गुण ब्रह्म के माध्यम से किया है । इन संत-कवियों ने ही बड़े मनोरम ढंग से जीवन के व्यावहारिक प्रचलित रूप का आकलन । निर्गुण ब्रह्म के माध्यम से किया है । यह संसार नैहर है और परलोक श्वसुर का घर, जहां सभी को एक दिन जाना है, इसलिए वहां की समुचित तैयारी भी करना नितांत आवश्यक है, ताकि कोई कुछ दोष न दे सके, यह तैयारी ही जीवन की तैयारी है यथार्थ में जीवन को किसी भी तुच्छ या क्षुद्र संकीर्ण विचारों से बचाये रखना, जीवन रूपी चादर में कोई छल, प्रयत्न, लोभ, मोह, अहंकार के धब्बे न लगने पायें और निरन्तर ही पतिवृत धर्मानुसार अपने पति परमेश्वर का स्मरण करना ही मानव साधना एवं सच्ची पूजा है । इसी चित्र का चित्रण कवियों ने अपनी सधुक्कड़ी पंचमेल भाषा में रूपक के माध्यम से किया है । यथार्थ में मनुष्य को जीवन की नहीं मरने की तैयारी करनी चाहिये जो इस तथ्य को जानता है वही सच्चा साधक है ।

———

द्वितीय—अध्याय

हिन्दी सूफी कवि और उनका काव्य

साहित्य का सृजन ही प्रेमतत्व से हुआ है, और प्रायः कविता का या पद्य का आदि स्रोत तो प्रिय का वियोग ही है और वियोग कतिपय संयोग का ही प्रतिफल है।

'वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान।
उमड़कर नयनों से चुपचाप
वही होगी कविता अनजान।।

अतः स्पष्ट है कि प्रिय का वियोग कितना हृदय विदारक और कष्टप्रद है। हिन्दी साहित्य के विशाल उपवन में सूफी-काव्य वहीं वियोग की टीस, प्रिय के स्मरण ने आहें और दर्शन की उत्कंठा से निरन्तर अश्रुसिक नेत्र लिए अहर्निभिवृष्टि कर उसे सिंचित कर मोहक और आकर्षक बनाये हुए है। हिन्दी साहित्य के प्रेमाख्यानों में सूफी प्रेमाख्यानों का महत्व अद्वितीय है, क्योंकि इनके रचयिता ने यह दिखाने का सफल प्रयास किया है कि हमारी बसुन्धरा केवल वीरभोग्या न होकर प्रेमभोग्या भी है। सूफीमत का जन्म अरब प्रदेश में मुहम्मद साहब के निधनोपरान्त हुआ था, कालान्तर में यह ईरान स्पेन, मिश्र, भारत आदि देशों में विकसित होता गया। प्रारम्भ में ये मुस्लिम शासकों की शासन-नीति के प्रति विरोध करते थे, परन्तु धीरे-धीरे अपनी सफलता के बीच उसे रोड़ा समझ उसका त्याग कर दिया। फलस्वरूप इन्होंने भारतीय लोक कथाओं, छन्दों, चरित्रों को अपने काव्य का उपजीव्य बना कर हिन्दू जनता को आकृष्ट करने का प्रयास किया। इनका मूल उद्देश्य हिन्दू जनता पर अधिकार पाकर उसे अपने धर्म में मिलाना था, जिसके लिए उन्होंने तलवार का सहारा न लेकर कलम का सहारा लिया। उन्होंने ग्रन्थ के प्रारम्भ में खुदा की वन्दना, मोहम्मद साहब की स्तुति, शाहवक्त की प्रशंसा और गुरु महिमा आदि के विवरण अभिव्यंजित किए हैं। वस्तुतः वे वाक्छल एवं सरस चित्रण के द्वारा हिन्दुओं की ब्रह्म भावना और

'सोहह् म' सिद्धान्त को चित्रित करके हिन्दू जनता को अपने धर्म के प्रति आकर्षित करने की कुशल योजना रखते थे। अत: स्पष्ट है कि हिन्दी के सूफी कवि भारतीयता के पोषक होकर भी इस्लाम के ही समर्थक थे। यद्यपि इनके काव्य में इस्लामी धर्म की ही गंध भरी पड़ी है किन्तु फिर भी त्याज्य नहीं है, क्योंकि इनके ही प्रेम काव्य हिन्दी साहित्य की एक अनुपम देन है, अर्थात् प्रेम पूरित काव्य का प्रारम्भीकरण इन्हीं को प्राप्त है।

'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति

'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक विचार दृष्टिगत होते हैं। अत: सभी विद्वानों ने अपनी-अपनी बुद्धि और धारणा के अनुसार 'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति बताई है, जिसमें से कुछ के कथन प्रस्तुत हैं। वस्तुत: प्राचीन समय में सूफी का अर्थ मदीना में मस्जिद के सामने एक सुफ्फा चबूतरा था, उस पर जो फकीर बैठते थे, वे सूफी कहलाते थे। लेकिन यह व्युत्पत्ति कोई वैचारिक पक्ष नहीं लिए है। ऐसे ही कुछ विद्वानों ने कहा 'सूफी' शब्द के मूल में 'सफ' (पंक्ति) है। अत: निर्णय के दिन जो लोग अपने सदाचार और व्यवहार के कारण अन्य लोगों से पृथक् एक पंक्ति में खड़े किए जायेंगे, वे ही सूफी कहे जायेंगे। कुछ विद्वानों के अनुसार सूफी शब्द 'सोफिया' से बना है और सोफिया ज्ञान का रूपान्तर है। ज्ञान की अधिकता के कारण ही उन्हें सूफी कहा जाता है। आचार्य चन्द्रवली पाण्डेय ने अपने विस्तृत अध्ययन के आधार पर सिद्ध किया है कि निकलसन, ब्राउन, मारगोलिय प्रभृति विद्वानों ने सिद्ध कर दिया है कि वास्तव में सूफी शब्द 'सफ' से बना है। अनेक मुस्लिम प्रतिभाओं ने भी इसे स्वीकार किया है। जान या चूहन्ना भी सूफधारी था, पर अब सूफी का प्रयोग मुस्लिम संत या फकीर के अर्थ के लिए ही नियत समझा जाता है।[1] ईसा की आठवीं शताब्दी में इस्लाम धर्म में एक विद्वान धार्मिक जगत में हुआ। जिसमें फारस का एक छोटा सम्प्रदाय था। इस सम्प्रदाय ने परम्परागत प्रचलित आदर्शों का कटुता से खण्डन किया और सांसारिक ऐश्वर्य वैभव व भौतिक सुखों को त्याग कर सादगी का जामा पहन लिया है, इनका जीवन त्यागमय बन गया। डा० रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि 'सादगी और सरलता ही अनेक बाह्य जीवन की अभिरुचि बन गई है। कीमती कपड़े और स्वादिष्ट भोजन से उन्हें घृणा हो गई। सरलता और सादगी का आदर्श अपने सम्मुख इस सम्प्रदाय ने अपने शरीर के वस्त्र भी बहुत साधारण रखे। ये थे सफेद ऊन के साधारण वस्त्र। फारसी में

---

1. तसव्वुक और सूफीमत: (आचार्य चन्द्रवली पाण्डेय) पृष्ठ 3।

सफेद ऊन को 'सफ' कहते हैं। इसी शब्दार्थ के अनुसार सफेद ऊन के वस्त्र पहनने वाले व्यक्ति 'सूफी' कहलाने लगे।[2]

'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में बड़ा मतभेद है। इस विषय में अनेक भाषा वैज्ञानिकों एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अपने-अपने मत प्रस्तुत किए हैं। डा० शिवसहाय पाठक जी ने अपनी पुस्तक में अनेक युक्तियां रखी हैं। इसके अन्तर्गत ई०जी० ब्राउन द्वारा लिखित 'लिटरेरी हिस्ट्री आफ परशिया' नामक पुस्तक से स्पष्ट किया है कि 'अनेक सूफियों, भाषा वैज्ञानिकों और आध्यात्मशास्त्रियों ने इसी मत के समर्थन में अपने मत प्रकट किए हैं। भासूदी को मूल आधार मानकर ब्राउन ने लिखा है कि प्रारम्भिक काल से ही लोगों ने ऊनी वस्त्र धारण करने को जीवन की सादगी संवता और विलासिता से दूर रखने का प्रतीक मान लिया था।'[3]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है 'सूफी' शब्द का प्रयोग वस्तुतः शुद्धता और पवित्रता से लिया है, क्योंकि सूफी शब्द की व्युत्पत्ति 'सफ' (पवित्रता) से मानी गयी है, अनेक सूफी साधकों ने भी इसे मूक स्वर से स्वीकार किया। प्रो० जय बहादुर लाल ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि 'सूफी मत की विशद रूप से विवेचना करने वाले अल कुरैशी ने बाह्य और आभ्यान्तरिक जीवन पवित्रता को ही सूफी धर्म माना है।[4]

इसी प्रकार सूफी शब्द की व्युत्पत्ति अनेक अंग्रेज दार्शनिकों ने ग्रीक के (Sophos) 'सोफोस' शब्द से मानी है, जिसका अर्थ ज्ञानी या बुद्धिमान व्यक्ति से लिया जाता है। किसी अंश तक यह व्युत्पत्ति उचित और सार्थक प्रतीत होती है। क्योंकि सूफी साधक जीवन के कृत्रिम रंगीन चमत्कृत वातावरण से दूर वास्तविकता को ही पाने का लक्ष्य लेकर जीवन-यापन करता है उसका एक मात्र उद्देश्य परम प्रियतम को प्राप्त करना होता है जिसके लिए वह संसार के महानतम कष्ट से संघर्ष सहन करता है।

डा० मदन मोहन गुप्त ने 'मध्यकालीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में इस विषय पर कुछ विहंगम दृष्टि डाली है और लिखा है कि 'कुछ भी हो, अधिकांश विद्वानों का कथन यह है कि इस धर्म का नाम 'सूफी' इस लिए पड़ा, क्योंकि इसके अनुयायी बहुत निर्धनता की दशा में रहते थे। 'सूफा' नामक मोटा वस्त्र धारण

---

2. कबीर का रहस्यवाद (डा० रामकुमार वर्मा) पृष्ठ 29-30।
3. मलिक मोहम्मद जायसी और उनका काव्य (डा० शिवसहाय पाठक) पृष्ठ 396।
4. सूफी संत साहित्य का उद्भव और विकास (प्रो० जयबहादुर लाल) पृष्ठ 165।

करते थे। जमीन पर शयन करते थे। पैगम्बर की बनवाई हुई मस्जिद में रहते तथा वाद-विवाद करते थे।[5]

श्री राम पूजन तिवारी के विचारानुसार 'ऊन का वस्त्र धारण कर एकान्त जीवन बिताने वाले साधकों के जीवन को दृष्टि में रखकर यह नाम सूफी रख लिया गया हो तो इसमें कुछ असंगति नहीं मालूम होती।'[6] इसी प्रकार डा० शिवकुमार शर्मा का भी अभिमत है कि 'सूफी शब्द मूलतः अरब और ईराक के उन व्यक्तियों को सूचित करता है, जो मोटे ऊनी वस्त्रों का चोंगा पहनते थे। इनका विरक्तों और संन्यासियों जैसा साधनापूर्ण जीवन था और कदाचित इसी कारण ये लोग मुस्लिमों की अग्रिम पंक्ति में खड़े होने के अधिकारी थे।'[7]

अस्तु सूफी शब्द की व्युत्पत्ति की चर्चा आद्यान्त तक चलने वाबील है, इस प्रकार अधिकांश विद्वानों ने इस विषय पर अपने-अपने मत प्रस्तुत किए हैं, सभी के विचारों का किसी न किसी प्रकार से सारांश ज्ञात हो गया है, जिससे सूफी शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञान उपलब्ध हो जाता है, सूफी शब्द के प्रत्येक पहलू को यथाविधि पर्यवेक्षित कर लिया गया है। व्युत्पत्ति जानने के बाद उसके उद्भव और विकास के सम्बन्ध में पर्याप्त अवलोकन आवश्यक है।

सूफी मत का उद्भव और विकास

किसी भावना का उपेक्षित और अस्पृश्य रूप की अतिश्योक्ति ही अपनी विरोधी भावना का जनक हुआ करती है। सूफीमत के उद्भव में भी यही तर्क सत्य परिलक्षित होता है, उस समय अरब की सामाजिक, नैतिक और धार्मिक भ्रष्टता का नग्न चित्र सर्व सम्मुख विद्यमान था। अतः मुहम्मद साहब को समाज-सुधार के साथ-साथ एकेश्वरवाद का जीर्णोद्धार करना था। वास्तव में जाहिलियत काल की क्रूरता, नृशंसता तथा स्वेच्छाचार को मिटाने के लिए ही इस महापुरुष का आविर्भाव हुआ था। इस समय आचरणहीनता पराकाष्ठा पर पहुंच चुकी थी। इसको मिटाने के लिए उन्हें कठिन परिश्रम और दुरूह नीतियों की शरण लेनी पड़ी, और उन्हें बिवश होकर युद्ध करने को मुसलमानों को उत्तेजित स्वरों में पुकारना पड़ा। इसके अतिरिक्त धर्म में भी पाखण्डवाद का बोलबाला था, मानव यथार्थ से दूर कृत्रिमता और धर्म के विकृत रूप को अपनाने में तत्पर था, उसी समय मोहम्मद साहब ने

---

5. मध्यकालीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति—डा० मदनगोपाल पृष्ठ 278-79।
6. सूफीमत साधना और साहित्य—श्री रामपूजन तिवारी पृष्ठ 170।
7. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियां, पृ० 148, षष्टम संस्करण।

स्पष्ट रूप से मुसलमानों को संन्यासी होने के लिए नहीं वरन सदाचारी और विद्वान बनने के लिए जोर दिया, जो कि जीवन की वास्तविक साधना और परमात्मा की प्राप्ति का एक मात्र आधार है। सूफीमत में इन्हीं तात्विक तर्कों को प्रश्रय मिला है।

सूफीमत के उद्‌भव के सम्बन्ध में विभिन्न मत अनेक प्रबुद्ध विद्वानों ने प्रस्तुत किए हैं, जिसमें परस्पर मतभेद भी है। डा० विमलकुमार जैन के शब्दों में 'सूफी' शब्द का प्रचलन चाहे जब हुआ हो, परन्तु इसमें अर्न्तनिहित भावना उतनी ही प्राचीन है जितना विकसित मानव हृदय, क्योंकि सूफी भावना भी मानव में सदैव से तरंगित रहस्य की जिज्ञासा का ही परिणाम है मानव मन निसर्गतः एक-सा है जो सदा आत्मा के मूल की खोज में प्रकट या अप्रकट रूप से विकल रहता है। मुस्लिम साधकों के मन में भी यही भावना देश काल के साधन पाकर उद्‌बुद्ध हुई और अन्त में सूफीमत के रूप में संसार के समक्ष आविर्भूत हूई।[8]

सूफी में हर स्थान पर त्याग की ही पूजा होती है, उसमें कुछ भी ग्रहण नहीं करना है, और समस्त सृष्टि में परमात्मा के रूप की ही झलक देखनी चाहिए। संक्षेप में सांसारिक वस्तुओं के विकर्षण और प्रभु के चरणों में अनुरागी आकर्षण ही एकमात्र सूफीमत है। जैन जी के ही शब्दों में विधि-विधानों से मुख मोड़ निखिल विश्व में व्याप्त इस शाश्वत तथा अमूर्त शक्ति की झलक सर्वत्र पाकर मुस्लिम साधकों ने जो रहस्य अभिव्यक्त किए उन्हीं के सामन्जस्य का नाम सूफी मत है।[9]

इसी सम्बन्ध में कुछ सूफियों का कथन है कि 'सूफीमत का आदम में बीजवपन हुआ एवं मसीह में परिपाक और मुहम्मद में फलागम हुआ।'[10]

इसी प्रकार सूफीमत का बाल्यावस्था से उसकी प्रौढ़ावस्था तक का क्रमिक विकास ज्ञात हो जाता है। विमल कुमार जैन ने सूफीमत के इतिहास की ओर इंगित करते हुए लिखा है 'इस्लाम से पूर्व अरब में बहुविवाह प्रचलित था। वह प्रथा मुसलमानों में भी आई। ईसाई मत इस विषय में प्रभाव न डाल सका। अनेक गुह्य मण्डलियां भी थीं और देवदासियों का भी प्रचार था, जिनके द्वारा रति को प्रदीप्ति मिल रही थी। साधकों ने उस रति भाव को रति परक कर दिया जिसमें कुरान में वर्णित ईश्वर सबका है, विश्व के सारे धर्म उसी एक की आराधना करते हैं। भिन्न-भिन्न रूपों में वही किसी महापुरुष द्वारा सद्ज्ञान प्रचारित करता है।

---

8. सूफी मत और हिन्दी साहित्य—विमलकुमार जैन, पृष्ठ 2-3।
9. सूफी मत और हिन्दी साहित्य-विमल कुमार जैन 2-3 पृष्ठ।
10. जायसी : एक विवेचना देशराज सिंह भारी एम०ए० पृष्ठ 41।

अत: दृश्य भिन्न रूपता नगण्य है। इन शिक्षाओं ने उदार शिष्यों के हृदय में विश्व बन्धुत्व उत्पन्न कर दिया। आगे चलकर यही रतिभाव सूफीमत का आधार बना। सूफी साधकों ने इसी आंतरिक प्रेम को दैवी प्रेम की सीढ़ी माना।'[11]

इसके साथ ही कुछ विद्वानों ने इसे भारत के वेदान्त और बौद्ध आदि धर्मों से प्रभावित माना है उसका अपना कोई पृथक रूप नहीं है, पाश्चात्य विद्वानों ने तो इस पर ईसाई धर्म की भी छाप मानी है, अत: पर्याप्त मतभेद प्राप्त होता है। प्रो० 'राम पूजन तिवारी' तो अपने अध्ययन के फलस्वरूप इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं इसके आविर्भाव तथा विकास में अन्य धर्म और मतों जैसे भारतीय वेदान्त, बौद्ध-धर्म नास्तिक मंत, नव अफलातूनी तथा यूनानी दर्शन का प्रभाव रहा है, लेकिन यह प्रभाव नकल के रूप में नहीं रहा है, बल्कि उन बाहरी विचारधाराओं को सूफी साधकों एवं तत्व चिन्तकों ने अपने ढंग से अपनाया और सूफीमत का विकास इस्लाम धर्म को ध्यान में रखते हुए ही हुआ।' यही कारण है कि सूफीमत को इस्लाम धर्म का प्रथम अंग स्वीकारा गया है। यह बात सुस्पष्ट है कि सूफीमत इस्लाम धर्म का शरीया (कर्म-काण्ड) की प्रतिक्रिया का ठीक उसी प्रकार फल है जिस प्रकार वैदिक कर्म-काण्ड की प्रतिक्रिया का फल वैष्णव धर्म में निहित देखा जा सकता है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सूफीमत मुहम्मद साहब द्वारा प्रतिपादित धर्म से कुछ प्रथम अवश्य है जिसके कारण उसमें अन्य प्रभावों को देखा जा सकता है—'वस्तुत: सूफीमत पर ये चार प्रभाव—इस्लाम की गुह्य विद्या, आर्यों का अद्वैतवाद एवं विशिष्टा द्विद्वैतवाद, नव अफलातूनी मत एवं विकार स्वतंत्र स्पष्ट है। सूफीमत जीवन का एक क्रियात्मक कार्य तथा नियम है।'[12]

अस्तु उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि सूफीमत का प्रादुर्भाव क्षेत्र कौन और कहां है उसके प्रत्येक रूप का ज्ञान इन उपकरणों से हो जाता है, अब सूफीमत का विकास भी जानना आवश्यक है, कि उसने कितनी दूरी तक सफलता प्राप्त की। विकास के कार्यक्रम को एकरूपता देने के लिए डा० कमल कुलश्रेष्ठ ने विकास काल को चार वर्गों में बांटा है—

1. तापसी जीवन—7-9 शताब्दी ई०
2. सैद्धांतिक विकास 10-13 ,, ,,
3. सुसंगठित सम्प्रदाय 14-18 ,, ,,
4. पतन I 19 से आधुनिक काल तक।

वस्तुत: सूफी सम्प्रदाय ज्ञान और वैराग्य की ही भूमिका पर है, इसलिए सूफी सम्प्रदाय में तपस्या का अधिक महत्व है। साधक आवश्यकतानुसार मात्र जीवन

---

11. सूफीमत और हिन्दी साहित्य डा० विमल कुमार जैन पृष्ठ 6।
12. हिन्दी साहित्यिक युग और प्रवृत्तियां, डा० शिव कुमार शर्मा पृष्ठ 149।

जीने के लिए ही भोजन और वस्त्र ग्रहण करता है, इस सम्बन्ध में वह कोई व्यक्तिगत इच्छा या आकांक्षा नहीं करता। उसे सारा संसार निरर्थक-सा दिखाई पड़ता है, उसकी एकमात्र लौ परमात्मा के ही चिन्तम में लगी रहती है, किन्तु फिर भी वह भौतिक वस्तुओं से परमात्मा का ही सूक्ष्म अंश होने के कारण लगाव रखता है। ऐसा ईश्वरानुग्रह से ही होता है। सूफियों का यह भाव तुलसी की विचारधारा से साम्य रखता है—

सोई जानहिं जेहि देहु जनाई। जानत तुमहिं तुम्हई होई जाई। [13]

भोग और योग के सामंजस्य का परिणाम ही जीवन है। सच्चा योगी ही ये बन सकता है। यद्यपि मुसलमान योग के रस से बिल्कुल रसीभूत हो गया था, किन्तु फिर भी मुहम्मद साहब के आशान्वित संदेश ने बहुत कुछ धैर्य का आंचल पकड़ाया। उन्होंने मुसलमानों में ऐसा भय भर दिया था कि उन्हें यह विश्वास हो गया कि खुदा केवल मुसलमानों पर ही दया दृष्टि रखता है और फूंना के बाद वह सभी से साक्षात्कार करके उनके कुछ का निष्पक्ष एवं कठोर हृदय से निर्णय करता है। इस सन्दर्भ में श्री तिवारी जी ने लिखा है—'कहा जाता है, उस्मान बिन मजून (मजून का पुत्र उसमान) ने एक बार मुहम्मद साहब से कहा था कि उनका हृदय उन्हें साधना में लगने को प्रेरित कर रहा है। उनकी इच्छा है कि वे पहाड़ों में चले जायें और संन्यास जीवन बितायें और अपना धन, स्त्री सब कुछ छोड़कर संसार में एक जगह से दूसरी जगह घूमते-फिरते हैं तथा मांस और सुगंधित द्रव्यों का सेवन छोड़ दें।[14] अत: सातवीं सदी के सूफी-साधकों की विरक्त ही कहना होगा। क्योंकि वे पैगम्बर के बताये हुए सिद्धांतों का अनुसरण कर संतोष वृत्ति और फकीरी बाना धारण करते हुए तत्व-चिन्तन की टेढ़ी-मेढ़ी गलियों को छोड़कर धर्म के साफ-सुथरे रास्ते पर ही चल रहे थे।

मुस्लिम सन्तों का प्रारम्भ बिन्दु 'बसरा' और 'कूफा' को ही माना जाता है, किन्तु प्रमुखता बसरा को ही मिली है। बसरा और कूफा के संतों का लक्ष्य यद्यपि एक ही था किन्तु पर्याप्त अन्तर भी था। बसरा वाले संत अन्तर्मुखी और जीवन तथा जगत के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण रखने वाले हो गये, जबकि कूफा के संत वहिर्मुखी और व्यावहारिक आचार-विचार पर बल देते थे। तापसी संतों में भी सर्वप्रथम बसरा के अल-हसन-अल बसरी का स्थान है। पवित्रता-उदारता और आन्तरिक शांति ही उसकी साधना थी। उसका विचार था कि इस दुनिया को छोड़ें

---

13. रामचरितमानस-अयोध्या काण्ड-राम बालमीक संवाद पृष्ठ 207।
14. सूफीमत-साधना और साहित्य, श्री राजपूजन तिवारी पृष्ठ 197-98।

बिना आनन्द के अलौकिक संसार को पाना असम्भव है। इसी बात की एक पुष्टि श्री तिवारी जी ने सूक्ति रूप में की है। 'अनाशक्ति का एक बिन्दु सहस्त्रों वर्ष की नमाज और रोजा से श्रेष्ठ है। अल हसन के यह त्यागपूर्ण विचार गीता के पावन श्लोक से भी साम्य खाते हैं—

संकल्पप्रभवान्कामाँस्त्यक्त्वा सर्वान शेषत:[15]
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्तत: ।।[16]

उसने अपने साथ रहने वाले फकीर सैय्यद जूबैर से कहा था कि संसार में तीन चीजों से बचना चाहिये—1. भूलकर भी बादशाहों से सम्पर्क न रखें 2. किसी भी स्त्री के साथ एकान्त में न रहें और 3. किसी की बातों पर ध्यान न दें।

द्वितीय विरक्त बलख का राजकुमार इब्राहिम बिन अधम का नाम आता है, इसे भी कुछ भगवान के ही समान एकाएक शिकार, खेलते हुए वैराग्य और वहीं से इसने गड़रिये से उसके वस्त्र मांग कर अपनी राजसी साज-सज्जा का परित्याग कर दिया, कुछ दिन सीरिया में पेट भरने के लिए माली का काम करने लगा, परन्तु कभी लोगों के पहचानने पर उसने वह स्थान और कार्य भी छोड़ एकान्त विचरण हेतु रेगिस्तान में निवास बना लिया। वह नम्रता और निर्धनता को ही पवित्रता की कसौटी मानता है।

इस प्रकार अनेक विरक्त पुरुषों के साथ-साथ एक विरक्ता स्त्री भी हुई है, बचपन में ही दुर्भाग्य के प्रबल प्रभाव से दुर्भिक्ष के कारण अनाथ ही गई, कुछ दिन एक धनी के यहां खरीदी हुई दासी के रूप में कार्य करती रही लेकिन उसका मन इसमें न लगा, और इसमें भी फकीर चोला पहनकर रेगिस्तान में एकांकिनी जीवन बिताया। इसमें एक विशेष बात यह भी थी कि आध्यात्मिक प्रेम की जीती-जागती साकार-प्रतिमा थी। वह अपने को खुदा की पत्नी समझती थी।

सैद्धांतिक विकास—इस सम्प्रदाय के सिद्धांतों में आध्यात्म की झलक पूरी तरह से दिखाई पड़ती है। जीवन को सुसज्जित बनाने के लिए आवश्यक है कि उसे अलंकृत किया जाय, आध्यात्म-ज्ञान से उसमें दिव्य आभा आ जाती है, और मानव निखर उठता है। श्री तिवारी ने लिखा है—'प्रत्येक वस्तु के लिए एक-एक अलंकार है, हृदय का अलंकार सहज प्रेमार्द्र भाव है।'[17]

---

15. उत्पन्न और साहित्य श्री रामपूजन तिवारी पृष्ठ 216।
16. श्रीमद्भगवद्गीता-6 अध्याय श्लोक सं० 24, पृष्ठ 119।
17. सूफीमत साधना और साहित्य, डा० श्री रामपूजन तिवारी पृष्ठ 236।

सूफीमत के सिद्धांतों का मूल रूप 'सूफीज्म' पुस्तक के पढ़ने पर ज्ञात होता है उसमें उन्होंने प्रारम्भिक अवस्था से लेकर उसके अन्तिम रूप तक पहुंचने का प्रयास किया है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि परमात्मा की प्राप्ति मन की पाप वासनाओं के त्याग से ही सम्भव है, साथ ही उसकी सुरक्षा विषयों और सांसारिक प्रलोभनों से दूर रह कर ही होता है।

मारुफ अल-करवी इस काल के ज्ञानी संत हुए, इनमें रहस्यवादी प्रवृत्ति की आधारभूमि दिखाई देती है। सूफी सिद्धांतों में कुरान की आयतों वा यत्र-तत्र अनुवाद-सा मिलता है। प्रो० जय बहादुर लाल ने एक प्रसंग का विवरण यहां दिया है—'अल्लाह' जिसको चाहता है, समझा देता है और जिसको समझ दी गई, बेशक उसने बड़ी दौलत पाई और शिक्षा भी वही मानते हैं जो समझदार हैं और भी।[18]

'ऐ पैगम्बर इन लोगों को सीधे मार्ग पर लाना तुम्हारे काबू का नहीं, बल्कि अल्लाह जिसको चाहता है, सीधे मार्ग पर लाता है।[19]

विकास का यह काल 10वीं शताब्दी से 13वीं शताब्दी तक आध्यात्मिक काल कहलाता है। इसी समय में महमूद गजनवी ने भारत पर 16 आक्रमण किए, जिससे जनता के विचारों में अनियमितता और शिथिलता आना आवश्यक था। परिणामस्वरूप तसव्वुफ और इस्लाम का परस्पर सामंजस्य इसी समय चरम सीमा पर दिखाई देता है। अल-सुलझी ने तो तसव्वुफ को इस्लाम की ही एक शाखा माना है। धीरे-धीरे तसव्वुफ के पैर दृढ़ होते गए और दोनों का सामंजस्य अधिकतर सामने आने लगा। अन्तिम शताब्दियों में उत्कृष्ट निष्ठावान और पवित्र धर्म से अभिभूत सूफी संतों ने जन्म लिया। 1059 में अल-गजालि का जन्म दुरासन में हुआ। बचपन में धर्म शास्त्र की शिक्षा ली और कुछ दिन अर्थोपार्जन हेतु अध्यापन कार्य किया, उसके ज्ञान की प्रशंसा होने लगी, किन्तु उसका भक्ति रस से सिक्त हृदय ज्ञान के सूखे और नीरस तर्कों से तृषित हो रहा था। उसने तसव्वुफ और सूफीमत में साम्य स्थापित कर सूफी साधना पर बल दिया। आलगवाली ने अनेक प्रबन्धों की रचना की और भाष्य लिखे। इस्लाम जगत में उनका वही स्थान है जो भारत में व्यास का था।

सन् 1118 में 'इब्न अल-फारिज' का जन्म काहिरा में हुआ था। उसके 'गजल संग्रह' में भावपक्ष और कलापक्ष अपने विशेष जोर पर है। इसके बाद 1207 में प्रसिद्ध और आध्यात्मवादी कवि मौलाना रूमी हुए। इन्होंने अपनी अनुराग

---

18. सूफीसंत साहित्य का उद्भव और विकास, प्रो० जय बहादुर, पृष्ठ 68।
19. वही; पृष्ठ 68।

बांसुरी की सुरीली ध्वनि को परमात्मा के सानिध्य का हेतु माना। अपनी मसनवियों में इस्लाम के आध्यात्मिक विचारों का सम्यक् विवेचन किया और 'तू' तथा मैं का अभेद स्थापित करने का सफल प्रयास किया। प्रो० जय बहादुर लाल के शब्दों में 'रूपी का लोक-परलोक, कवि-कविता तथा साधना और साध्य एकमात्र परमात्मा ही है।'[20] इस प्रकार सूफी मत के विकास का सही व संक्षिप्त अवलोकन करने के बाद एक स्थिर दिशा मिल जाती है, जिससे स्पष्ट है कि इस युग में जितने भी मुस्लिम संत हुए वे पहले साधक थे, बाद में कवि। उनका जीवन साधनापूर्ण और व्यवहार धर्म से प्रभावित था। सभी ने फकीरी धारण करके ही प्रभु को पाया है। सच्चे सुख की प्राप्ति यथार्थ के परिवेश में ही सम्भव है जिसने संतोष रूपी धन प्राप्त कर लिया उसका जीवन परिपूर्ण हो जाता है। उसे किसी प्रकार की इच्छा ही नहीं रहती। सभी धर्म ग्रंथों का उद्घोष इन्द्रिय-निग्रह पर ही है। यही प्रमुख साधना है, गीता में भी भगवान ने कहा है—

'यततो ह् यापि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।[21]

वस्तुतः संसार से विमुख होने पर ही ईश्वर के निकट पहुंचा जा सकता है, जिसे एक ही लौ लग जाती है, क्षुधा-पिपासा का बोध भी न हो, समस्त इन्द्रियभोग एकीभूत हो जाते हैं, अतः समस्त इन्द्रियों का संचालक मन ही नियंत्रण में करना आवश्यक होता है, सूफियों के जीवन का भी यही ध्येय रहा है।

सुसंगठित सम्प्रदाय—'इस काल में सूफीधर्म एक सुनियमित सम्प्रदाय बन गया। सूफी प्रवृत्तियों एवं धर्म नियम का शास्त्रीय विवेचन किया गया। इसके धर्म की रूपरेखा अति स्पष्ट हो गई। पार्थिव संघर्षों से भागकर तापसी जीवन का अवलम्बन लेने वाले थोड़े संत इस समय बहुसंख्यक हो गए थे और उनका प्रभाव नागरिकों पर बढ़ता जा रहा था। इस समय के सूफी सिद्धांत निर्माताओं को राज्याश्रय भी प्राप्त था। शास्त्रीय विवेचन के लिए एक पारिभाषिक शब्दावली का भी निर्माण किया गया।[22]

जब किसी समूह के सिद्धान्त सत्यता, धार्मिकता और नैतिकता से परिपूर्ण हुआ करते हैं तभी उनके समर्थकों की संख्या में वृद्धि हो जाती है और उस मत या

---

20. सूफी संत साहित्य का उद्भव विकास—प्रो० जय बहादुर पृष्ठ 123-24।
21. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 2-श्लोक सं० 60, पृष्ठ 60।
22. हिन्दी प्रेमाख्यान काव्य डा० कमल कुलश्रेष्ठ, पृष्ठ 11।

सिद्धान्त के मानने वालों का एक पृथक् सम्प्रदाय बन जाता है। एक लम्बी अवधि तक की साधना के बाद सूफियों का भी अपना एक सम्प्रदाय बन गया जो प्रारम्भ में तो पूर्णतः आध्यात्मवादी और वैराग्य युक्त था, लेकिन बाद में उसने प्रेम का रंग भी चढ़ाया जाने लगा, जिससे उसमें चार चाँद लग गये। साहित्य में सूफी-ग्रंथों का महत्व शरीर में प्राण तुल्य हो गया। प्रेम को आधारभूमि बनाकर ही काव्य भवन निर्मित किया जाने लगा जो कि शाश्वत और सरस है। श्री रामपूजन तिवारी जी ने सूफी काव्य का विश्लेषण करते हुए लखा है—'सूफी काव्य का प्राण प्रेम है। सूफी साधक आत्मा-परमात्मा का मिलन प्रेम के द्वारा ही संभव है। परमात्मा को पाने के लिए आत्मा जिस बेचैनी और आतुरता का अनुभव करता है, सूफी कवि उसका वर्णन सांसारिक प्रेम की विभिन्न मनोदशाओं के प्रतीकों द्वारा करता है। प्रेमी और प्रियतम के लौकिक प्रेम द्वारा उस अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति के सिवा दूसरा कोई चारा नहीं। फारस के मर्मी कवियों ने रहस्यात्मक ढंग से आत्मा परमात्मा के अलौकिक प्रेम का वर्णन किया है। इस प्रेम को व्यक्त करने के लिए उनके पास पहले से आती हुई भाषा, की परम्परा थी, जिसका उपयोग उन लोगों ने किया।'[23]

इस प्रकार देखा जाता है कि इस सम्प्रदाय के कवियों का मूल स्रोत प्रेम है। पूर्व में इनकी रचनाओं का आधार लोक कथाएं थी, फिर धीरे-धीरे आध्यात्मिक होती गई। इनकी शैली 'मनसवी' है। सूफी साहित्य के पूर्ण अध्ययन के बाद पता चलता है कि क्रमशः इसे तीन भागों में बाँटा जा सकता है—प्रथम भाग में सिद्धान्त निरूपक ग्रन्थ, द्वितीय में सूफियों की इतिहास-सम्मत जीवनियां और तृतीय में काव्य ग्रन्थ आते हैं। वस्तुतः सम्पूर्ण साहित्य में काव्य ग्रन्थ ही प्राणतत्व है, इसमें विशुद्ध प्रेम के आगे दीन दुनिया को सर्वत्र उपेक्षित कर दिया। इन विशाल काव्य ग्रन्थों के लिए 'मसनवी' शब्द का प्रचलन हुआ है। मसनवी शैली पर लिखे ग्रन्थ सर्ग-बद्ध होते हैं, उनमें प्रथम परमात्मा का गुणानुवाद करके काव्य सृजन की सफल सम्पूर्णता की आकांक्षा की जाती है और पुनः किसी महान व्यक्ति की प्रशंसा की जाती है। ये काव्य विभिन्न खण्डों में विभक्त और प्रत्येक खंड का शीर्षक किसी विशेष व्यक्ति, घटना, स्थान आदि पर आधारित होता है।

इसके अतिरिक्त प्रेम कथाओं के लघु काव्य के लिए 'गजल' शब्द आया है जो अरबी भाषा का है। इसमें कुमार कुमारियों के प्रेम की पीर जो हृदय को विह्वल और अधीर बना देती है, उनका लयात्मक ढंग से सृजन होता है। इस प्रकार समस्त सूफी काव्य में लौकिक या पारलौकिक किसी न किसी रूप से परब्रह्म के ही रहस्य को खोलकर उस तक पहुंचने की उत्कृट लालसा समायी हुई है, इसीलिए यह ग्रन्थ

---

23. सूफीमत-साधना और साहित्य—डा० रामपूजन, पृष्ठ 523।

अब भी सजीव है। साथ ही कोई भी समय अपनी निश्चित अवधि के बाद नष्ट हो जाता है। लेकिन उसका काव्य सृजन सदियों तक जीवित रहकर अपनी जीवन साधना पूर्ण करता है, सूफी काव्य का शरीर भी पन्द्रहवीं शताब्दी तक शिथिल हो गया था और धीरे-धीरे शताब्दी के अन्त तक उसके प्राण पखेरू उड़ गये और वह निर्जीव सा पृथ्वी पर पड़ा रहा। लेकिन उसकी आत्मा सैद्धान्तिक रूप से आज भी अजर-अमर है।

पतन काल—सूफी मत के पतन का मुख्य स्रोत शियापंथ है। शियापंथ के प्रादुर्भाव के सम्बन्ध में प्रो० जय बहादुर लाल ने लिखा है—'चौदहवीं शताब्दी के मंगोलों और तैमूर ने फन उठाकर लहराते हुए उद्दण्ड इस्लाम विषधर को कुचल कर क्षत-विक्षत कर दिया। अब उसमें अपने फुफकार से क्रोध स्फुलिंग बरसाने का दम न रहा। फलस्वरूप, आर्यवंशीय स्वाभिमानी ईरान भी स्वतन्त्र वायुमण्डल में सांस लेने को तड़प उठा।'[24]

एक सिद्धान्त है कि जब भी कोई समुदाय वास्तविकता से दूर हट कर चमत्कार में फंस जाता है, और अन्य लोगों को भी उसी में चमत्कृत करना चाहता है, उसमें बुराइयों का बोलबाला हो जाता है तभी उसके विरोध में कोई हलचल होती है और युग की पुकार से वह बहुसंख्यक और तीव्रतम हो जाया करती है। उदाहरण स्वरूप तसव्वुफ में गुरु महिमा ने ऐसी सुगन्ध बिखेर दी कि जिससे परमात्मा का अस्तित्व तो गौड़ हो गया और पीर या गुरू ही सब कुछ हो गये, उनके मरने के बाद उसकी कब्र मक्का से श्रेष्ठ तीर्थ स्थल बन गयी और साधक उसके कब्र की धूल चूमकर अपने को धन्य और कृतार्थ मानता था। इस प्रकार के बाह्याडम्बर जो कि बुद्धि तत्व से कोसों दूर थे, शिया-पंथ की दृष्टि में कंकड़ की भांति चुभने लगे, जिसको निकाले बिना उन्हें शान्ति सम्भव न थी। शिया-पंथ भक्ति का पंथ है। इसमें इमामों की चर्चा आई है जिसका अर्थ पथ प्रदर्शक है। भक्ति प्रत्यक्षवादी मार्ग है, अतः इसके भक्ति विषयक रति के आलम्बन शरीरधारी इमाम हैं।

ईरान के सिवा टर्की से भी तसव्वुफ या सूफीमत ही नहीं इस्लाम भी अदृश्य हो गया। वहाँ के शेर मुस्तफा कमालपाशा ने तुर्कों की दिमाग ही फेर दिया उसके भाषा के स्थान पर रोमन लिपि चलवाई। उसने आशिक मुसलमानों की गर्दन पर फौलादी तलवार से प्रहार कर उनके कुरान के पठन-पाठन और रोजा-नमाज पर सर्वथा कड़ी रोक लगा दी।

---

24. सूफी सन्त साहित्य का उद्भव विकास—प्रो० जय बहादुर लाल पृष्ठ 146।

मिश्र की सभ्यता विश्व की प्राचीन सभ्यताओं में से एक है, अतः उसने भी इन ढकोसले युक्त वर्ग को त्याग राष्ट्र प्रेम की भावना को ही पुष्पित करने का प्रयास किया, जिससे वे मुस्लिम बनने के बदले मिस्री बनना अधिक पसन्द करते हैं।

18वीं शताब्दी में 'अब्दुल बहाव' ने सूफियों के विरुद्ध आन्दोलन किया, जो कि 1801 में सफल हुआ। 'बहावी सूफियों के जानी दुश्मन थे, उन्होंने मुहम्मद साहब की कब्र पर ही प्रहार किया वस्तुतः इस्लाम तो निरकार की उपासना करता है, जबकि तसव्वुफ पीरों की समाधि की पूजा पर जोर देता है। इसके अतिरिक्त तसव्वुफ सबसे बड़ा अनर्थ यह कर रहा था कि मानव अकर्मण्य और नैतिक सामाजिक अनुशासनहीन एवं स्वदेश प्रेम से विमुख हो रहा था। तसव्वुफ या सूफी-मत तो अपने में मस्त रहने वाला था। प्रारम्भ के कुछ वर्ष तो सूफियों के उत्थान के गौरवान्वित वर्ष थे, जिसमें उसने अपने जीवन काल को सर्व सुखों से व्यतीत किया, लेकिन बात बहुत पुरानी है कि प्रकृति के शाश्वत नियमानुसार जिसका आदि है उसका अन्त निश्चित है अतः हर वस्तु मिटने के लिए ही जन्म लेती है, तो तसव्वुफ या सूफीमत का जीवित रहना कैसे सम्भव था, इसके साथ ही हर व्यक्ति, वस्तु, और घटना का काल नियत रहता है, अपने समय पर पहुंचकर उसका विनाश अवश्यम्भावी हो जाता है।

सूफीमत का भारत में प्रवेश

ईरान और भारत का सम्बन्ध तो ईसा से पूर्व ही स्थापित हो चुका था, अतः ये लोग भारत में आते जाते रहते थे, इनका उद्देश्य अपने धर्म का प्रचार करना था, बल्कि वे कुछ लेने के लिए ही भारत आते थे। श्री यज्ञ दत्त शर्मा के शब्दों में, 'सूफी धर्म का प्रसार भारत में पूर्णतया शान्ति और अहिंसा के सिद्धान्तों पर चलकर हुआ। यह इस्लाम का वह रूप नहीं था। जो तलवार की धार पर चलकर या रक्त की सरिता में बहकर भारत भूमि पर आया है, प्रेम, आत्मीयता, सरलता और सचरित्रता के सहारे यह विचार धारा भारत में फैली और इससे इस्लाम के प्रसार में योग मिला। यह स्थायी योग था, जिसने जनता के दिलों में घर किया, किसी भय या आतंक के कारण इसका प्रसार नहीं हुआ।'[25]

व्यापारिक और धार्मिक दृष्टिकोण से अरब और फारस का दक्षिण भारत से बहुत गहरा सम्बन्ध था, इसके साथ वे सिंध और पश्चिमोत्तर प्रान्तों में भी व्यापार के लिये जाते थे इस्लाम और तसव्वुफ के आविर्भाव के उपरान्त मुस्लिम

---

25. मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य—डा० शिवसहाय पाठक पृष्ठ 11।

संत और सूफी-साधक भारत में आते थे। लेकिन वे अपने धर्म प्रचार के उद्देश्य से न आकर यहां से कुछ लेने आते थे, जिसे उन्होंने अपने धर्म से समाविष्ट किया। सर्वप्रथम तो मुसलमान 711 ई० में आये, लेकिन वस्तुतः उनका आगमन मुहम्मद गोरी के आक्रमण से माना जाता है। वैसे इसने अपने आक्रमण से केवल राज्य विस्तार की ही आकांक्षा रखी थी। ख्वाजा मुइनुद्दीन चिस्ती का नाम सूफीमत के साथ जुड़ा रहता है। मुहम्मद गोरी को भारत में लाने का कार्य इसी ने किया; और सर्वप्रथम इसने ही लाहौर, दिल्ली, अजमेर में सूफीमत का प्रचार किया। डा० शिवसहाय पाठक ने सूफीमत के धर्म प्रचार के सम्बन्ध में लिखा है—'मुहासिव ने 664 ई० में भारतवर्ष पर आक्रमण किया था। उसने मुल्तान, लाहौर और बन्नू तक के प्रदेश को लूटा था। 711 ई० में मुहम्मद बिन कासिम ने बसरा के शासक हजाज बिन युसुफ के आदेश से भारतवर्ष पर चढ़ाई की। उसने सिंध से मुल्तान तक के प्रदेश को जीत लिया। मुसलमानों की सैनिक विजय के साथ-साथ इस्लाम का प्रचार तीव्रतर होता गया।'[26]

सूफीमत के क्रमिक विकास की ओर ध्यान इंगित करते हुए श्री रामपूजन तिवारी जी लिखते हैं—'महमूद गजनवी के भारत आक्रमण के दो सौ वर्षों बाद तक इस प्रकार के धर्म, प्रचारकों के नाम बहुत अधिक सुनने को नहीं मिलते। लेकिन ईसा की तेरहवीं शताब्दी में तथा इसके बाद भी बड़े-बड़े धर्म-प्रचारकों, पीरों और सूफी-साधकों के नाम सुनने को मिलते हैं। ईसा की पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में बहुत कम हो गया, और सत्रहवीं में प्रयलुप्त हो गया।'[27]

जिस समय सूफी धर्म का आगमन हुआ, उस समय बौद्ध धर्म का प्रचार जोरों से था, अतः सूफियों ने जैनियों से अपनाया। सूफीमत में यौगिक क्रियाओं का भी यथाविधि वर्णन है, आसन प्राणायाम और ध्यान आदि की बातें योगियों से ही सूफियों ने सीखी। भारत में इनका आगमन तसव्वुफ के जन्म के पश्चात् अर्थात् दशवीं शताब्दी में हुआ। यही से यह सारे भारत में फैले। वैसे भारत में इनका प्रवेश ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती के समय बारहवीं शताब्दी से माना जाता है। इन यौगिक चमत्कार के प्रभाव से भारतीय जनता 'अहं ब्रह्मास्मि' के पाठ को भूलकर अल्लाह की उपासना में लीन होने लगी। कुछ दिन तो इसका प्रभाव बहुत अधिक रहा, लेकिन चमत्कार की एक सीमा होती है, अतः एक निश्चित समय तक जनता बहकावे के मधुर आग्रह पर जाने को उद्धृत हुई, फिर यथार्थ की झलक पा लेने पर, उससे बचने का प्रयास करने लगे और कुछ काल बाद ही सूफीमत का लोप हो गया।

---

26. वही पृष्ठ 11।
27. सूफीमत-साधना और साहित्य—श्री रामपूजन तिवारी पृष्ठ 407।

हिन्दी सूफी काव्य परम्परा—मानव जीवन में प्रेम वह दीपशिखा की ज्योति है जो मानव हृदय को शाश्वत प्रकाशित रखती है, बिना प्रेम के मनुष्य एक क्षण मात्र भी जी नहीं सकता है प्रेम से जीवन में सरसता और भविष्य के लिए उत्सुकत्ता रहती है। साहित्य में भी प्रेमाख्यान का महत्व शरीर में प्राण-तुल्य है। सूफी कवियों के पूर्व साहित्य केवल वीररस से ही सना हुआ रहता था, लेकिन समय और काल की मुखाकृति को देखकर हिन्दी सूफी कवियों ने भारत वसुन्धरा को केवल वीर भोग्या न मानकर 'प्रेमभोग्या' बनाने का सफल प्रयास किया। यद्यपि प्रारम्भ में हिन्दू जनता मुस्लिम शासन नीति के विरुद्ध थी लेकिन बाद में राज्य सत्ता में विरोध लेना उचित न समझकर उसके पक्ष में हो गई। इधर हिन्दी-सूफी कवियों ने अपने काव्य का उपजीव्य भारतीय लोक-कथाओं, हिन्दी भाषा, हिन्दी-छन्द और भारतीय चरित्रों को लेकर हिन्दू जनता को विमोहित कर इस्लाम धर्म का पक्षपाती बनाया। अपने काव्य का सृजन भी इन्होंने भारतीय ढाँचे पर किया, जैसा कि प्रारम्भ में गुरु महिमा, खुदा की वन्दना, मुहम्मद साहब की स्तुति तथा मित्रों के विवरण आदि है। जो कि पूर्णत: भारतीयता के पोषक हैं लेकिन आवरण में इस्लाम के ही समर्थक है। यद्यपि उनका उद्देश्य इस्लाम धर्म की ओर भारतीयों को आकृष्ट करना था, फिर भी इनके प्रेमाख्यान-काव्य हिन्दी-साहित्य को त्याज्य नहीं है, क्योंकि उनसे साहित्य में एक नयी वस्तु का अंकुरण हुआ है जो सृष्टि के अन्त तक महत्वपूर्ण है। हिन्दी कवियों के काव्य प्रेम के विविध रंगों से रंगे पड़े हैं, जिन्हें देखने की इच्छा समाप्त नहीं होती, इनके काव्य क्रमानुसार वर्णित है—

असाइत—हिन्दी सूफी कवियों में 'असाइत' का नाम ही प्रथम लिया जाता है। इन्होंने अपनी कृति 'हंसावली' में राजकुमार एवं पाटण देश की राजकुमारी हंसावली की प्रेम कथा का वर्णन है। इसमें स्वप्न दर्शन द्वारा प्रेमोत्पत्ति होती है और फिर योगीवेश धारण करके साहसपूर्ण यात्रा द्वारा कन्या पक्ष से विरोध लेता हुआ अन्त में विवाह द्वारा प्राप्त कर लेता है। इसमें आध्यात्मिकता और ग्रहस्थ वातावरण का अभाव सा है।

मौलाना दाऊद—सूफी शैली के आधार पर लिखी हुई सर्वप्रथम रचना मौलाना दाऊद की 'चन्दायन' मानी जाती है। इसके रचना काल के सम्बन्ध में विद्वानों में परस्पर मतभेद है, लेकिन मुल्ला दाऊद ने स्वयं अपनी रचना में लिखा है—

'बरिस सात सै होई इक्यासी। तिहि जाइ कवि सरसेउ भासी॥
सहि फिरोज दिल्ली सुल्तानू। जोनासहि अजीरू बखानू॥
दलमऊ नगर बसै नवरंगा। ऊपरकोट तरे बहै गंगा॥

धरमी लोग वसै नणवंता । गुण गाहक नागर जसवंता ।।
मालिक क्या धुत उधरन धीरू । मलिक मुबारक तहाँ कम भीरू ।।[28]

चन्दायन का प्रारम्भ मसनवी पद्धति पर आधारित ईश्वर-स्तुति शाहे—वख्त की प्रशंसा आदि से है । चन्दायन का कथानक इस प्रकार है । गोवर नगर के महर राजा सहदेव की पट्टमहादेवी फूलारानी से उत्पन्न इकलौती कन्या 'चन्दा' थी । चन्दा अपने रूप सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध थी । उसका विवाह बहुत ही बाल्यावस्था में हो गया था, अवसर आने और कुछ आयु पाने पर वह ससुराल गई पर वहां सास से झगड़ा करके मायके आ गई । एक दिन जब चांद अपने महल की अटारी पर खड़ी थी कि उधर से एक बाजिर भिक्षा मांगता हुआ निकला और जैसे ही उसकी दृष्टि चांद पर पड़ी, वैसे ही प्रेमसर से विद्ध वह बाजिर वहीं मूर्छित होकर गिर पड़ा चेतनावस्था आने पर वह विरह के गीत गाता हुआ राजापुर के राव रूपचन्द्र से वह उसका नख सिख वर्णन करने लगा । राव रूपचन्द्र उसके रूप पर मोहित हो गये, उसे पाने के लिए गोबर नरेश पर आक्रमण कर बैठा सहदेव ने अपनी सहायता के लिए वीर लोरिक का सहारा चाहा । लोरिक की वीरता देखकर चन्दा उस पर मोहित हो गई और उसके प्रेम-पाश में आबद्ध होने के लिए आकुल हो उठी उसने अपनी सखी विरसपति द्वारा उससे प्रतिदिन रात्रि में मधुर, मिलन का सुख पाया और कुछ दिन बाद जब वह खबर चारों ओर फैलने लगी तभी तो दोनों ही अपना देश छोड़कर भाग गये । यह बात जब चन्दा के पति बावनवीर को मालूम हुई तो उसने लोरिक से युद्ध प्रारम्भ कर दिया और उसे घायल कर वही छोड़ आगे बढ़ गये, फिर चन्दा को वृक्ष के नीचे सोते हुए एक साँप ने डस लिया, इस पर लोरिक ने बड़ा करुण विलाप किया तब किसी प्रकार गारूड़ी ने आकर उसे जीवित कर दिया । आगे चलकर वह मार्ग में एक जुआरी के साथ जुआं खेलने लगा और उसमें वह दांव पर चंदा को भी हार बैठा किसी प्रकार अपनी बुद्धिमता से चन्दा जुआरी से बच निकली और इस तरह अनेक विघ्न बाधायें झेलते हुए हरदी पहुंचे तथा सुख-पूर्वक रहने लगे ।

उधर लोरिक की पत्नी मैना बहुत ही दुःखी रहने लगी, और एक वर्ष तक प्रतीक्षा करने के बाद जब निराश हो गई तो एक व्यापारी से अपनी विरह कथा लोरिक तक पहुंचाने को कहा । जिसे सुनकर लोरिक चन्दा के अनेक प्रकार समझाने पर भी न रुका और शीघ्र अपने घर आ पहुंचा ।

इस प्रकार उपर्युक्त कथा-चित्र से स्पष्ट है कि सूफी-काव्य की कसौटी पर यह खरा नहीं उतरता है, क्योंकि दोनों का प्रेम लौकिक है और आत्मा-परमात्मा के

---

28. चन्दायन—डा० माता प्रसाद गुप्त पृष्ठ 15 ।

लिए व्यग्र न होकर परमात्मा ही आत्मा से मिलना चाहता है। और दोनों के मिलन के बाद मार्ग कंटकाकीर्ण होता है तो अस्वाभाविक प्रतीत होता है साथ ही परमात्मा को पाने के बाद वह फिर संसार में माया से लिपट जाता है। 'चन्दायन' को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मुल्ला दाऊद ने लोक प्रचलित प्रेम-कथा को काव्य रूप में संजाने का उद्देश्य ग्रहण किया, उसे किसी काव्यगत विशेषताओं में बांधने का प्रयास नहीं किया है।

कुतुबन—कुतुबन की कृति 'मिरगावति' शीर्षक से प्रसिद्ध है, इसमें चन्द्रगिरि के राजा गणपति देव का पुत्र कंचन नगर के राजा रूप मुरारि की पुत्री मृगावती के रूप पर विमोहित होकर प्रेम सम्बन्ध स्थापन की कथा है। राजकुमारी उड़ने की विद्या जानती है, इधर राजकुमार अनेक कष्ट सहता हुआ राजकुमारी तक पहुंच जाता है, लेकिन फिर वह एक दिन धोखा देकर उड़ जाती है, और राजकुमार उसे पाने के लिए जोगी बनकर जंगल में भटकने लगता है, इसी बीच उसे एक सुन्दरी (रुकिमनी) के पिता उसके साथ उसका विवाह कर लेते हैं, तदनन्तर उसे शान्ति नहीं मिलती है और वह राजकुमारी की ही खोज में निरन्तर बना है, यही आध्यात्मिकता की झलक है, कि आत्मा परमात्मा से मिलने के लिए निरन्तर तत्पर रहता है। कुछ काल बाद राजकुमारी के प्राप्त हो जाने पर वह रुक्मिनी और राजकुमारी दोनों के साथ जीवन-यापन करता है, और उसके मरने पर दोनों ही सती हो जाती हैं, यह लौकिकता की पराकाष्ठा है—

'मिरगावति और रुक्मिनी (लैके) जरी कुंवर के साथ।
भसम भई जरि तिल एक मन्ह तिन्ह रहा न गात।।'[29]

सूफियों की मसनवी शैली में प्रणीत कथानक में कुतुबन ने मुहम्मद स्तवन और उसके चार मित्रों का भी उल्लेख किया है—

'उसमा बचन दीन के लिखे। जेरे मुहम्मद अधरहु सिषे।
अली सेरे विध आपुन कीन्हा। आगम गढ़ उनसो कर दीन्हा।'
चार मीत हैं पंडित, चारो है समतल।
मान सरोदक अमल भर-रहे कंवल के फल।।'[30]

---

29. मृगावती (कुतुबुन) डा० परमेश्वरी लाल गुप्त—द्वितीय संस्करण।
30. वही।

कुतुबन की रचना सूफियों के सिद्धान्त पर सही उतरती है, इसमें साधक के त्याग और कष्ट का निरूपण करते हुए यत्र-तत्र रहस्यात्मक आध्यात्मिकता के भी दर्शन होते हैं।

जायसी—प्रेम मार्गी सूफी कवियों की परम्परा में जायसी का नाम अग्रगण्य है, इनका 'पद्मावत' हिन्दी साहित्य का अद्भुत रत्न है, जिसके प्रकाश से सम्पूर्ण काव्य क्षेत्र प्रकाशित होता रहता है। सूफी काव्य परम्परा के अध्ययन पर दृष्टिगत होने से जायसी द्वारा उल्लखित प्रेमाख्यानों का उनके (पद्मावत) महाकाव्य में सम्बन्ध जुड़ जाता है और यह स्पष्ट हो जाता है कि जायसी के पूर्व इतने प्रेम काव्य लिखे जा चुके थे—

> बहुतन्ह ऐस जीउ कर खेला। तू जोगी केहि मांह अकेला ।।
> विक्रम धसा प्रेम के बारा। सपनावति कहं गएउ पतारा ।।
> सुदैवच्छ भुगुधवति लागी। कंकनपूरि होइग वैरागी ।।
> राजकुवंर कंचन पुर गएऊ। मिरगावति कह जोगी भएऊ ।।
> साधा कुवंर मनोहर जोगू। मधुमलति कह कीन्ह वियोगू ।।
> प्रेमावति कहं सरसुर साधा। उरवा लागि अनिरूध बर बांधा ।।[31]

इसके अतिरिक्त सूफी कवियों में जायसी का स्थान आकाश में ध्रुव नक्षत्र सा है। जायसी का स्थान काव्य संग्रह लिखे हैं। अनेक शोधकों एवं खोज रिपोर्टों के आधार पर जायसी की कृतियां निम्नांकित है—

1. पद्मावत, 2. अखरावट, 3. आखिरी-कलाम, 4. महरी-बाईसी 5. चित्र रेखा, 6. चम्पावत, 7. इतरावत, 8. मटकावत, 9. चित्रावत, 10. खर्वानामा, 11. सखावत, 12. मोराइनामा, 13. मुखरानामा, 14. होलीनामा, 15. पोस्तीनामा, 16. मेखरावदनामा, 17. मुकहरानामा, 18. नैनावत, 19. अन्य (स्फुट छन्दादि), 20. मसला।'[32]

अखरावट में वर्णमाला के एक-एक अक्षर को लेकर ईश्वर, सृष्टि और जीव आदि तत्वों पर सिद्धांत परक चौपाईयाँ निरूपित की है। आखिरी कलाम में कयामत का ही वर्णन है। वस्तुतः जायसी की कीर्ति का आधार स्तम्भ 'पदमावत' कृति है! इससे चित्तौड़ के राजा रत्नसेन और सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती की प्रेम-कथा की चर्चा है। इसमें आध्यात्मिकता का पूरा-पूरा सम्मिश्रण है, यत्र-तत्र हठयोग,

---

31. जायसी ग्रन्थावली—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, भूमिका पृष्ठ 4।
32. 'नागरी प्रचारिणी सभा' खोज रिपोर्ट—1947।

साधना और परमात्मा के मिलन की कठिन भूल युक्त यात्रा का भी सजीव वर्णन है, साधनावस्थाओं का भी वर्णन भी क्रमशः है। जीव पहले माया से आवृत्त रहता है किन्तु परमात्मा की झलक पाते ही वह संसार के कठोर से कठोर दुःख को खुशी के साथ लेकर उस परमात्मा के निरन्तर दर्शन चाहता है जो उसकी माशूक है।

'चित्ररेखा' एक छोटी-सी प्रेम कहानी है, जिसमें चन्द्रपुर के राजा चन्द्रभानु की पुत्री चित्ररेखा और कन्नोज के राजा कल्याणसिंह के पुत्र प्रीतमसिंह कुंवर की प्रेम कहानी है। यह न तो विवादन्त ही है यत्र तत्र आध्यात्मिकता की झलक अवश्य दिखाई देती है।

मँझन—इनकी एक खंडित प्रति 'मधुमालती' मिलती है। इसमें कनेसर नगर के राजा सूरजभान के पुत्र 'मनोहर' की महारस नगर की राजकुमारी 'मधुमालती' की प्रेमकथा का प्रणयन है। प्रेम की उत्पत्ति साक्षात परस्पर दर्शन से हुई है जो कि परम्परागत प्रेम की उत्पत्ति का एक रूप है। दोनों प्रेमियों का मिलन अप्सराओं द्वारा सोते समय रात्रि में राजकुमार मनोहर को मधुमालती की चित्रसारी में पहुंचने पर होता है, उस समय दोनों दीर्घकाल तक केवल वार्तालाप ही करते हैं बाद में सो जाते हैं और अप्सरायें फिर उसके महल की सेज पर पहुंचा देती हैं, दोनों एक-दूसरे को देखकर मोहित हो जाते हैं और उनके हृदय में मिलन होने की एक-मात्र आकांक्षा होती है। जिसे वे मर्यादित नैतिक शृंखला में बंधा देखना चाहते हैं। जाग्रतावस्था में आने पर वह विरहाग्नि से झुलता हुआ योगी बनकर शीतलता के प्रति मूर्ति राजकुमारी के पाने की इच्छा से समुद्र मार्ग से वन की ओर चल देता है। मार्ग में एक सुन्दरी राक्षस द्वारा अपहृत मिली, जिसे उसने राक्षस बध करके बचा लिया। उस सुन्दरी का नाम प्रेमा था और मधुमालती की सखी थी। मनोहर के साथ प्रेमा अपने घर आई। उसके पिता ने उस उपकार का प्रतिकार उसके साथ विवाह करके लौटाना चाहा पर प्रेमा ने उसे अपना भाई मानकर अस्वीकृत कर दिया और मनोहर को उसकी आराध्य देवी मधुमालती से मिलाने का वचन दिया। अपने वचनानुसार दूसरे दिन प्रेमा ने उसे अपनी चित्रसारी में मिला दिया, प्रातः जब राजकुमारी की मां ने दोनों को साथ देखा तो उसे बहुत फटकारा और पुत्री को पक्षी होने का शाप दिया, जिससे वह पक्षी बनकर उड़ गई।

उधर कुंवर ताराचन्द्र ने उसे पकड़ना चाहा, और पकड़कर सोने के पिंजरे में डाल दिया। एक दिन समय आने पर उसने अपनी सारी प्रेम-कथा उससे कह सुनाई, जिससे द्रवित होकर ताराचन्द्र उसे लेकर महारस नगर पहुंचा तब मां रूपमंजरी ने फिर मंत्र पढ़कर मधुमालती कन्या रूप में परिवर्तित कर दिया। पुत्री को पाकर मां ने प्रसन्न होकर उसका विवाह ताराचन्द्र से करना चाहा लेकिन उसने बहिन रूप में अपना कर अस्वीकृत कर दिया। इधर फिर मधुमालती ने अपनी व्यथा-कथा प्रेमा को लिख भेजी। प्रेमा उस दुःख में डूबी ही थी कि किसी सखी

कुतुबन की रचना सूफियों के सिद्धान्त पर सही उतरती है, इसमें साधक के त्याग और कष्ट का निरूपण करते हुए यत्र-तत्र रहस्यात्मक आध्यात्मिकता के भी दर्शन होते हैं।

जायसी—प्रेम मार्गी सूफी कवियों की परम्परा में जायसी का नाम अग्रगण्य है, इनका 'पद्मावत' हिन्दी साहित्य का अद्भुत रत्न है, जिसके प्रकाश से सम्पूर्ण काव्य क्षेत्र प्रकाशित होता रहता है। सूफी काव्य परम्परा के अध्ययन पर दृष्टिगत होने से जायसी द्वारा उल्लखित प्रेमाख्यानों का उनके (पद्मावत) महाकाव्य में सम्बन्ध जुड़ जाता है और यह स्पष्ट हो जाता है कि जायसी के पूर्व इतने प्रेम काव्य लिखे जा चुके थे—

> बहुतन्ह ऐस जीउ कर खेला। तू जोगी केहि मांह अकेला ।।
> विक्रम धसा प्रेम के बारा। सपनावति कहं गएउ पतारा ।।
> सुदैवच्छ भुगुधवति लागी। कंकनपूरि होइग वैरागी ।।
> राजकुवंर कंचन पुर गएऊ। मिरगावति कह जोगी भएऊ ।।
> साधा कुवंर मनोहर जोगू। मधुमलति कह कीन्ह वियोगू ।।
> प्रेमावति कहं सरसुर साधा। उरवा लागि अनिरूध बर बांधा ।।[31]

इसके अतिरिक्त सूफी कवियों में जायसी का स्थान आकाश में ध्रुव नक्षत्र सा है। जायसी का स्थान काव्य संग्रह लिखे हैं। अनेक शोधकों एवं खोज रिपोर्टों के आधार पर जायसी की कृतियां निम्नांकित है—

1. पद्मावत, 2. अखरावट, 3. आखिरी-कलाम, 4. महरी-बाईसी 5. चित्र रेखा, 6. चम्पावत, 7. इतरावत, 8. मटकावत, 9. चित्रावत, 10. खर्वानामा, 11. सखावत, 12. मोराइनामा, 13. मुखरानामा, 14. होलीनामा, 15. पोस्तीनामा, 16. मेखरावदनामा, 17. मुकहरानामा, 18. नैनावत, 19. अन्य (स्फुट छन्दादि), 20. मसला।'[32]

अखरावट में वर्णमाला के एक-एक अक्षर को लेकर ईश्वर, सृष्टि और जीव आदि तत्वों पर सिद्धाँत परक चौपाईयाँ निरूपित की है। आखिरी कलाम में कयामत का ही वर्णन है। वस्तुतः जायसी की कीर्ति का आधार स्तम्भ 'पदमावत' कृति है! इससे चित्तौड़ के राजा रत्नसेन और सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती की प्रेम-कथा की चर्चा है। इसमें आध्यात्मिकता का पूरा-पूरा सम्मिश्रण है, यत्र-तत्र हठयोग,

---

31. जायसी ग्रन्थावली—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, भूमिका पृष्ठ 4।
32. 'नागरी प्रचारिणी सभा' खोज रिपोर्ट—1947।

साधना और परमात्मा के मिलन की कठिन भूल युक्त यात्रा का भी सजीव वर्णन है, साधनावस्थाओं का भी वर्णन भी क्रमशः है। जीव पहले माया से आवृत्त रहता है किन्तु परमात्मा की झलक पाते ही वह संसार के कठोर से कठोर दुःख को खुशी के साथ लेकर उस परमात्मा के निरन्तर दर्शन चाहता है जो उसकी माशूक है।

'चित्ररेखा' एक छोटी-सी प्रेम कहानी है, जिसमें चन्द्रपुर के राजा चन्द्रभानु की पुत्री चित्ररेखा और कन्नोज के राजा कल्याणसिंह के पुत्र प्रीतमसिंह कुंवर की प्रेम कहानी है। यह न तो विवादन्त ही है यत्र तत्र आध्यात्मिकता की झलक अवश्य दिखाई देती है।

मँझन—इनकी एक खंडित प्रति 'मधुमालती' मिलती है। इसमें कनेसर नगर के राजा सूरजभान के पुत्र 'मनोहर' की महारस नगर की राजकुमारी 'मधुमालती' की प्रेमकथा का प्रणयन है। प्रेम की उत्पत्ति साक्षात परस्पर दर्शन से हुई है जो कि परम्परागत प्रेम की उत्पत्ति का एक रूप है। दोनों प्रेमियों का मिलन अप्सराओं द्वारा सोते समय रात्रि में राजकुमार मनोहर को मधुमालती की चित्रसारी में पहुंचने पर होता है, उस समय दोनों दीर्घकाल तक केवल वार्तालाप ही करते हैं बाद में सो जाते हैं और अप्सरायें फिर उसके महल की सेज पर पहुंचा देती हैं, दोनों एक-दूसरे को देखकर मोहित हो जाते हैं और उनके हृदय में मिलन होने की एकमात्र आकांक्षा होती है। जिसे वे मर्यादित नैतिक श्रृंखला में बंधा देखना चाहते हैं। जाग्रतावस्था में आने पर वह विरहाग्नि से झुलता हुआ योगी बनकर शीतलता के प्रति मूर्ति राजकुमारी के पाने की इच्छा से समुद्र मार्ग से वन की ओर चल देता है। मार्ग में एक सुन्दरी राक्षस द्वारा अपहृत मिली, जिसे उसने राक्षस बध करके बचा लिया। उस सुन्दरी का नाम प्रेमा था और मधुमालती की सखी थी। मनोहर के साथ प्रेमा अपने घर आई। उसके पिता ने उस उपकार का प्रतिकार उसके साथ विवाह करके लौटाना चाहा पर प्रेमा ने उसे अपना भाई मानकर अस्वीकृत कर दिया और मनोहर को उसकी आराध्य देवी मधुमालती से मिलाने का वचन दिया। अपने वचनानुसार दूसरे दिन प्रेमा ने उसे अपनी चित्रसारी में मिला दिया, प्रातः जब राजकुमारी की मां ने दोनों को साथ देखा तो उसे बहुत फटकारा और पुत्री को पक्षी होने का शाप दिया, जिससे वह पक्षी बनकर उड़ गई।

उधर कुंवर ताराचन्द्र ने उसे पकड़ना चाहा, और पकड़कर सोने के पिंजरे में डाल दिया। एक दिन समय आने पर उसने अपनी सारी प्रेम-कथा उससे कह सुनाई, जिससे द्रवित होकर ताराचन्द्र उसे लेकर महारस नगर पहुंचा तब मां रूपमंजरी ने फिर मंत्र पढ़कर मधुमालती कन्या रूप में परिवर्तित कर दिया। पुत्री को पाकर मां ने प्रसन्न होकर उसका विवाह ताराचन्द्र से करना चाहा लेकिन उसने बहिन रूप में अपना कर अस्वीकृत कर दिया। इधर फिर मधुमालती ने अपनी व्यथा-कथा प्रेमा को लिख भेजी। प्रेमा उस दुःख में डूबी ही थी कि किसी सखी

ने मनोहर के योगी में आगमन की सूचना दी। तभी दोनों का विवाह धूमधाम से सम्पन्न हुआ।

एक दिन मधुमालती और प्रेमा झूला झूल रही थी कि ताराचन्द्र प्रेम के रूप-सौन्दर्य पर मोहित होकर मूर्छित हो जाता है। कारण ज्ञान होने पर प्रेमा और ताराचन्द्र का विवाह सम्पन्न होता है, और दोनों सखियां अपने ग्रहस्थ जीवन में प्रवेश कर लेती है। प्रेम में सर्वत्र एक निष्ठता है, नायिका नायक के साथ-साथ उपनायक और उपनायिका के चरित्र और भावनाओं में दृढ़ता का पूरा समावेश है। कवि ने प्रेम के संयोग पक्ष की अपेक्षा वियोग को अधिक श्रेष्ठ दिखाते हुए आध्यात्मिकता का पुट निरन्तर रखा है। लौकिक रूप के अन्तर्गत मां 'मधुमालती' को विदा करते समय शिक्षा देती है—

साई सेवा करत चित लाये। जानि डोले चित दाहिने बायें।

उधर जब मनोहर अपने नगर मधुमालती को लेकर पहुंचता है और अपने पिता के चरण स्पर्श करता है तो पिता की क्या स्थिति है—

'कुंवर पिता पा लागा आई। जैन जोति जनु अन्धरे पाई।।'

प्रेम काव्य होने के कारण अन्त में कवि ने प्रेम की प्रशस्ति करते हुए 'मधुमालती' उपसंहार किया है—

प्रेम अमिय जे पाइअ बासा। सेस काल तेहि आवन साँसा।
जेहि भौ प्रेम अमी सो, परिचे करेक पार।
औधि सहसदल कली सो, त्रिअहिं प्रेम आधार।

उसमान—ये गाजीपुर के रहने वाले और जहांगीर के समय में थे। सन् 1613 ई० में इन्होंने 'चित्रावली' की रचना की। मसनवी पद्धति और पारम्परिक रूप से उसमान ने आरम्भ में स्तुति के उपरान्त पैगम्बर और चार खलीफों की बादशाह जहांगीर तथा शाह निजामुद्दीन और हाजी बाबा की प्रसंशा लिखी। तत्पश्चात् नेपाल के राजा धरनीधर के वरद पुत्र सुजान और रूपनगर की राजकुमारी चित्रावली की प्रणय-गाथा वर्णित है। इसमें प्रमोदय चित्र दर्शन द्वारा होता है, सुजान शिकार खेलने के बाद घर आते हुए मार्ग भूल जाता है, और वहीं किसी देव (प्रेत) की मढ़ी में सुरक्षा सहित आश्वासन ले विश्राम करने लगता है। एक दिन देव चित्रावली की वर्षगांठ का उत्सव देखने जाता है। वह सोते हुए सुजान को भी ले जाता है और वहाँ चित्रावली की चित्रसारी में छोड़ देता है, सुजान कुमार ने

चित्रावली का चित्र नंगा देखा, जिस पर आसक्त हो गया और परिणामस्वरूप उसने उसके बगल में अपना चित्र बनाकर टांग दिया। देव (प्रेत) उसे उठाकर फिर मढ़ी में रख आये। जाग्रतावस्था आने पर कुमार को वह चित्र दिखाई देने लगा और वह उसे स्वप्न समझने लगा कि तभी उसे अपने हाथ में लगा रंग दिखाई दिया और वह उस घटना को सत्य मानकर चित्रावली के लिए व्याकुल हो उठा। इसी बीच उसके पिता के दूत खोजते हुए आए और उसे राजधानी ले गए, लेकिन वहां उसका मन नहीं लगा और वह फिर मढ़ी में वापस आ गया और अपना अन्नसत्र खोल दिया।

उधर राजकुमारी चित्रावली ने जब वह चित्र देखा तो प्रेम विह्वल हो गई और उसने अपने भृत्यों को जोगी वेष में कुमार का पता लगाने को भेजा। उसकी एक कुटीचर ने माँ से चुगली करके उस चित्र को धुलवा दिया, जिससे राजकुमारी ने उस कुटीचर का मुंडन कराके राज्य से निष्काषित कर दिया। जोगियों में से एक जोगी मढ़ी तक पहुंच गया और 'राजकुमार' को रूपनगर लाकर एक शिवमन्दिर में चित्रावली से मिलन करा दिया। परन्तु ठीक इसी समय एक कुटीचर ने राजकुमार को अन्धा कर दिया और एक गुफा में डाल दिया, जहाँ उसे एक अजगर निगल गया पर उसकी विरह ज्वाला से पीड़ित होकर उसने उसे उगल दिया, वहीं उसे एक वनमानुष मिला, जिसने उसे अंजन द्वारा नेत्र-ज्योति प्रदान की, इस प्रकार अनेक कष्ट सहता हुआ वह सागरगढ़ नामक नगर पहुंचा और वहां राजकुमारी कंवलावती के प्रेमदवन में विश्राम करने लगा। राजकुमारी ने जब उसे देखा तो उस पर मोहित हो गई और उसे भोजन के बहाने बुलाकर और हार की चोरी लगा कर कैद कर लिया। इसी बीच में सोहिल नाम राजा कंवलावती के रूप की प्रशंसा सुन उसे प्राप्त करने की चढ़ाई कर बैठा, सुजान कुमार ने उसे मार भगाया, इससे वीरता पर प्रसन्न कंवलावती से उसका विवाह सम्पन्न हुआ, किन्तु सच्ची आराधना कभी स्खलित नहीं होती, अतः सुजान ने उससे चित्रावली के मिलने तक समागम न करने की प्रतिज्ञा की। यही काव्य में आध्यात्मिकता के स्पष्ट दर्शन होते हैं, क्योंकि परमात्मा को पाने के लिए संसार से विमुख होना आवश्यक है। अतः सुजान कंवलावती को लेकर गिरनार की यात्रा के लिए चल दिया।

उधर चित्रावली के भेजे गये दूतों ने उसे गिरनार में पहचान लिया, संवाद चित्रावली तक पहुंचा दिया सुजान की प्राप्ति के लिए जोगी सिद्ध पुरुष बन वहीं धूनी लगाकर बैठा, अतः उसकी सिद्धि सुनकर सुजान भी वहां पहुंचा और बाद में सारा हाल मालूम होने पर वह जोगी दूत के साथ रूपनगर के लिए चल दिया। सुजान को एक स्थान पर बैठाकर जोगी चित्रावली के पास सूचना देने जा रहा था कि तभी किसी दासी ने द्वेषवश यह समाचार रानी से कह दिया, और वह दूत मार्ग में ही कैद कर लिया गया। पर्याप्त विलम्ब होने के बाद सुजान कुमार विकल हो तीव्र स्वर में

चित्रावली का नाम लेकर पुकारने लगा। अपकीर्ति के भय से राजा ने उसे मारने के लिए एक मतवाला हाथी छोड़ा, लेकिन उसने उस हाथी को मार डाला। इसी बीच एक चित्रकार सागरगढ़ से राजकुमार का चित्र लेकर लौटा और राजा को दिखाया, यह वही सुजान कुमार का, जिसने सोहिल को मार भगाया था। अत: यह जानकर राजा ने चित्रावली का विवाह उसके साथ कर दिया।

कुछ दिन बाद कंवलावती ने विरह से संतृप्त होकर हंस मिश्र को सुजान कुमार के पास दूत बनाकर भेजा जिसने भ्रमर की अन्योक्ति से उसका प्रेम स्मरण कराया और तत्पश्चात् वह चित्रावली को लेकर स्वदेश को प्रस्थान किया तथा मार्ग में कंवलावती को भी साथ ले लिया। मार्ग में उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। लेकिन घर पहुंचकर पितृहृदय आनन्दातिरेक हो गया और जो माता अंधी हो गई थी, अपने पुत्र का दो रानियों के साथ आगमन सुनकर दोनों नेत्र खोल दिये।

वस्तुत: 'चित्रावली' को 'पद्मावत' की छाया कह सकते हैं, क्योंकि रचना-शैली भी वैसी ही है और ऋतु वर्णन भी है। पद्मावत से मिलना एक बात में है कि पद्मावत एक ऐतिहासिक काव्य है, जबकि चित्रावली पूर्णत: कल्पना है। इसके उपरान्त भी कवि ने आध्यात्मिकता का आँचल बराबर पकड़े रहने का सफल प्रयास किया है। कंवलावती और चित्रावली अविद्या और विद्या की प्रतीक तथा राजकुमार ज्ञानवान् है, अत: साधनाकाल में अविद्या से विमुख रहना सैद्धान्तिम आवश्यक है, बाद में उसे अपनाना कोई हानिकर नहीं।

जानकवि—इन कवियों के बाद इस परम्परा में जानकवि का नाम आता है। राजस्थानी कवि होने के कारण इनकी रचनाओं की हस्तलिखित प्रतियां राजस्थान के संग्रहालयों में उपलब्ध है, इनकी अब तक प्राप्त रचनाऐं 78 हैं, लेकिन सर्वप्रथम रचना 'कंवलावती' है और अन्तिम 'जफरनामा' है। जानकवि का अध्ययन बहुत विस्तृत था, अत: इन्होंने वैद्यक सम्बन्धी मुक्तक, कथा-काव्य, रत्नपरीक्षा, विषयक संगीत सम्बन्धी, काम शास्त्र तथा अन्य विविध विषयों पर लिखे परन्तु सर्वाधिक संख्या प्रेमाख्यानकों की है। काव्य-सौंदर्य की दृष्टि से जायसी के बाद इनका नाम आता है। इन्होंने पूर्व तथा वर्तमान में प्रचलित अरबी, फारसी, संस्कृत, हिन्दी आदि की कथाओं को ग्रहण कर अपने ग्रन्थों का सृजन किया है।

शेखनबी—ये जौनपुर जिले के मज—नामक स्थान के रहने वाले थे। इन्होंने 'ज्ञानद्वीप' शीर्षक प्रेमाख्यानों की रचना की, जिसमें राजा 'ज्ञानद्वीप' और रानी 'देव जानी' की कथा वर्णित है। प्रेमोदय को साक्षात-दर्शन के द्वारा दिखाया गया है। एक दिन शिकार में वह भटक गया, जिससे सिद्धनाथ योगी ने उसे संसार

से विरक्त करने का प्रयत्न किया, लेकिन उसे ये बातें नीरस लगी, अतः योगी के वेश में बेसुध पड़ा था, तभी देवजानी की सखी सुरजानी ने संगीत द्वारा विरक्त करने का प्रयत्न किया। उधर विद्यानगर के राजा सुखदेव के देवजानी नाम की विदुषी पुत्री थी। ज्ञानदीप योगी के वेश में बेसुध पड़ा था, तभी देवजानी की सखी सुरलानी ने संगीत द्वारा जगाया देवजानी उसके रूप पर विमोहित हो गई। सखी ने मंत्रवन से एक कागज का अश्व बनाया और पार्वती जी द्वारा उसमें प्राण प्रतिष्ठा हुई, जो प्रतिदिन ज्ञानदीप घोड़े पर सवार होकर देवजानी के छत पर उतरता और मिलन सुख प्राप्त करता। किसी दिन दुर्भाग्यवश राजा द्वारा देखे जाने पर उसे मार गिराया गया और मंत्री आदि की सम्मति से काष्ठ मंजूसा में बांध करके नदी में प्रवाहित कर दिया गया। देवजानी को जब यह ज्ञात हुआ तो वह भी अग्निकुण्ड में कूद पड़ी किन्तु पार्वती जी की कृपा से बच गई और शंकर जी ने ज्ञानदीप के निर्दोष होने का सफल परिचय राजा सुखदेव को स्वप्न में दिया अन्त में स्वयंवर प्रथा के अनुसार दोनों का विवाह धूमधाम से मनाया गया। इसी बीच मानपुर के राजा का स्वर्गवास हो गया और उसे देवजानी को छोड़कर मानपुर जाना पड़ा। पुनश्च सुरजानी के परिश्रम से फिर दोनों का मिलन होता है।

प्रस्तुति कथावस्तु के विकास और प्रेमोदय के मूल में सिद्धनाथ योगी और सखी सुरजानी का कठिन परिश्रम है, जिसमें दोनों को एक दूसरे से सम्बन्धित किया। देवजानी परम-ज्योति स्वरूपा है। मूलतः इस काव्य में श्रृंगार रस की प्रधानता है, लेकिन उसमें भी कवि ने विप्रलम्भ को ही साधा है संयोग का तो अभाव ही है। कवि ने बारहमासा का भी वर्णन किया है। कथानक काल्पनिक होते हुए भी, आश्चर्यजनक तत्वों से कौतूहल वृद्धिकारक है। कथा सुखान्त है।

कासिमशाह—ये दरियाबाद (बाराबंकी) के रहने वाले थे सूफी-काव्य परम्परा में आगे बढ़ाने में इनकी कृति 'हंस-जवाहिर' का नाम आता है, जो पूर्णतः काल्पनिक है। इसमें 'बलखनगर के शासक बुरहानशाह के पुत्र हंस और चीन देश के राजा आलमशाह की पुत्री जवाहिर की प्रेम-कहानी वर्णित है। कवि ने घटना-स्थल के लिए बलख, चीन, रूस आदि अभारतीय क्षेत्रों का चयन किया है, लेकिन उनके रीति-रिवाज और जीवन पद्धति पूर्णतः भारतीय है। इस कृति की विशेषता इस बात की है कि अन्य प्रेमाख्यानों में सिद्ध आ गुरु की चर्चा नायक नायिका के सहायक रूप में हुई है, किन्तु इसमें गुरु वीरनाथ की चर्चा विरोधी के रूप में हुई है।

इस कथा में प्रेम का आविर्भाव स्वप्न दर्शन और तत्पश्चात् गुण श्रवण के आधार पर होता है। इसमें भी संयोग की अपेक्षा वियोग की प्रबलता है, क्योंकि कवि की इच्छा उनके संतप्त हृदय की आह सुनने की अधिक है। इनकी

रचना अधिक प्रसिद्ध नहीं है, बल्कि उन्होंने कहीं-कहीं जायसी की पदावली को ज्यों का त्यों उतार दिया है।

नूर मुहम्मद—नूर मुहम्मद का समय दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के समकालीन माना जाता है। नूरमुहम्मद को फारसी का ज्ञान श्रेष्ठतम था, साथ ही हिन्दी काव्य भाषा का ज्ञान अन्य सूफी कवियों से अधिक था। सम्वत् 1801 में इन्होंने 'इन्द्रावती' नामक अख्यान-काव्य की रचना कर अपनी प्रशंसनीय प्रतिभा का परिचय दिया। इसमें कालिंजर के राजकुमार और आगमपुर की राजकुमारी इन्द्रावती की प्रेम कहानी है। राजकुंवर साधक है, उसकी रानी सुन्दर सांसारिक मोह का प्रतीक है किन्तु उसकी अपेक्षा करके वह स्वप्न में अवलोकित ब्रह्म का प्रतीक इन्द्रावती को प्राप्त करने के प्रयास करने लगता है प्रयत्न में ही मार्ग में उसे सात बीहड़ वन मिलते हैं जो रूप, रस, गंध, स्पर्श शब्द आदि का प्रतीक है इन सभी को पार करने के तात्पर्य शारीरिक वासनाओं पर विजय प्राप्त करना है। इसके अतिरिक्त प्रेमी आत्माओं के एकान्तिक प्रेम की गूढ़ता और गहनता के साथ-साथ दैनिक जीवन की व्यावहारिक अंगों को भी स्वीकारा था जैसे नैहर स्वच्छन्दता, सतीत्व की महत्ता, स्वामिभक्ति, वीरता, यात्रा, युद्ध आदि का सुन्दर चित्रण है साथ ही मसनवी पद्धति के अनुसार काव्य के प्रारम्भ में मुहम्मद शाह की प्रशंसा यथावत् रूप में है।

करौ मुहम्मदशाह बखानू। है सूरज देहली सुल्तानू।
धरम पंथ जग वी चलावा। निबर न सबरे सों दुःख पावा॥

इन्द्रावती में पात्रों और स्थानों का नामकरण ऐसे रूपकात्मक ढंग से हुआ है जो अध्यात्म की ओर संकेत करता है।

इसके अतिरिक्त एक प्रतीकात्मकता काव्य अनुराग-बांसुरी लिखा है, जिसमें 'मूरतिनगर' काया का प्रतीक है, जिसका स्वामी 'जीव' है, जीव का एकमात्र आधार का प्रिय पुत्र 'अन्तःकरण' है संकल्प और विकल्प इसके दो मित्र है, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार भी इनके साथी हैं। इसका सहज आकर्षण अपनी पत्नी माया रूपी महामोहिनी के प्रति है, किन्तु वस्तुतः वह अपने जीवन का लक्ष्य 'स्नेहनगर' के स्वामी दर्शनराय की पुत्री 'सर्वमंगला' की प्राप्ति है। गुण श्रवण के द्वारा उसमें प्रेम की जागृति होती है और वह विरहाकुल हो उठता है। जीव एवं संकल्प-विकल्प ने उसे पथभ्रष्ट करना चाहा, किन्तु बुद्धि ने अन्तःकरण को साहस और उत्साह दिया। 'स्नेहगुरू' और उपदेशी सुवा की सहायता से अभीष्ट मार्ग की ओर अग्रसर होता है मार्ग में उसे रूप, रस, गंध आदि अनेक विरोधी तत्व मिले, लेकिन उसे पथ भ्रष्ट न कर सके। 'ध्यानदेहरा' में एकाग्रचित होकर 'सर्वमंगला' का ध्यान करने से उसे

सिद्धि प्राप्ति होती है और दोनों का मिलन हो जाता है। अतः सम्पूर्ण जीवन की झांकी प्रतीकात्मकरूप में सजी है।

हुसैन अली—कवि हुसैन अली 'कृत 'पुहुपावती' नामक प्रेमगाथा यद्यपि महत्त्वपूर्ण नहीं है, फिर भी सूफी-काव्य परम्परा को आगे बढ़ाने का श्रेय अवश्य है पुहुपावती में केवल श्रृंगार रस उपलब्ध होता है। श्रृंगार वर्णन में रीतिकालीन छटा अवश्य दिखाई पड़ती है। काव्य में अनुप्रास की चमक है।

गुलाम अशरफ शेख 'निसार'—'युसुफ-जूलेखा' नामक प्रेमाख्यान हिन्दुस्तानी एकेडेमी में सुरक्षित है। इन्होंने अन्य भी अनेक ग्रन्थ लिखे पर युसुफ-जुलेखा ही प्रसिद्धि प्राप्त कर सका। इसका उपजीव्य कुरान में वर्णित यूसुफ जुलेखा को बनाया गया है, किन्तु दोनों की कथाओं में परस्पर भेद है। एक विभिन्नता यह भी है कि इसमें प्रेम का प्रारम्भ नायिका की ओर से होता है। नायक ईश्वरीय गुणों और सौन्दर्य से परिपूर्ण है, उसके सौन्दर्य को स्वप्न में ही देखकर नायिका उस पर मोहित हो जाती है। बहुत समय तक नायिका का प्रेम एकान्तिक रहता है, तीसरी बार स्पप्न में देखने पर उसे यह बोध होता है कि उसका प्रियतम मिस्र देश में है। यह परिचय पत्र प्राप्त हो जाने पर उसकी प्राप्ति का प्रयत्न जुलेखा की ओर से होता है। मिश्र का वजीर के साथ विवाह हो गया, किन्तु मार्ग में वजीर को देखकर उसे अपने भ्रम का बोध होता है और वह पुनः विरहणी बन जाती हैं। वह 40 वर्ष तक युसूफ के प्रेम में अन्तःकरण से विरुद्ध रहती है, और अन्त से अपना सौन्दर्य-धन, वैभव तथा गौरव सभी कुछ खोकर युसुफ के दर्शन की इच्छा से उसके पास जाती है। युसुफ उसके पवित्र प्रेम की दिव्य ज्योति के प्रकाश से प्रकाशित हो जाता है, मरने पर वह भी उसके साथ प्राण त्याग कर देती है, प्रथम विवाह के पति को सांसारिक पति मान उससे परामुख होना ही अलौकिकता है उसकी शाश्वत लगन ही सच्चे प्रेम की द्योतक है।

शाहनफजअली 'सलोनी'—इन्होंने 'प्रेम चिन्गारी' नामक प्रेम गाथा लिखी। ग्रन्थ के आरम्भ में कवि ने निर्गुण वन्दना, मुहम्मद साहब की प्रसंशा, चार खलीफाओं की चर्चा है। इस ग्रन्थ में श्रृंगार रस के स्थान पर शांत रस की स्थापना है, और गड़रिये का ईश्वर के प्रति दास्य भक्ति भावना है।

ख्वाजा अहमद—'नूरजहां' शीर्षक प्रेमगाथा की रचना इन्हीं के द्वारा हुई। यह नूरजहां ऐतिहासिक न होकर काल्पनिक है। इसका कथानक व प्रेम-प्रस्फुटन बिल्कुल प्रथक है : इसके प्रेम का आधार स्वयं दर्शन है। लेकिन स्वप्न दर्शन परस्पर न होकर खुरशेद नूरजहाँ को और गुलबोस खुरशेद को स्वप्न में देखते हैं। परन्तु

दोनों के प्रयत्नों में साम्य नहीं है। अन्त में नायक-नायिका के मिलन होने के कारण कथा सुखान्त है।

कथा में रूपकात्मक शैली का प्रयोग है, जो ब्रह्माण्ड में है, वही पिण्ड में है। 'कायागढ़' में ही 'नयनपुर' खरनदीप खुतानदेश और गढ़पति का निवास है। उन्होंने बताया कि जिस प्रकार सीप के मध्य मोती तत्व रूप है उसी प्रकार काया के मध्य तत्वरूप 'नूरजहां' स्थित है।

शेख रहीम—शेखर रहीम ने 'भाषा-प्रेमरस' प्रेमाख्यान का सृजन किया है, इसमें राजा की लड़की चन्द्रकला और मन्त्री के पुत्र प्रेतसेन की पुण्य-गाथा वर्णित है। कथा काल्पनिक है और वियोग का आधिक्य है। कवि को फारसी का अच्छा ज्ञान था, जिसका परिचय उसने काव्य के विभिन्न खण्डों के नामकरण करने में दिया है।

नसीर—नसीर कृत 'प्रेमदर्पण' का भी आधार कुरान वर्णित युसुफ-जुलेखा का प्रेमाख्यान है। निसार की अपेक्षा नसीर ने अपने ग्रन्थ में कुछ मौलिकता दिखाई है। इनके अनुसार मिश्र में सौदागर की कन्या के समान कोई सुन्दर नहीं था, किन्तु यह युसुफ को देखकर आश्चर्य चकित हो गई। युसुफ ने उसे परम सौंदर्य की ओर आकृष्ट किया जिबरील की आज्ञा से पाणिग्रहण संस्कार सूत्र में दोनों बंध जाते हैं।

अली मुराद—अली मुराद ने 'कथा कुंवरावत' की रचना की। इसमें एक कुंवर और अमर नगर के राजा इन्द्र की पुत्री फूलमती के प्रेम सम्बन्ध का वर्णन है। इसकी कथा दुःखांत है, क्योंकि राजकुंवर की मृत्यु हो जाने पर फूलमती और बासुमती दोनों पत्नियां सती हो गई हैं। अतः कवि ने आधोप्रान्त सूफी सिद्धान्तों का निरीक्षण करने का प्रयास किया है।

इस प्रकार सूफी कवियों की परम्परा के अन्तर्गत महान व सामान्य सभी कवियों का यथोचित अध्ययन कर लिया गया है। इसमें अनेक कवियों का उल्लेख बहुत कम मिलता है, लेकिन उनका भी अपना महत्व है, क्योंकि परम्परा को आगे बढ़ाने में उन कृतियों का भी सफल प्रयास रहा है। उस समय के समाज की इच्छा, आकांक्षा और उद्देश्य क्या थे, मानव मात्र प्रेम की ही लौ अपने हृदय में चलाना चाहता था और उसी के प्रकाश से अपने को प्रकाशित होने में धन्य मानता था। सूफी काव्यों में लौकिक प्रियतम के सहारे या माध्यम से परम प्रियतम की प्राप्ति होती है, प्रेमी कठिन से कठिन यातना सहनकर अपने उद्देश्य को नहीं भूलता यही उसका गौरव है, और प्रेम की उत्कृष्टता है। प्रेम के अभाव में मानव हड्डी और मांस के जींव पुतले के समान है, उसका जीवन एक रेगिस्तान है जो उनके सौन्दर्यात्मक

तत्वों से विहीन और शरणार्थी के लिए हानिकारक है। समस्त सूफी-कवियों की लोकदृष्टि बड़ी सजग थी। अपने आस-पास के विस्तृत वातावरण से कहीं अदृश्य को निराधार विस्तृत कल्पना इन कवियों ने नहीं की है। अपनी रचनाओं में भारतीय जीवन और संस्कृति का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है। प्रकृति चित्रण के अन्तर्गत षड्ऋतु एवं बारहमासे के वर्णन में भारतीय गृहस्थ जीवन की समस्याओं तथा भारतीय नारी का अपने पति से बिछड़ने पर ऋतुओं के साथ जो तादात्म होता है उसे बखूबी चित्रण किया है, नूरमुहम्मद ही ऐसे कवि हैं जिन्होंने आंख के लिए 'नरगिस' का उपमान अपनाया है। भारतीय सामाजिक जीवन के आनन्दोल्लास एवं मर्यादा के प्रतीक त्यौहारों, उत्सवों, सामाजिक रीतियों एवं संस्कारों का वर्णन भी इन प्रेमाख्यानों में यत्र-तत्र प्राप्त होता है। इनके प्रेम काव्यों से साहित्यिक विकास में योगदान मिला है। इनके लौकिक प्रेम-कथाओं में दिव्य प्रेम की झांकी है। जिसके कारण से रहस्यात्मकता से परिपूर्ण है। जीवात्मा ईश्वरीय अंश है एवं सम्पूर्ण विश्व में उसी की सुषमा व्याप्त है। गुरु से ईश्वर, जीव जगत का वास्तविक रूप जानकर जब मानव हृदय में ईश्वर प्रेम उद्दीप्त हो उठता है तब कठिन साधना के पश्चात् अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है।

———

तृतीय अध्याय

'हिन्दी सूफी काव्य और समन्वय की भावना'

समन्वय भावना के प्रेरक तत्व

प्रत्येक साहित्य के उद्‌बोधन हेतु कोई न कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रेरक शक्ति अवश्य होती है। प्रेरणा का मानव जीवन में विशद और सतत् अनिवार्य स्थान है। प्रेरणा मानव जीवन की वह चालक शक्ति है जो मनुष्य को अनेक सुख-दुःख भोगने पर अनेक निराशाओं के प्राप्त होने पर भी जीवन जीने को प्रोत्साहित करती है। ऐसे ही प्रत्येक साहित्य सृजन के पीछे एक उद्देश्य छिपा रहता है जो उस समय के मानव समुदाय की प्रेरणा हुआ करती है। मानव जिन भावनाओं से जीवन में सुख सन्तुष्टि पाना चाहता है वैसे ही साहित्य की आकांक्षा भी वह करता है। अस्तु साहित्य के प्रेरक तत्व तत्कालीन परिस्थितियों और देश में व्याप्त वातावरण के आधार पर होते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार 'जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है तब निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।'[1]

साहित्य सृजन की प्रक्रिया में जब समन्वय भावना जन्म लेती है तब उसके पीछे युगीन परिस्थितियां विशेष रूप से प्रेरक का कार्य करती हैं। युगद्रष्टा कवि सामाजिक परिवर्तनों का दृष्टिगत करते हुए सामाजिक आवश्यकता के अनुसार अपनी चिन्तनधारा को रूप देने का प्रयास करता है, क्योंकि कवि की सामान्य व्यक्ति से हटकर सौन्दर्य को देखता है तभी उसे समाज दृष्टा माना जाता है। हिन्दी साहित्य के समन्वयात्मक दृष्टि देश के परिस्थितिजन्य संघर्ष के परिणाम स्वरूप ही आई, इसे आचार्य शुक्ल ऐवं श्री गुलाबराय ने भी स्वीकारा है। शुक्ल के अनुसार 'अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति करुणा की ओर

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 3।

ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था, इसी प्रकार गुलाबराय जी का मत है—मनोवैज्ञानिक तत्व के अनुसार हार की मनोवृत्ति में दो बातें सम्भव है या तो अपनी आध्यात्मिक श्रेष्ठता दिखाना या भोगविलास में पड़कर हार को भूल जाना।

इस दृष्टि से स्पष्ट होता है कि सामाजिक परिवर्तन ही कवि को नई चेतना की ओर प्रेरित करते हैं। हिन्दी साहित्य के अविर्भावकाल में देश की राजनैतिक दशा बड़ी डावाडोल थी। हिन्दी साहित्य का प्रथम चरण वीरता प्रधान युग था परन्तु आपस में राजनैतिक विषमता के कारण एकता का सूत्र टूट चुका था। अवसर देखकर विदेशी यवनों ने आक्रमण शुरू किये तथा देश के इतिहास को बदलने के लिए तत्पर हो चुके। क्षत्रियों की युद्ध शक्ति क्षीण हो चुकी थी। इसमें मुसलमानों से लोहा लेने की शक्ति न थी। इस प्रकार यवनों के उत्तरी भारत पर अधिकार हो जाने से ऐतिहासिक परिवर्तन तो हुए ही साथ-साथ हिन्दू मुस्लिम दोनों की सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक विषमताओं से क्रान्ति की एक ज्वाला धधक उठी। जिसके फलस्वरूप जन समूह में आत्मरक्षा, जीवन रक्षा, धर्मरक्षा आदि के लिए त्राहि-त्राहि मच गई। इस प्रकार के असफलता और निराशा के वातावरण में जिस काव्य के प्रेरक तत्व का कार्य किया, वह था हिन्दी सूफी काव्य। डा० भगीरथ मिश्र ने काव्य को मानव जीवन की निराशा और असफलता की दशा में भी आशा का संचार करने वाला बताया है। सूफी काव्य ने भी हिन्दुओं को परस्पर सौदार्द्र का मार्ग दिखाया।'[2]

भारतीय धर्म साधना के क्षेत्र में भक्ति की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है वैदिक काल से लेकर सन्त साहित्य तक जो काव्यधारा प्रवाहित हुई उसमें क्रमशः परिवर्तन परिलक्षित होता रहा है चाहे वह जीवन के मापदण्ड रहे हो अथवा धार्मिक, इसे हम परिस्थितयों में परिवर्तन के परिणाम स्वरूप ही देखते हैं प्रत्येक युग के काव्य में मानवीय चेतना को सौन्दर्य से जोड़ने का प्रयास किया गया जिसमें कुछ पूर्वाग्रह था और कुछ तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप था इसी परिवर्तन को समय समय पर समन्वयात्मक दृष्टि के रूप में परिभाषित किया जाता है। समन्वयवादी कवि को विशेष रूप से जो तत्व प्रेरणा देते रहे हैं उनमें प्रमुख निम्न है—

(1) देश और काल।
(2) परिस्थिति और वातावरण।
(3) मनोवृत्ति।
(4) पूर्ववर्ती परम्परा।

---

2. काव्य शास्त्र, डा० भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन गोरखपुर।

देश और काल—भारत के सम्पूर्ण उत्तरी भारत में मुसलमानों का राज्य स्थापित था, और दक्षिण पर भी बराबर आक्रमण कर रहे थे। अब इनकी प्रवृत्ति केवल अधिकार की ही नहीं रही वरन् हिन्दू धरम का लोप करके मुसलमानी धर्म का प्रचार और प्रसार करना हो गई थी। हिन्दू जनता शक्तिहीन और असहाय हो गई थी, अत: विजयी मुसलमानों के म्यान से निकली रक्त पिपासा युक्त तलवार के समक्ष अपना धर्म त्यागने को बाध्य होती थी किन्तु राजस्थान के वीर राजपूत अपना गौरव सदैव स्मरण रखते थे और अवसर पाते ही मुसलमानों का सामना करने को मैदान में उतर आये थे, लेकिन यवनों से उन्हें पराजित होना पड़ता। जब मुसलमानों ने अपने धर्म का प्रचार करना ही अपना प्रमुख उद्देश्य बताया तो स्थिति और भी गम्भीर होती गई।

निराशा और निर्बलता के क्रोड में पलने के कारण हिन्दू जनता के समक्ष एकमात्र ईश्वर का ही आश्रय रह गया था, क्योंकि जब संसार के समस्त सुख सम्बन्ध विमुख होते हैं और मनुष्य पर आधि दैविक एवं आधिभौतिक कष्ट पड़ने लगते हैं तो वह आर्तस्वर में प्रभु को ही पुकारता है, ठीक यही स्थिति उस समय के हिन्दुओं की थी, क्योंकि मुसलमानों के अत्याचारों से त्रस्त असहाय हिन्दू वर्ग कर ही क्या सकता था, इसके साथ ही उनके धर्म पर कुठाराघात हो रहा था जो सहनशक्ति के बाहर की बात थी।

परिस्थिति और वातावरण—ईसा की दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मुसलमानों का भारत में आक्रमण सिन्ध प्रदेश में हुआ। इस्लामी राष्ट्र भावना का प्राबल्य तथा अरब साम्राज्य का विस्तार और इस्लाम धर्म का प्रचार इनका मुख्य उद्देश्य था। हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल लगभग 300 वर्षों की सुदीर्घकाल रहा और इस समय भारत की राजनीति में मुगलशासकों का आधिपत्य रहा। आदिकाल की समाप्ति के पश्चात् राजनैतिक अस्थिरता का अन्त नहीं हुआ। मुस्लिम शासकों का आतंक उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था तथा इस युग की सबसे बड़ी घटना मुसलमानों का हिन्दुओं पर अत्याचार रहा। 'मुस्लिम शासकों पर तत्कालीन मजहबी कट्टरपंथी काजियों का प्रभाव रहा। इन्हीं के आदेशों पर चलकर सर्व प्रथम फिरोज तुगलक ने मुस्लिमेत्तर होने के रूप में हिन्दुओं पर जजिया लगाया। इसी बादशाह ने बहुत से मन्दिर तोड़े और एक ब्राह्मण को अपने महल के सामने जीवित जला दिया।'[3]

उस युग के हिन्दुओं की आर्थिक विपन्नता दुर्भाग्य एवं अपमानित अवस्था का वर्णन करते हुए तारीख-ए-फिरोजशाही के लेखक वरनी ने लिखा है 'उन हिंदुओं

---

3. भारत का इतिहास-ईश्वरी प्रसाद पृष्ठ 165, सन् 1949।

के पास धन संचित करने के कोई साधन न रह गए थे उनमें से अधिकांश को निर्बलता अभावों एवं आजीवका के लिए निरन्तर संघर्ष में जीवन बिताना पड़ता था। प्रजा के रहन-सहन का स्तर बहुत निम्न कोटि का था। करों का सारा भार उन्हीं पर पड़ता था राजपद उनको अप्राप्त थे।[4]

जहाँ हिन्दुओं की ये दशा थी वहीं शासकों की स्थिति स्थिर कम थी। राजसिंहासन की लिप्सा ने अधिकतर शासकों को वास्तविक राज्याधिकारी की निर्मम हत्या के लिए विवश कर दिया। रजिया अलाउद्दीन तथा शाहजहां आदि मुस्लिम शासकों ने इसी प्रकार राज्य प्राप्त किया। इस भयंकर स्थिति में देश की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति क्या रही होगी इसका अनुमान सहज बोध्य है। इस स्थिति में हिन्दुओं पर अत्याचार हुए। यह कोई विशेष बात नहीं। आश्चर्यजनक घटना तो यह है कि इस अशान्त वातावरण में भी भक्ति सम्बन्धी साहित्य का निर्माण हुआ। डा० कृष्णलाल हंस का अभिमत है कि मुसलमानों के अत्याचार के परिणामस्वरूप ही हिन्दू भक्ति की ओर उन्मुख हुए 'हिन्दुओं की स्थिति भयावह हो गई थी। वह न मुसलमानों से लोहा ले सकते थे और न अपने धर्म पर होने वाले आक्रमणों की अपेक्षा कर सकते थे। उनकी इस स्थिति ने उन्हें ईश्वर भक्ति की ओर प्रवृत्त किया। उनके पास अपनी और अपने धर्म की रक्षा के लिए ईश्वर प्रार्थना ही एकमात्र उपाय था।[5]

यह आवश्यक नहीं है कि किसी काल की रचना पर राजनैतिक प्रभाव ही पड़े भक्तिकाल की रचनाओं के सन्दर्भ में समीक्षकों की इसी प्रकार के मतैक्य है— जैसे डा० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव का अभिमत कुछ इसी प्रकार है 'विषम से विषम परिस्थितियों में जूझ कर अपने को जीवित रखने की क्षमता है अतैव यह कहना बहुत उचित नहीं है कि भक्ति आन्दोलन इस्लाम धर्म की प्रक्रिया है अथवा मुसलमानी तलवार के आतंक से भयभीत होकर वैराश्य के काले बादलों में घिर-घिर कोई राह न पाकर अन्ततोगत्वा ईश्वर के चरणों में जाकर रक्षा के लिए आर्त्तपुकार का प्रतिफलन है क्योंकि सभी मुसलमान शासक कूमर और अन्यायी नहीं थे।'[6] कबीर और तुलसी वस्तुतः रामानन्द से प्रभावित है और जायसी के काव्य पर परम्परागत सूफी का प्रभाव है। सूर बल्लभाचार्य के अनुयाई हैं। इस प्रकार यद्यपि भक्ति कालीन साहित्य भौतिकता के प्रभाव से शून्य प्रतीत होता है लेकिन फिर भी राजनैतिक

---

4. भारतीय मध्ययुग का इतिहास ईश्वरीय प्रसाद पृष्ठ 510 सन्, 1955।
5. हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास-प्रथम संस्करण पृष्ठ 86-87।
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास डा० जगदीश प्रसाद श्री० हरेन्द्र प्रकाश सिन्हा, 1969।

वातावरण के अनुकूल इनकी रचनाओं में कहीं-कहीं कुछ उद्धरण बिखरे मिल जाते हैं। अतः इतना अवश्य है कि कवि चाहे निराआध्यात्मवादी क्यों न हो उसकी कविता में परिस्थित जन्य उथल-पुथल की छाप किसी न किसी रूप में आ ही जाती है और यही उसे समन्वयात्मक दृष्टि प्रदान करती है।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में जिन धर्म भावनाओं का उदय हुआ। उनके ज्ञान की प्रधानता और योग का चमत्कार ही प्रमुख रूप से निहित रहा था। सामान्य जनता तत्कालीन सिद्धों और योगियों की वाणियाँ सुनती और उनके चमत्कार देखकर आश्चर्यचकित हो जाती पर उनमें कोई ऐसी वस्तु न पाती जिसे अपने जीवन में उतार कर अपने धार्मिक पिपासा की तृप्ति कर पाती। धर्म के प्रति सामान्य जनता की भावना निरन्तर दबती चली जा रही थी। वज्रयानी, सिद्ध, कापालिका आदि देश के पूर्वी भाग में और नाथपंथी जोगी पश्चिमी भाग में जगते चले जा रहे थे। महाभारत तथा पुराणकाल के धर्म की धारा क्षीण दिखाई दे रही थी 'धर्म की भावात्मक अनुभूति या भक्ति जिसका सूत्रपात महाभारत काल में और विस्तृत प्रवर्तन पुराण काल में हुआ था। कभी कहीं दबती, कभी कहीं उभरती किसी प्रकार चली आ रही थी।'[7] सिद्धों और योगियों का कार्य जनता की आत्मकल्याण की ओर विमुख कर उन्हें सच्चे धर्म की ओर ले जाने के स्थान पर कर्म की ओर से विरत करना था, तथा जनता को शुभकार्यों के मार्ग से हटाकर मन्त्र-तन्त्र में उलझाने का था। 'सिद्धों और योगियों की वाणी सामान्य जनता की भगवत भक्त की ओर प्रवृत्त न कर तन्त्रमन्त्रों के जाल में उलझा रही थी।'[8]

इस प्रकार भक्तिकाल के पूर्व जो धार्मिक परिस्थितियाँ घिर गई थी। समय आते ही साहित्य पर अपना प्रभाव डालने लगी। सिद्धों और नाथों के सिद्धान्तों ने भक्ति युग के सन्तमत की धार्मिक पृष्ठभूमि का कार्य किया। संत मत पनपने का थोड़ा बहुत उत्तरदायित्व इन सब सिद्धान्तों का भी है सिद्धों और नाथों का प्रभाव सामान्य जनता तक सीमित रहा देश के शास्त्रज्ञ विद्वानों पर उनका कोई प्रभाव न पड़ा वह अभी भी शास्त्रीय निरूपण और वेदान्त की चर्चा में प्रवृत थे। 'शास्त्रज्ञ विद्वानों पर सिद्धों और योगियों की बानियों का कोई असर न था वह इधर-उधर पड़े अपना कार्य करते जा रहे थे। पण्डितों के शास्त्रार्थ भी होते थे। दार्शनिक खण्डन-मण्डन के ग्रन्थ भी लिखे जाते थे विशेष चर्चा वेदान्त की थी।'[9]

दक्षिण भारत के जिन धर्माचार्यों द्वारा ग्यारहवीं से पन्द्रहवीं शताब्दी तक उत्तर भारत में विभिन्न धर्म धाराओं की प्रतिष्ठा हुई उसमें हिन्दू और मुसलमान

---

7. हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 64।
8. हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास-संस्करण 1974 पृष्ठ 89।
9. हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ 64।

दोनों के लिए समान धर्म की प्रतिष्ठा करने से बड़ी सहायता मिली, रामानुजाचार्य विष्णु स्वामी, निम्बकाचार्य द्वारा प्रवृत्ति धारायें तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक स्थिति ने उस युग की भारतीय जनता को बहुत प्रभावित किया। रामानन्द ने इस भक्ति परम्परा को और आगे बढ़ाया इन धर्माचार्यों की विचार धाराओं से प्रभावित होकर सामान्य जनता पर लौकिक आनन्द की दिशा में प्रवृत हुई। इस आनन्द में निर्गुण और सगुण दोनों प्रकार की भक्ति का माधुर्य निहित था।

इस प्रकार हम देखते हैं बौद्धधर्म की परिस्थिति तथा वैष्णव धर्म की परम्परागत स्थितियों ने ही मध्ययुगीन भक्तिकाल के लिए पृष्ठभूमि तैयार की। इसके अतिरिक्त एक तीसरी विदेशी धार्मिक परिस्थिति ने भी भारत में स्थान बनाया। जिसे सूफी धर्म कहते हैं। मुस्लिम शासकों की विजय ने इस देश में जिन दो संस्कृतियों के संघर्ष में उत्पन्न स्थिति निर्गुणपंथ के उद्‌भव और विकास में सहायक हुई। जहां सूफी भारतीय अद्वैतवाद (एकेश्वरवाद) से प्रभावित हुये वहीं पर उन्होंने भी अपने प्रेम का प्रभाव भक्ति कवियों पर डाला 'संत साहित्य पर सूफियों के प्रेम की मादकता का भी निश्चित रूप से प्रभाव पड़ा।'[10] इससे स्पष्ट है कि तत्कालीन धार्मिक परिस्थिति ने सूफी कवियों को जिस रूप में प्रभावित किया वही उनकी समन्वयात्मक दृष्टि की पृष्ठभूमि बनी।

13वीं शताब्दी में जब एक-एक करके हिन्दू राज्यों का पतन होता गया तो उनमें पुर्नजागरण और पुर्नरुथान की भावना का आना स्वाभाविक था इस पुर्नरुथान से 14वीं और 15वीं शताब्दी में जो हिन्दू और मुसलमान राज्य पुनः उठे तो उनके सामने दृढ़ राज्य स्थापित करना ध्येय बन गया था। परिणामस्वरूप हिन्दू और मुसलमानों के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आदान प्रदान हुआ। यद्यपि हिन्दुओं में जाति पांति के बन्धन कठोर थे लेकिन फिर भी उनमें आपस के विवाह सम्बन्धों के उदाहरण मिलने लगे थे 'कश्मीर के सुल्तान शाहमीर की लड़कियों का विवाह हिन्दू सामन्तों और उनके पुत्र अल्लेशर का विवाह हिन्दू सेनापति की लड़की से हुआ। लड़की पति का धर्म स्वीकार कर लेती थी।'[11] ये स्वाभाविक है कि जब मुसलमान शासक अपनी जड़ें भारत भूमि पर जमा चुके तब शासकों की कृपा दृष्टि प्राप्त करने हेतु जीवन में विकास उन्नति एवं सम्पन्नता के लिए हिन्दुओं ने मुसलमान धर्म स्वीकार कर लिया हो। क्योंकि ऐसे उदाहरण मिलने लगे थे कि एक ही परिवार के कुछ व्यक्ति मुसलमान बन जाते थे शेष हिन्दू रहते थे। परिणाम स्वरूप हिन्दुओं में संकुचित वृत्ति ने जन्म लेना प्रारम्भ किया और छुआछूत तथा

---

10. हिन्दी साहित्य का युग और प्रवृत्तियां—डा० शिव कुमार शर्मा, पृ० 114।
11. हिन्दी साहित्य का इतिहास—डा० जगदीश एवं हरेन्द्र प्रकाश, पृष्ठ 80।

जाति-पांति की कठोरता दृढ़ हो गई विवाह और खान-पान के नियम जटिल हो गये और हिन्दू समाज अपने संकुचित क्षेत्र में सिमट कर रोटी-बेटी का सम्बन्ध रखने लगा।

जाति और खानपान की संकीर्णता से पूर्ण हिन्दुओं ने भले ही इस काल में अपने रक्त आचार और धर्म की रक्षा कर ली हो, लेकिन संकुचित वृत्ति ने उनके अन्दर ही ऊंच नीच और छुआछूत की भावना को प्रबल और दृढ़ कर दिया जिससे आपस में मनोमालिन्य और पारस्परिक घृणा विद्वेष भावना प्रबल हो उठी। नीची जातियों में ऊंची जातियों के प्रति असंतोष विरोध विद्रोह और विद्वेष की भावना बढ़ी। इसी प्रकार के अन्तर मुसलमानी धर्म में भी परिलक्षित होने लगे थे। तुर्क और मुगल जो कि शासक वर्ग से सम्बन्धित थे भारतीय मुसलमानों की अपेक्षा अपने को उच्चतर समझने लगे और उनमें सिया सुन्नी का भेदभाव प्रारम्भ हुआ लेकिन धार्मिक दृष्टि से एक ही धर्म होने के कारण मुसलमानों में जो समानता थी वह हिन्दुओं में नहीं थी हिंदुओं में शूद्र, वर्ण में जन्म ग्रहण करने के कारण भक्त नामदेव को एक देव मन्दिर से निकाल दिया गया था उन्होंने अपने अपमान का उल्लेख इस प्रकार किया—

हंसत खेलत तेरे देहुरे आया।
भक्ति करत नामा पकरि उठाया॥
हीनणी जाति मेरी जादमर आया।
क्षीपे के जनम काहे को आया॥[12]

यह छुआछूत के नियम इतने कठोर थे कि इन्होंने शूद्र जातियों में भी वैमनस्य और भेदभाव उत्पन्न कर दिया। परिणामस्वरूप सामान्य जनता की स्थिति बड़ी दयनीय हो गई। इसी समय हिन्दुओं में अन्य सामाजिक बुराइयों ने भी जन्म लिया। परदा प्रथा का प्रवेश हुआ तथा साथ ही साथ नैतिक दृष्टि से पतन विलासिता और ऐश्वर्य की लालसा ने भी जन्म लिया और हिन्दू जनता अन्धविश्वासों और विलासिता में डूब गई।

यद्यपि हिन्दू और मुसलमानों के बीच शासक और शासित का अन्तर था किन्तु पास-पड़ोस में रहते-रहते वे एक-दूसरे के समीप आने लगे थे, उदार होने लगे थे जिससे तत्कालीन वास्तुकला, चित्रकला, धर्म काव्य संस्कृति के क्षेत्र में विचारों का आदान-प्रदान होने लगा। सामान्य जनता की भावना जागी और दोनों घुलमिल कर एक नवीन कला शैली को जन्म दे रहे थे। साहित्य के क्षेत्र में कबीर, दादू और

---

12. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय—डा० भगीरथ मिश्र—प्रथम संस्करण।

सूफी कवि हिन्दू-मुसलमान की धार्मिक भावना के समन्वय और एकता के सूत्र खोजने लगे थे। इस तरह सामाजिक परिस्थिति ने भी समन्वयवादी दृष्टिकोण को प्रेरित किया।

धार्मिक परिस्थिति में हम यह देख चुके हैं कि किस प्रकार विभिन्न धर्माचार्यों ने भारतीय भाव भूमि में धर्म का प्रचार और धार्मिक साधना प्रारम्भ की जिसके परिणामस्वरूप नष्ट होती हुई सांस्कृतिक विरासत में प्राण संचरित होते हुए दिखाई पड़ने लगे। भक्ति आन्दोलन दूर-दूर तक फैला, और यह जन आन्दोलन बन गया। इसने लोगों को गहरे रूप से प्रभावित किया। सम्भवत: बौद्ध धर्म के पतन के पश्चात् भक्ति आन्दोलन जैसा देश व्यापी जन आन्दोलन हमारे देश में दूसरा नहीं हुआ। यद्यपि इसके प्रेम भक्ति और एकेश्वर के आधारभूत सिद्धान्त मुख्य रूप से शुद्ध हिन्दू थे फिर इस्लाम की विचारधारा और रीति-रिवाजों के कट्टर आलोचक थे इसलिए हिन्दू समाज के मध्ययुगीन धार्मिक विचारकों एवं सुधारकों के लिए युग की स्थिति वातावरण और भागों की ओर ध्यान देना स्वाभाविक था। इस भक्ति आन्दोलन के मुख्य दो उद्देश्य थे एक तो हिन्दू धर्म में सुधार करना था जिससे कि वह इस्लामी प्रचार और प्रसार के आक्रमणों को झेल सके और दूसरा यह कि हिन्दू धर्म और इस्लाम एक-दूसरे के समीप आये जिससे हिन्दू और मुसलमानों के बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो सके। यह धार्मिक आन्दोलन अपने प्रथम उद्देश्य में उपासना की विधि सरल करके परम्परागत जाति के नियमों को उदार बना करके सफलता पायी जिससे हिन्दुओं में उच्च और निम्न कोटि के लोगों ने अपने बहुत से दुराग्रह त्याग दिए और वह भक्ति सम्प्रदाय के सन्तों के इस इस संदेश को मानने लगे, कि ईश्वर की दृष्टि में सभी मनुष्य समान है, जन्म से कोई अयोग्य नहीं होता लेकिन ये आन्दोलन हिन्दू मुस्लिम एकता स्थापित करने के अपने दूसरे लक्ष्य में असफल रहा। मुस्लिम जनता ने राम सीता या राधाकृष्ण के भक्ति सम्प्रदाय को नहीं अपनाया उन्होंने यह भी स्वीकार नहीं किया कि राम रहीम, ईश्वर, अल्लाह एक ईश्वर के विभिन्न नाम हैं। लेकिन इस आन्दोलन से इतना अवश्य हुआ कि भारतीय संस्कृति का जिस प्रकार प्रचार और प्रसार हुआ उससे मुसलमान परिचित हुए और उदारवादी मुसलमानों को उसने किसी न किसी रूप में प्रभावित किया इसी के साथ जो धर्माचार्यों में व्यापकता आई उसके परिणामस्वरूप कुछ इस्लामिक प्रवृत्तियों ने भी हमारे संतों को प्रभावित किया। हिन्दू और मुसलमानों के बीच में जो निकटता उस समय आयी उसके परिणामस्वरूप सूफी कवियों को प्रशस्त मार्ग मिला और उन्होंने हमारी धरती पर हमारी सांस्कृतिक विरासत को अपने काव्य में समायोजित करने का प्रयास प्रारम्भ कर दिया जिससे दोनों संस्कृतियों में एक समन्वयात्मक रूप का जन्म हुआ।

कोई भी राज्य अपने प्रभुत्व स्थापन के लिए सर्वप्रथम वहां की संस्कृति व धर्म को नष्ट कर जनता की अन्तरात्मा की आवाज को बदलना चाहता है । क्योंकि जब तक विचारों में परिवर्तन नहीं होगा, तब तक नींव कमजोर ही रहती है, भारत में मुसलमानी प्रभाव से दो ही धर्म शेष रह गये थे—एक राजधर्म (इस्लाम) और दूसरा लोकधर्म (हिन्दू धर्म) इसी समय पारसी धर्म का प्रभाव भी भारतोय धर्म पर विशेष रूप से पड़ रहा था । बहुत से मुसलमान अपने इस्लाम धर्म के प्रचार में लगे हुए थे । संत कबीर का आविर्भाव ऐसी ही विपन्नावस्था में हुआ, अत: उन्होंने हिन्दू मुस्लिम धार्मिक वेमनस्य को दूर करके दोनों में समन्वय पैदा करने के लिए बीच का रास्ता खोज निकाला । कबीर ने ऐसा धार्मिक सामंजस्य स्थापित किया, जिसके फलस्वरूप हिन्दुओं ने नि:संकोच मुसलमानों को निर्गुण भावना को मान लिया और मुसलमानों नें भी हिन्दुओं के धार्मिक सिद्धान्तों को खुशी-खुशी अपना लिया, इतिहास भी इसी बात की पुष्टि करता है कि जब-जब धर्म पर आपत्तियां आती हैं और समाज धर्म के वास्तविक रूप को भुला बैंठता है तभी-तभी संत महात्मा तथा कवियों का जन्म होता है । सनातन सत्यों को समयानुकूल रूप देना तथा उन सत्यों को प्राचीन जर्जर नियमों के क्लेवर से निकाल कर अपने समय की परिस्थितियों के नीनव कलेवर पहनाना संतों और कवियों का ही जीवन कार्य है जो कि कबीर, जायसी तथा अन्य सूफी कवियों ने किया है इसी समय दक्षिण में धर्माचार्यों (रामानुजाचार्य व मध्वाचार्य) का जन्म हुआ और उनके उद्देश्यों से हिन्दू जनता को पुन: संजीवनी बूटी मिली । इन धर्माचार्यों की परम्परा सगुणमार्गीय थी, मानव का सरल हृदय ईश्वर के साकार रूप को स्वीकारने को सिहर उठा, उसे जैसे तिनके का सहारा मिल गया । जनता का हृदय युद्ध की विषम परिस्थितियों का सामना करते-करते शुष्क और नीरस हो गया था । कबीर की निर्गुणोपासना पद्धति भी जनमानस को सरस बनाने में असमर्थ रही । ऐसे काल में नीरसता को मिटाकर सरसता लाने का कार्य सूफी भक्तों ने प्रारम्भ किया । 14वीं शताब्दी में निजामुद्दीन औलिया ने बंगाल में अपना धर्म फैलाया । इसके एक शिष्य हुसेनशाह ने 'सतवीर' नामक मत चलाया जिसका उद्देश्य हिन्दू और मुसलमान दोनों को धार्मिक एकता के सूत्र में बांधना था । इस मत का जन्म हिन्दुओं के सत् और मुसलमानों के पीर को मिलाकर हुआ । इस प्रकार स्पष्ट है कि जनता की आर्न्तता केवल दोनों को एक रूप में देखकर अपने को वलिष्ठ बनाना चाहती थी, क्योंकि परस्पर दु:ख एवं कष्टों ने एकता में ही बल है इसका विश्वास दिलाया ।

मुसलमानों के भारत में प्रवेश करने से उनके रीति-रिवाजों व परम्पराओं में देश की सामाजिक स्थिति में बड़ी विषमता आ गई थी । इस विषम परिस्थिति में जनता के सामने संघर्ष की अगवानी होने लगी, क्योंकि जनता दोराहे पर खड़ी अपना मार्ग खोज रही थी, अत: वह स्थिति साम्य की, दोनों ही मार्ग उसे उचित प्रतीत

होते थे। जब देश में राजनैतिक एवं धार्मिक दुर्व्यवस्था थी तो उसका सामाजिक संगठन का विकृत होना आवश्यक था, क्योंकि सभी क्रियायें समाज में ही तथा समाज के द्वारा ही परिचालित होती हैं। प्रत्येक समाज का बाह्य रूप ही उसके अन्तरमन के भावों का द्योतक होता है। यही कारण है कि समाज के नियम व बंधन समयानुसार आवश्यकता पड़ने पर बदले व तोड़े भी जाते हैं। उदाहरण के लिए जिस भारत भूमि पर अनेक सन्त-महात्माओं ने अवतार लेकर पृथ्वी को संकट तथा पापों के मुख से निकाला, वही अनेक समाज सुधारकों ने भी विछिन्न एवं विनिष्ट समाज को नवीन रूप में सजाकर उसके आकर्षक रूप को व्यक्त किया। ऐसे ही समय में कबीर ने समाज सुधारक के रूप में जन्म लेकर समाज को एक नई किरण दी, जो उस समय की सच्ची पुकार थी, क्योंकि उस समय बाह्य परिस्थितियों तथा धर्म के नियमों में मेल न होने के कारण ही हिन्दू और मुसलमान आपस में द्वेष की भावना रखते थे। उन्होंने देखा कि हिन्दू मन्दिर में पूर्व की ओर मुंह करके पूजा करते हैं और मुसलमान मस्जिद में पश्चिम की ओर मुंह करके इबादत करते हैं। इसके अतिरिक्त और भी सामाजिक कुरीतियां फैली थीं जो हिन्दू अपनी पाखंडता का ढोंग रचते थे वही वैश्यागामी पाए जाते थे और मुसलमान आपस में ही शादी-विवाह करते थे, जिसका कबीर ने खुलकर विरोध किया और उसकी निरर्थकता स्पष्ट कीं।

इतना होने पर भी हिन्दू समाज व संस्कृति की जड़ें बहुत मजबूत एवं उदार थीं। क्योंकि उसका आधार वेद है जो कि अनादि एवं अखंड है, हिन्दू समाज का विभाजन भी वैदिक धर्माधार है, इसीलिए उसमें कोई थोथी त्रुटियाँ सरलता से नहीं मिलती। धर्म संस्कृति तथा शिक्षा की स्थिति भी अत्यन्त शोचनीय थी। समाज की नैया ऐसी भयंकर भंवरों के बीच फंसी हुई थी कि उसका अस्तित्व निष्प्राण होकर काल के गाल में जाने को ही था कि ऐसी ही विषम परिस्थितियों मध्य सूफी-कवियों का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने प्रेम के बीज से इन विषम परिस्थितियों पर अधिकार पा लिया। सूफियों का जीवन दर्शन ही प्रेम पर आधारित था, उनका धर्म एवं ईश्वर का सम्बन्ध आशिक और माशूक का था, जो कि उस जटिल अग्नि सी लपटों से धधकते क्षण में शरद पूर्ण का कार्य कर सकता था।

मनोवृत्ति—हिन्दी सूफी काव्य में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच पनप रही वैमनस्यता की मनोवृत्ति के स्थान पर इन दो भिन्न धर्मावलम्बियों के परस्पर सौहार्द्र से युक्त एक नयी समन्वयवादी मनोवृत्ति जाग्रत थी। एक लम्बे काल तक साथ-साथ रहने के कारण हिन्दू और मुसलमान यह तो अनुभव करते थे कि उन्हें सच्चे दिल से एक दूसरे के अस्तित्व को स्वीकार लेना चाहिये। वे यह भी अनुभव करते थे कि एक दूसरे को धर्म और जीवन पद्धति को हेय सिद्ध करने की मनोवृत्ति को त्यागना एक ऐतिहासिक अनिवार्यता बन चुकी थी। इसका मार्ग प्रशस्त किया था

कबीरदास ने जिन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों की अतिवादिता पर करारी चोट की।

चैतन्य महाप्रभु, बल्लभाचार्य और रामानन्द के प्रभाव से प्रेम-प्रधान वैष्णव धर्म का प्रवाह बंग देश से लेकर गुजरात तक वहां, उसका सबसे अधिक विरोध शाक्त मत और वाम मार्ग के साथ दिखायी पड़ा। शाक्त मत-विहित पशुहिंसा तन्त्र-मन्त्र तथा यक्षिणी आदि की पूजा वेद विरुद्ध अनाचार के रूप में समझी जाने लगी। हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच साधुता का समान्य आदर्श प्रतिष्ठित हो गया था। बहुत से मुसलमान फकीर भी अहिंसा का सिद्धांत स्वीकार करके मांस भक्षण को बुरा कहने लगे थे।[13]

एक ऐसी सामाजिक मनोवृत्ति की आधार भूमि तैयार हो रही थी जिसमें हिन्दू और मुसलमान मनुष्यता के सामान्य प्रवाह में एक दूसरे के सामने अपना दिल खोल रहे थे। इस काल की समाजिक मनोवृत्ति भेद से अभेद की तरफ प्रवृत्ति थी। मुसलमान रामकथा जानने और सुनने लगे थे और हिन्दू दास्तान हमजा। इसके साथ ही साथ हिन्दुओं का भगवत् प्रेम और मुसलमानों का इश्क हकीकी एक दूसरे तक व्याप्त होने लगा था। इसी समय हिन्दुओं के घर की प्रेम के पीर की कहानियां लेकर फारसी अन्दाज में अपना काव्य लेकर कुछ भावुक मुसलमान आगे आये। इन कवियों ने वह सन्देश दिया कि मनुष्य के हृदय से सम्बन्ध होता है जिसके कारण धीरे-धीरे जनमानस की मनोवृत्ति का आधार वैमनस्य के स्थान पर एकत्व बन गया।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है—जो काम कबीर की डाट और फटकार नहीं कर सकी वह सूफी कवियों के प्रेम ने कर दिखाया। कुतुबन, अजायनी आदि सूफी कवियों ने यह सिद्ध किया कि चाहे जिस धर्म का व्यक्ति हो उसके हृदय में प्रेम की तरगं, विरह की व्याकुलता, सुख और दुख की अनुभूति एक ही जैसे कारणों से होती है। फिर वैमनस्यता की मनोवृत्ति कितनी व्यर्थ और कष्ट उपजाने वाली है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उचित ही कहा था कि अपनी कहानियों द्वारा इन्होंने प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए उन सामान्य जीवन दशाओं को सामने रखा जिनका मनुष्य मात्र के हृदय पर एक-सा प्रभाव दिखाई पड़ता है। हिन्दू हृदय और मुसलमान हृदय आमने-सामने करके अजनवीपन मिटाने वालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा। इन्होंने मुसलमान होकर हिन्दुओं की कहानियां, हिन्दुओं की ही बोली में पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया। कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुई

---

13. जायसी ग्रन्थावली, रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 1।

परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी थी।[14] वह सूफी कवियों द्वारा पूरी हुई।

देशकाल और परिस्थिति के योग के साथ-साथ कवि की मनोवृत्ति का भी प्रमुख हाथ काव्य में होता है। कवि जिस मनोवृत्ति का होगा वैसे ही अपने साहित्य में समन्वयात्मक दृष्टिकोण को अपनायेगा यथा वीरगाथाकालीन कवियों की मनोवृत्ति युद्धात्मक थी। अतः उनके काव्य में अधिकांशतया वीरता की भावनाओं को व्यक्त किया। इनकी मनोवृत्ति में चूंकि सुधारात्मक होने के साथ-साथ आध्यात्म विरह प्रेम व सौन्दर्य के भावों को व्यंजित किया गया।

सूफियों का विरह विप्रलम्भ रूप में है, विरह से आप्लावित काव्य में, मिलन के छींटे यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं। क्योंकि सूफी कवि स्वयं परमात्मा के विरही रहे। जायसी ने अपने आध्यात्म विरह का वर्णन करते हुए बताया है कि परमात्मा के विरह में जलते रहने के कारण शरीर में न तो रक्त रह गया है और न मांस, जो मुझे जैसे विरही का मुख देखता है, उसे हंसी आ जाती है किन्तु जब वह मेरा उस विरह व्यथा को सुनता है तो उसके नेत्रों से आंसू प्रवाहित होने लगते हैं।[15] वस्तुतः ईश्वर का विरह सूफियों की प्रेम-साधना का प्रथम सोपान है—

'नैन विरह अंजन जिन सारा
विरह रूप दर्शन संतारा ॥'

जिनके हृदय में यह विरह होता है उसके लिये यह संसार स्वच्छ दर्पण हो जाता है। इसमें परमात्मा का आभास अनेक रूपों में पड़ता और तब वह देखता है कि सृष्टि के समस्त रूप समस्त व्यापार उसी का विरह प्रकट कर रहे हैं।

सूफी कवियों की मनोवृत्ति का एक पहलू प्रेम परक भी है। 'उनकी मान्यता है कि मनुष्य प्रेम के द्वारा ही स्वर्ग के योग्य बना है। अन्यथा वह केवल एक मुट्ठी राख है। सूफीमत ब्रह्याचार के विरुद्ध ईश्वर को प्रियतम के प्रति उदबुद्ध हुई नैसर्गिक अनुरक्ति का परिणाम था, अतः सूफियों की सम्पूर्ण साधना प्रेम पर आश्रित है। उन्होंने ईश्वर को प्रियतम के रूप में माना, उनके लिए वह अमूर्त होता हुआ भी मूर्तिमान सौन्दर्य है, माधुर्य लोक का शासक है और प्रेम का प्रचारक है। वह प्रणय-पात्र बनकर केवल प्रियतम बनने का ही अधिकारी नहीं वरन् वह स्वयं भी प्रेमी के लिये तड़पने वाला है, इस प्रकार सूफियों में ईश्वर और जीव की अभिन्नता है। जीव ईश्वर का ही अंश है। अतः वही प्रेमी है और वही प्रियतम। प्रेमी कवि वरकतुल्ला ने कहा है कि वही ईश्वर कहीं प्रेमी और कहीं प्रियतम तथा कहीं स्वयं प्रेम है—

14. जायसी ग्रन्थावली, रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 2।
15. कैन्ट्रील्यूशन टू हिन्दी लिट्रेचर, पृष्ठ 133।

'कहीं माशूक कर जाना, कहीं आशिकसितां माना।
कहीं खुद इश्क ठहराना, सुनों लोगों सुखावानी ।।

किन्तु सूफियों की यह मान्यता मुस्लिम-धर्म के विरुद्ध थी क्योंकि कुरान में प्रतिपादित ईश्वर का रूप निर्गुण था कुरान के मतानुसार ईश्वर आराध्य है—उपास्य है, फिर भला वह माशूक 'प्रियतम कैसे हो सकता है ?' जो शासक है वह प्रेमी के लिये कैसे तड़प सकता है ? जो स्वयं सर्वोपरि है, सम्पूर्ण चराचर विश्व भाव रूप में जिसकी इच्छा मात्र का फल है भला वह जीव आत्मा से एक रूप कैसे हो सकता है ?

पूर्ववर्ती परम्परा—किसी देश का साहित्य जहां उस देश की प्राकृतिक, सामाजिक तथा धार्मिक राजनीतिक परस्थितियों से प्रभावित होता है वहीं अपने पूर्व की साहित्यिक परम्पराओं से प्रेरणा लेता है। वैदिक साहित्य में समन्वय की भावना के दर्शन हमें सर्वप्रथम होते हैं ऋग्वेद के अनुसार प्रकाश के रूप में वह आकाश में स्थिति है, वायु के रूप में अन्तरिक्ष में रहता है अग्नि के रूप में यज्ञ में रहता है, अतिथि के रूप में गृह में निवास करता है और ऋतु के रूप में सर्वत्र व्याप्त है, वह यज्ञों आकाश, जल, प्रकाश, पर्वतों और सत्य के रूप में प्रकाशित होता है।'[16]

आगे चलकर उपनिषदों में भी समन्वय के रूप मिलते है इनमें पहले पहल सगुण ओर निर्गुण का समन्वय किया गया। जब ब्रह्म सर्वतय और सर्वरूप है तब उसे किसी एक रूप या नाम में बांधा नहीं जा सकता। न वहां चन्द्र प्रकाशित होता है न सूर्य, न तारे न बिजली चमकती है, उसी के प्रकाश से सब प्रकाशित हैं।[17] उपनिषदों में इन दोनों रूपों का समन्वय करते कहा गया है कि इस ब्रह्म की दो रूप हैं एक निर्गुण और दूसरा गुणों का होता है निर्गुण रूप में न वह सत् है न असत्। न उसका कोई माप है न उसकी कोई तौल है, न भीतर है न बाहर है।[18] इसी तरह सृष्टि की रचना और लय के सम्बंध में अनेक प्रकार के वर्णन उपनिषदों में मिलते हैं वह विश्व का निमित्त और उपादान दोनों कारण है उसने इच्छा की कि मैं एक से बहुत हो जाऊं, सृजन करके वह उसमें प्रविष्ट हो गया और स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों बन गया।[19] मनुष्य का चरम उद्देश्य मरण के बाद ब्रह्मलोक की प्राप्ति है जीवन काल

---

16. विश्वतश्चसुस्त विश्वतों मुखों।
    विश्वतो बाहुरूत विश्वतस्तयात्।
    संवाहुम्यां धमति संपतत्रै।
    दयावापृथिवी जनमन्देय एकः (ऋग्वेद-10-81-2)।
17. कठोपनिषद (7-5-17)।
18. ब्रहदा० ण्यकोपनिषद (3-8-8)।
19. तैतरीययोपनिषद (12-6)।

में भी मनुष्य ब्रह्लीन हो सकता है। ब्रह्म के सिवा और कुछ न होने के कारण वह ब्रह्मलीन हो जाता है जो मनुष्य उस ब्रह्म को जानता है वह ब्रह्ममय ही हो जाता है उसी को जानकर मनुष्य मृत्यु से पार हो जाता है और कोई दूसरा पथ नहीं है।[20]

समन्वय की यह प्रवृत्ति निरन्तर आगे बढ़ती गई और पुराणों में इस प्रवृत्ति को विशेष स्थान मिला। समन्वय की दृष्टि से गीता का महत्व विशेष रूप से रहा। इसमें प्रवृत्ति और निवृत्ति नामक दो भागों के साथ कर्म, ज्ञान और उपासना इन तीनों का समन्वय, उपनिषदों में हमें ज्ञानयोग और कर्मयोग दोनों की परम्परायें मिलती हैं उन्हीं को गीता में महत्व दिया गया। गीता ने वेदान्त के सूत्र को ग्रहण कर उसे ज्ञान कर्म तथा भक्ति शांत तथा योग चिन्तन तथा जीवन के मूलाधार पर स्थापित करके जीवन को वास्तविक आधार प्रदान किया। भक्ति भावना से प्रेरित, ज्ञानंद्ध में न पड़े हुए निष्कर्ष की श्रेष्ठता का प्रतिपादन' गीता की भारतीय नहीं अपितु संसार के तत्वज्ञान को विशेष और अनूठी देन है।

आचार्यों ने भी समन्वय की भावना को आगे बढ़ाने में अपना सहयोग प्रदान किया। चूंकि शंकराचार्य ने 'एकमेवा-द्वितीयं ब्रह्म नेह नानाल्ति किंचन, अर्थात् परब्रह्म के अतिरिक्त दूसरा कुछ सत्य नहीं है। आचार्यों में मुख्य रूप से गीता, भागवत, उपनिषद और वेदान्तों का प्रभाव ज्यादा है। रामानुज का विशिष्टाद्वैत ईश्वर के अद्वैत तथा एकत्व को स्वीकार करता हुआ संसार में द्वैत और विभिन्नता को भी स्थान देता है। ईश्वर केवल निर्गुण नहीं, वह सगुण भी है। संसार माया और असत्य नहीं वरन् एक सत्य घटना है। सृष्टि अव्यक्त ईश्वर काव्यगत विकास है। प्रलय में जीव और विश्व दोनों ही ईश्वर में लीन हो जाते हैं। रामानुज ने गुरु को शिष्य का प्रकाशक माना है। प्रपत्ति और गुरु पूजा ही उनके दो प्रमुख सिद्धांत है, जैसा गीता में कहा गया है। सम्पूर्ण रूप से ईश्वर शरणागति ही प्राप्ति का अर्थ है।[21] मध्वाचार्य और बल्लभाचार्य जी ने ब्रह्मसूत्र, गीता और उपनिषदों को ही अपना आधार माना। शंकर, रामानुज और मध्वाचार्य का मतैक्य है कि ब्रह्म व्यापक और शाश्वत है, वही सृष्टि का निमित्त कारण भी है। कर्म को चित्त-शुद्धि का साधन माना है, ज्ञान में भक्ति और भक्ति में ज्ञान का समावेश मानते हैं। आचार्यों की इस समन्वय की परम्परा का प्रभाव हिन्दी साहित्य को निर्गुण धारा के सन्तों में परिलक्षित होता है। अतः स्वाभाविक है कि आचार्यों के इस समन्वयवादी प्रवृत्ति का प्रभाव सूफियों पर पड़ता।

---

20. कंठोपनिषद-(6-15)।
21. तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत-गीता।

बौद्ध-धर्म की प्रतिक्रिया स्वरूप भारतीय समाज में समन्वयात्मक दृष्टि ने जन्म लिया था। बुद्ध जी की साधना का मार्ग अष्टांगिक मार्ग था जिसमें सम्यक् साधना का उपदेश था। जाति-पांति, ऊंच-नीच गति भेद-भावों के प्रति पहली क्रांति वहीं से प्रारम्भ हुई, बौद्ध धर्म के विकास में उसके विभिन्न संघ स्थापित हुए जिनमें योग, मन्त्र-तन्त्र को स्थान मिला। बौद्ध-धर्म के विरुद्ध जो विद्रोह हुए उसमें तन्त्र की शिक्षायें धर्म के प्रतिकूल होने के कारण बुद्ध के भक्तों में उसके प्रति घृणा के भाव पैदा हो गए जिसके परिणामस्वरूप वज्रयान का प्रभाव बढ़ा। इस प्रकार वैदिक-धर्म और बौद्ध-धर्म आदान-प्रदान की प्रक्रियायें बराबर चलती रहीं—'वैदिक-धर्म और बौद्ध-धर्म में आदान-प्रदान चलता गया और एक दूसरे के देवी-देवताओं, तन्त्र-मन्त्रों और साधनाओं का समन्वय होता गया। वज्रयान के केवल योग की ही क्रियाओं को सम्मिलित नहीं किया किन्तु मन्त्रों की नियमित पद्धति भी प्रचलित की।'

बौद्धों की वज्रयान शाखा आगे चलकर सिद्धों और नाथों की वाणियों द्वारा विकसित हुई। उन्होंने हठयोग की कई नवीन पद्धतियों का प्रचार किया। सहजयान और मन्त्रयान इन्हीं का विकसित रूप है। इस साधना का प्रभाव भी सन्त कवियों में परिलक्षित होता है। इसलिए यह सहज ही है कि सूफी इनकी पद्धतियों से प्रभावित होते और वह हुए भी।

हिन्दी साहित्य में सन्तों ने जिस प्रेम संध्या पूजा विहीन भक्ति, तीर्थ, व्रत आदि के शून्य धर्म भावना, शस्त्रोंक्त कर्मों से ऊपर उठी हुई जिस नैतिकता का सन्देश दिया वह परमार्थिक सत्य होते हुए भी केवल कतिपय ज्ञानी व्यक्तियों के लिए सुबोध थी। जनजीवन की स्थिति निरालम्ब भटकने जैसे थी। यही कारण है कि समन्वयवाद के जिस कार्य का सूत्रपात्र हिन्दी क्षेत्र में निर्गुणियों ने किया था वह समन्वयवादी जीवन के प्रति आगे बढ़ती चली गई। सन्तों ने साम्यवादी साधना के लिए भूमि तैयार कर दी जिसे मध्ययुगीन हिन्दी साधना में पूर्णरूपेण देखा जा सकता है।

इसी युग में एक और महत्वपूर्ण सम्प्रदाय सूफी साधना का था यह मूलतः विदेशी तो था किन्तु उनका प्रभाव हिन्दू और मुस्लिम जनता पर समान रूप से था। यह लोग मुस्लिम होने के कारण एकेश्वरवादी तो थे लेकिन इनका एकेश्वरवाद मुसलमानों से भिन्न प्रकार का था। यह वस्तुतः हृदय से अद्वैतवाद को स्वीकार करते थे। इनकी धारणा अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैतवाद से बहुत कुछ मिलती-जुलती थी—'यह जगत को माया मोह और मिथ्या नहीं मानते हैं। जगत भी उसी परमतत्व के सौन्दर्य से सुन्दर है, उसी की छाया है। इस प्रकार इनकी दृष्टि से जगत सत्य है।'[22] सूफी जिस प्रकार जीव और ब्रह्म की एकता के सिद्धान्त को मानते थे। वह शंकर, वेदान्त की तरह अद्वैत एवं अभेद नहीं है। किन्तु उनका एकता सम्बन्धित यह दृष्टिकोण विशिष्टाद्वैतवाद के अधिक अनुरूप है क्योंकि इस

22. कबीर ग्रंथावली-संपा० डा० भगवत स्वरूप मिश्र-1969 पृष्ठ संख्या।

एकता की प्राप्ति का प्रमुख साधन इनकी दृष्टि में प्रेम है। योग साधना और ज्ञान के महत्व को स्वीकार करते हुए भी इनकी दृष्टि से भगवान के साथ जो एकता होती है वह मुख्यतः प्रेम जनित है। प्रेमी और प्रिय जैसे एक हो जाते हैं, एक होने का अनुभव करते हैं, लेकिन वह भिन्न भी रहते हैं। प्रेम के लिए द्वैत की भूमिका अनिवार्य है चाहे वह कल्पित ही क्यों न हो। यही कारण है कि इस साधना के कवि रहस्यवाद के निकट पहुंच जाते हैं और इनके दाम्पत्य प्रेम में भगवत् प्राप्ति के मार्ग का जो प्रतिपादन है। वह ईश्वर को स्त्री मानने के कारण इश्क की विकलता का चित्रण हमें जीव रूपी पुरुष में दिखाई पड़ता है। यह जो सूफियों में दृष्टि आई उसके पीछे पूर्ववर्ती परम्परा का विशेष महत्व है। हिन्दू महात्मा और भक्तमार्ग के साधक विद्वान भगवत प्रेम को सर्वोच्च स्थान देते थे और मुसलमानों के सूफी महात्मा इश्क हकीकी को अल्लाह तक पहुंचने का मार्ग बताते थे। इस प्रकार की पूर्ववर्ती परम्परा जिसमें दोनों धर्मों ने अपनी कुरीतियों के लिए कबीर जैसों का विरोध सहा था। दूसरी ओर सिकन्दर लोदी मथुरा में मंदिर गिरा कर मस्जिदें बनवा रहा था और वहीं उधर बंगाल में हुसैनशाह 'सत्यपीर की कथा' चलवा रहे थे। इस कथा के द्वारा यह स्थापित किया गया था कि मनुष्यत्व को ऊपर करने से ही हिन्दूपन-मुसलमानपन और ईसाईपन आदि के उस स्वरूप का प्रतिरोध होता है जो आपसी वैमनष्य पैदा करता है।[23]

जैसा कि पीछे स्पष्ट कर चुके हैं कि कवि अपने युग की परिस्थितियों से प्रभावित होने के साथ-साथ अपने पूर्व की साहित्यिक परम्पराओं से भी प्रेरणा ग्रहण करता है, सूफी कवि भी इससे अछूते नहीं हैं। उनके द्वारा काव्य में प्रयुक्त हुए प्रतीकों को देशकाल और परिस्थिति तथा मनोवृत्ति से प्रेरणा उपलब्ध हुई ही है। साथ ही पूर्ववर्ती परम्पराओं से भी योग मिला। डा० रामकुमार वर्मा ने अपने इतिहास में एक स्थल पर लिखा है 'हिन्दू और उनकी धार्मिक कट्टरता से ऊबकर उस युग के कुछ स्वतन्त्र विचारकों ने आध्यात्म के माध्यम से जगत के सम्बन्धों को समझने के लिए पूर्ववर्ती परम्परा से प्राप्त सिद्धों, नाथ, योगियों के मार्ग को अपनाया।'[24] ऐसे विचारकों में सूफी कवियों का महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी समन्वय साधना को प्रेरणा देने वाली एक तो अरबी फारसी साहित्य की परम्परा है और दूसरी सिद्ध, नाथ एवं संत काव्य थी।

अन्य देशों के साहित्य की भांति अरबी-फारसी में भी सर्वप्रथम प्रेम काव्य और वीरकाव्य की परम्परा उद्भूत हुई, किन्तु इस प्रेम परम्परा में परमात्मा के

---

23. जायसी ग्रन्थावली-डा० रामचन्द्र शुक्ल, तृतीय संस्करण पृष्ठ 3।
24. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, पृष्ठ 192।

परम प्रेम और आन्तरिक सूक्ष्म अनुभूतियों का चित्रण नहीं था, अरबी साहित्य की अपेक्षा प्रेम और रहस्य तथा सूफी सिद्धान्तों का सम्यक् प्रतिपादन फारसी साहित्य में अधिक हुआ है। उस समय हिन्दू और मुसलमानों के बीच सामाजिक धार्मिक एवं सांस्कृतिक संघर्षों का बोलबाला था। इसीलिए सूफी कवियों को अपने प्रयास में सफलता नहीं मिल रही थी। वे राजसत्ता के विरोध में पहले ही परास्त हो चुके थे। वे यह अच्छी तरह जान गए थे कि राज्यसत्ता के विरोध में वह फल-फूल नहीं सकते, साथ ही भारत में सूफी मत का जिस समय आगमन हुआ वह इस्लाम का एक अंग बन चुका था, सूफियों का उद्देश्य इस्लाम का प्रचार प्रच्छन्न रूप से करना था।

मुस्लिम शासक हिन्दुओं को काफिर कहकर उन पर अत्याचार करते थे किन्तु सूफी कवियों ने हिन्दुओं को उच्च स्थान दिया और उन्हीं को अपने काव्य में नायक-नायिका का पद दिया। उन्होंने हिन्दू नायक को जीव और हिन्दू नायिका को ब्रह्म का प्रतीत मान कर अपने भावों की अभिव्यक्ति की। हिन्दुओं को उच्च स्थान देने के साथ ही उन्होंने मुसलमानों का स्तर निम्न रखा, यथा-जायसी ने अलाउद्दीन को माया का प्रतीक माना है।[25]

उस समय हिन्दू और मुसलमानों के बीच समन्वय स्थापित करने की पूर्ण कोशिश की जा रही थी, पर राजनीतिक वातावरण, धार्मिक वातावरण और सांस्कृतिक स्थिति इस प्रथा को सफल नहीं होने दे रही थी। फिर भी मुस्लिम शासक तलवार का प्रश्रय लेकर अपने धर्म प्रचार में सफल न हो सके, पर सूफी कवियों ने कलम के जोर पर अपने मत का प्रचार करके मुस्लिम समाज, धर्म एवं संस्कृति की ओर भारतीय जनता को आकर्षित कर, हिन्दू मुसलमानों के मध्य ऐक्य स्थापित करवाया।

छुआछूत, जाति-पांति और ऊँच-नीच की भावना से ऊपर भक्ति को सब के लिए सहज बनाने का जो आन्दोलन चला और उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप संतों को कहना पड़ा कि 'जाति-पांति पूछे नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि को होई' इस भावना से उदारवादी सूफियों को प्रभावित ही नहीं किया वरन् व्यक्ति के भेद की वहां कोई गुंजाइश ही न रह गई। भेदभाव को उन्होंने माया का रूप देकर उसकी सैतान से तुलना कर डाली।

———

25. 'माया अलाद्दीन सुल्तना'
जायसी गन्थावली, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ 55।

द्वितीय खण्ड

प्रथम—अध्याय

प्रेम पद्धति में समन्वय

प्रेम-पद्धति में समन्वय

प्रेम जीव का आदि स्रोत है प्रेम के द्वारा ही मनुष्य को जीवन जीने की प्रेरणा मिलती है। वस्तुतः प्रेमाभाव में मानव जीवन दूभर हो जाता है प्रेम की उपयोगिता को जीवनोन्नति के लिए प्रायः सभी महापुरुषों, लेखकों, कवियों व सामान्य पुरुषों ने मूक वाणी से स्वीकार किया है।

प्रेम की चरम अवस्था पर पहुंचकर वासना का लोहा आत्म समर्पण रूपी पारस के स्पर्श से प्रेम रूपी खरा सोना बन जाता है। जब 'अहं ही न रहा तो अभिमान का तो प्रश्न ही नहीं उठता। क्योंकि कबीर कहते हैं—

जब मैं था तब हरि नहीं, जब हरि तब मैं नाँहि।
प्रेम गली अति सांकरी, तामें दो न समाँहि।।

ऐसे प्रेम के मार्ग पर चलना खांडे की धार पर चलने के समान है—

सीस उतारे, भुइं धरे, तापर राखे पांव।
दास कबीरा यों कहे ऐसे होय तो आव।।

प्रेम स्वतः उत्पन्न होने वाली वस्तु है, उसमें प्रेमी के रूप, गुण या वस्तु का कोई स्थान नहीं होता वह तो सूर्य को देखकर स्वतः कमल खिलने के समान है।

प्रेम जीवन का मूल है। कवि दान्तें ने प्रेम को प्रेरणा शक्ति कहा है—

'I am one who when Love'
Inspires me, Hate·········

अर्थात् में वह हूं जिसके जीवन में प्रेम यदि प्रोत्साहन दें, तो लिखता हूं। प्रेम की इसी प्रेरणा को 'शैली कविता की प्राण धारा कहा करता था। जीवन का मूल होने के कारण साहित्य में विशद एवं मार्मिक चित्रण हुआ है। सूफी कवियों के अनुसार प्रेम, नित्य सुन्दर और एकान्तिक आनन्द प्रद पदार्थ है। प्रेम के कारण प्रेमी अनेक प्रकार के कष्ट सहन करता है। तथापि वह सुख का ही अनुभव करता है, यदि प्रेमी के लिए प्राण भी त्यागने पड़ें तो वह भी सहजता से कर सकता है, रत्नसेन पद्मावती के लिए शूली पर भी चढ़ जाने को तैयार है उधर रत्नसेन को जब शूली मिलने वाली होती है तो पद्मावती यह सन्देश भेजती है—

काढ़ि प्रानि बैठी लेइ हाथा, मरै तो मरौ, जिऔं एक साथ।

प्रेम की अग्नि लगते ही समस्त संसार जल उठता है—

मुहम्मद चिनमी प्रेम के सुनि महिं गगन डराइ।
धनि विरही और धनि हियाजहं अस अगिनि समाइ॥

प्रिय की हर वस्तु चाहे जड़ हो या चेतन प्रेमी को अधिक प्रिय होती है। नागमती प्रिय की ओर ले जाने वाले मार्ग के लिए कहती हैं—

वह पथ पलकन्ह जाइ बोहारौं, सीस चरन के चलौंसि।

सूफी कवियों का प्रेम अलौकिक है। ईरानी प्रेम पद्धति में नायक के प्रेम का वेग अधिक तीव्र दिखाई पड़ता है। और भारतीय प्रेम पद्धति में नायिका के के प्रेम का। 'पद्मावत' के नायक रत्नसेन में भी प्रेम का वेग अधिक है। प्रयत्न नायक की ओर से है और उसकी कठिनता द्वारा कवि ने नायक के प्रेम को नापा है। नायक का यह आदर्श 'लैला मजनूं' 'शीरी फरियाद' आदि उन अरबी-फारसी कहानियों के आदर्श से मिलता जुलता है। जिनमें हड्डी की ठठरी भर लिए हुए टोकियों से पहाड़ को फोड़ डालने वाले आंशिक पाये जाते हैं। रत्नसेन का अनेक कठिन भागों से दु:खों को झेलते हुए सात-समुद्र पार कर सिंघल-द्वीप पहुंचना, ईरानी प्रेम पद्धति का एक रूप है। उधर पद्मावती का प्रेमाग्नि में जलना, यह भारतीय प्रेम का शुद्ध रूप प्राप्त होता है।

फारसी की मसनवियों का प्रेम एकान्तिक और लोक-बाह्य होता है। नायक का असामान्य परक्रम एकान्तिक प्रेम के क्षेत्र में होता है। इसमें पारिवारिक और सामाजिक लोक-व्यवहार के लिए कोई स्थान नहीं होता, किन्तु भारतीय प्रेम पद्धति आदि से ही लोक सम्बद्ध व्यवहारात्मक रही है। उसकी प्रभा जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में प्रस्फुटित और प्रज्ज्वलित होती है।
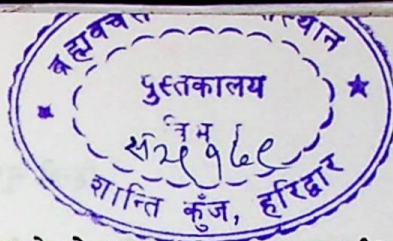
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रेम चार प्रकार का माना है[1]—

1. विवाह के बाद जीवन संघर्ष जिसका उत्कर्ष दिखाया जाता है।

2. विवाह के पूर्व जो जीवन क्षेत्र में कहीं भेंट होने से उदित होता है और जिसका परिणाम विवाह होता है।

3. राजप्रसाद, वाटिका, जल विहार आदि में जो रंग रहस्य के रूप में प्रकट होता है, तथा

4. गुण-श्रवण, चित्त-दर्शन, स्वप्न-दर्शन आदि के द्वारा जिसका उदय होता है। नायक या नायिका जिसमें प्रयत्नवान दिखाये जाते हैं।

तीसरे प्रकार को चाहे तो दूसरे या चौथे प्रकार में समाविष्ट किया जा सकता है वास्तव में तीसरे प्रकार का प्रेम शृंगार या भोग, विलास चित्रण है, इसे तो किसी भी प्रेम के भीतर समाहित किया जा सकता है।

सूफियों का प्रेम दूसरे और चौथे प्रकार का समन्वित रूप है यहां यह बात ध्यातव्य है कि 'युसुफ जुलेखा' के सिवा सर्वत्र सूफी काव्य में स्वकीय प्रेम का निरूपण है। 'युसुफ जुलेखा' में ही पराकीय प्रेम का निरूपण है।

विरह का सूफी काव्य में अत्यधिक महत्व है। गुरू के द्वारा साधक को परम प्रिय परमात्मा का बोध कराना और उसके हृदय में चिनगी जलाना ही ज्ञान-विरह जाग्रत करना है।[2] प्रेम की सबसे बड़ी पहचान है, निज पीड़ा भूलकर प्रियतम की कुशल कामना करते रहना। साधक की मर्मान्तिक वेदना, प्रेम पथ में त्याग, कष्ट सहन, अडिग धीरता और अनन्य आस्था ही साध्य के हृदय में मया उत्पन्न करती है।[3] यह 'माया ही' साधक 'प्रेमी' और साध्य (प्रियतम) का चिरन्तर आध्यात्मिक संबंध (प्रेम) स्थापित करती है।

निर्गुण कवियों के समान ही सूफियों ने भी विरह के प्रतीकों का प्रयोग किया है। कहीं विरह को वैराग्य[4] कहा गया है, कहीं भंवर।[5] ईश्वर विरह में साधक विरागी, त्यागी, भौतिक सुख विमुख हो जाता है।

इस प्रकार सूफी प्रेम पद्धति संयोग और वियोग का सुन्दर चित्रण है समन्वयवादी दृष्टिकोण के कारण 'पद्मावत्' की प्रेम पद्धति में ईरानी और भारतीय

---

1. जायसी ग्रन्थावली, पं० रामचन्द्र शुक्ल, भूमिका पृष्ठ 27।
2. 'गुरु विरह चिनगी जो मेला। जो सुलगाइ लेइ सो चेला।।'
जा०ग्र०, पृष्ठ 51।
3. 'सुनि के धनि जारी असकया। तन मा मयन हिये भई मया।।'
जा०ग्र०, पृष्ठ 78
4. जायसी ग्रन्थावली, पृष्ठ 49।
5. वही, पृ० 49।

शैलियों का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है। जायसी ने इश्क के दास्तान वाली मसनवियों के आधार पर लिखी अपनी प्रेम गाथा को भारतीय संस्कृति और लोक जीवन का आवरण पहना दिया है। उसमें फारसी पद्धति का केवल दीवानापन ही नहीं है हिन्दू परिवार की अत्यन्त सुन्दर पारिवारिक जीवन की झांकी भी उपस्थित हुई है जिसमें प्रेम का हृदय को छू लेने वाला वर्णन है।

प्रेम के विविध रूप

सामान्यत: प्रेम शब्द का अर्थ उस आनन्दमयी अनुभूति को माना जाता है जो प्रेमी को प्रेमिका के रूप गुण आदि के सानिध्य से प्राप्त होता है मनुष्य प्रेम में श्रद्धा, करुणा, दया, क्षमा, भक्ति, स्नेह, वात्सल्य, सौहार्द्र आदि कोमल वृत्तियों का समन्वित रूप पाता है। साथ ही किसी विशिष्ट गुण, सौन्दर्य आदि को इसकी अनिवार्यता नहीं माना जा सकता क्योंकि ये प्रेम के एक ही अंग या स्थूल पक्ष से ही सम्बन्ध रखते हैं। इसके उन्नत स्वरूप या स्तर पर आकर एक ईश्वरीय आनन्द और विरह की सूक्ष्म भावना ही शेष रह जाती है, इसे ही प्राय: शुद्ध प्रेम की संज्ञा दी जाती है।

अपने स्थूल स्वरूप में प्रेम रति या काम कहलाता है और इसका सम्बन्ध कामना की तृप्ति से रहता है। अपने सूक्ष्म या उन्नतस्वरूप में प्रीति या प्रणय कहलाता है और इसका सम्बन्ध भावात्मक एवं आत्मिक तुष्टि से रहता है। और इस भेद के रहते हुए भी ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने भी माना है कि काम इन्द्रियां सत्य का परिष्कार करके ही उसके स्थान पर प्रेम का अलौकिक पुष्प विकसित कर सकती हैं।[6] मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि वह इच्छित वस्तु को, प्रेमी या प्रेमिका भी हो सकता है, छल या बल किसी भी प्रकार पाना चाहता है। पाने की प्रक्रिया दोनों के मध्य माधुर्य एवं त्याग को उपजाता है या यों कहें कि भाव चेतना में जो नैतिक या आध्यात्मिक उत्थान होता है उसके फलस्वरूप वे अपने सुख और दु:ख से उदासीन होकर प्रेम पात्र के हित की कामना को अपने जीवन का उद्देश्य बना लेते हैं।[7] यह एक अद्भुत अनुभव होता है जिसमें प्रेमी और प्रेमिका व्यक्तित्व, शरीर और चेतना को परस्पर एक-दूसरे में विलीन कर सुरक्षा और पूर्णत: की अनुभूति करते हैं प्रणय में नारी और नर नि:स्वार्थ भाव से आत्म-

---

6. 'It is not until last is eypendenct and oradiceted that it developes into the exquisite and entharalling flower of Love.' Psychology of sex by Hovelock, Vol. I. p. 133.
7. Passion and Society—Devis be Roughlmont. p. 315.

दान और प्राप्ति की भावना को समान्तर पाते हैं। प्रेम में प्रेम पात्र का स्वीकार उसके गुण दोषों के साथ सम्पूर्णता में किया जाता है।[8] अतः किसी भी बाह्य दवाब के बिना प्रेम पात्र के चयन की स्वतंत्रता प्रेम का ही अनिवार्य तत्व है।[9] यदि यह स्वतन्त्रता प्राप्त हो तो जीवन के किसी ऐतिहासिक क्षेत्र में प्रेमपात्र अपने एक मात्र इष्ट, काम में, अभूतपूर्व, अप्रियता तथा जीवन के लिए अनिवार्य रूप में सामने आ सकता है। साहित्यिक ग्रंथों में जिस प्रथम दर्शन में प्रेम का उल्लेख मिलता है उसे मात्र कल्पना की मान्यता नहीं दी जा सकती है। यौवन के आगमन के साथ ही एक स्वाभाविक प्रवृत्ति के रूप में नर नारी का परस्पर आकर्षण परिलक्षित होता है। इस प्रक्रिया में उसी व्यक्तित्व का चयन होता है जो प्रेमी को संस्कार रूप में प्राप्त व्यक्तित्व के परितत्वों से युक्त होता है।

इस अवस्था में फ्राइड का इडियस तथा इलेक्ट्रा मनोग्रंथियों का सिद्धांत तर्क संगत लगता है। शैशव अवस्था में बालक के अवचेतन में उसकी माँ के रूप में सम्पूर्ण नारी का चित्र उसकी माँ के रूप में अपनी छाप छोड़ता है। ऐसे ही बालिका के अवचेतन में उसका पिता पुरुष एवं पौरुष का प्रतीक बनता है यही दोनों बातें युवा अवस्था में प्रेमपात्र के चयन की आधार बनती हैं।[10] यह कहना कि प्रेमपात्र की सुन्दरता या असुन्दरता अच्छा या बुरा होना चयन का आधार बनता है सही प्रतीत होता है।[11] विभिन्न धर्म ग्रंथों की उक्ति Revier are made haven पूर्वोक्ति दृष्टि से सही प्रतीत होता है।[12]

प्रायः प्रेम पर आधारित साहित्य पर विचार करते समय भावनात्मक प्रणय और मौन भावना को एक दूसरे में जोड़ते हुए यह आग्रह किया जाने लगता है कि प्रेम मनुष्य की एक सहज आदित प्रवृत्ति है।[13] यह कथन प्रेम के स्थूल पक्ष काम अथवा रति से सम्बद्ध आकर्षण के लिये तो ठीक हो सकता है किन्तु भावात्मक प्रणय मनुष्य की एक उन्नत भाव दशा है। यह उन्नत भाव दशा या प्रीति या तथाकथित शुद्ध प्रेम किसी स्वार्थ प्रेरित इच्छा का परिणाम नहीं होता। इसके विपरीत प्रेमी प्रिय को अपने को विलीन करने के स्थान पर स्वयं को उसके अनुरूप बनाता है। प्रेम के दोनों पक्षों

---

8. Seven faces of Love—Andre Mouroise p. 24.
9. Love the Law of Life—Toyohiko, Kagawa p. 51.
10. Psychology of sex—harve Lock Ellis—p. 276-88.
11. Seven faces of love andrue maurqraise —168.
12. Psychology of sex—harve lock Ellis—p. 273.
13. The Qrisen of family, Privet and property and the state—p. 115-116.

शैलियों का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है। जायसी ने इश्क के दास्तान वाली मसनवियों के आधार पर लिखी अपनी प्रेम गाथा को भारतीय संस्कृति और लोक जीवन का आवरण पहना दिया है। उसमें फारसी पद्धति का केवल दीवानापन ही नहीं है हिन्दू परिवार की अत्यन्त सुन्दर पारिवारिक जीवन की झांकी भी उपस्थित हुई है जिसमें प्रेम का हृदय को छू लेने वाला वर्णन है।

प्रेम के विविध रूप

सामान्यतः प्रेम शब्द का अर्थ उस आनन्दमयी अनुभूति को माना जाता है जो प्रेमी को प्रेमिका के रूप गुण आदि के सानिध्य से प्राप्त होता है मनुष्य प्रेम में श्रद्धा, करुणा, दया, क्षमा, भक्ति, स्नेह, वात्सल्य, सौहार्द्र आदि कोमल वृत्तियों का समन्वित रूप पाता है। साथ ही किसी विशिष्ट गुण, सौन्दर्य आदि को इसकी अनिवार्यता नहीं माना जा सकता क्योंकि ये प्रेम के एक ही अंग या स्थूल पक्ष से ही सम्बन्ध रखते हैं। इसके उन्नत स्वरूप या स्तर पर आकर एक ईश्वरीय आनन्द और विरह की सूक्ष्म भावना ही शेष रह जाती है, इसे ही प्रायः शुद्ध प्रेम की संज्ञा दी जाती है।

अपने स्थूल स्वरूप में प्रेम रति या काम कहलाता है और इसका सम्बन्ध कामना की तृप्ति से रहता है। अपने सूक्ष्म या उन्नतस्वरूप में प्रीति या प्रणय कहलाता है और इसका सम्बन्ध भावात्मक एवं आत्मिक तुष्टि से रहता है। और इस भेद के रहते हुए भी ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने भी माना है कि काम इन्द्रियां सत्य का परिष्कार करके ही उसके स्थान पर प्रेम का अलौकिक पुष्प विकसित कर सकती हैं।[6] मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि वह इच्छित वस्तु को, प्रेमी या प्रेमिका भी हो सकता है, छल या बल किसी भी प्रकार पाना चाहता है। पाने की प्रक्रिया दोनों के मध्य माधुर्य एवं त्याग को उपजाता है या यों कहें कि भाव चेतना में जो नैतिक या आध्यात्मिक उत्थान होता है उसके फलस्वरूप वे अपने सुख और दुःख से उदासीन होकर प्रेम पात्र के हित की कामना को अपने जीवन का उद्देश्य बना लेते हैं।[7] यह एक अद्भुत अनुभव होता है जिसमें प्रेमी और प्रेमिका व्यक्तित्व, शरीर और चेतना को परस्पर एक-दूसरे में विलीन कर सुरक्षा और पूर्णतः की अनुभूति करते हैं प्रणय में नारी और नर निःस्वार्थ भाव से आत्म-

---

6. 'It is not until last is expendenct and oradiceted that it developes into the exquisite and entharalling flower of Love.' Psychology of sex by Hovelock, Vol. I. p. 133.
7. Passion and Society—Devis be Roughlmont. p. 315.

दान और प्राप्ति की भावना को समान्तर पाते हैं। प्रेम में प्रेम पात्र का स्वीकार उसके गुण दोषों के साथ सम्पूर्णता में किया जाता है।[8] अतः किसी भी बाह्य दवाब के बिना प्रेम पात्र के चयन की स्वतंत्रता प्रेम का ही अनिवार्य तत्व है।[9] यदि यह स्वतन्त्रता प्राप्त हो तो जीवन के किसी ऐतिहासिक क्षेत्र में प्रेमपात्र अपने एक मात्र इष्ट, काम में, अभूतपूर्व, अप्रियता तथा जीवन के लिए अनिवार्य रूप में सामने आ सकता है। साहित्यिक ग्रंथों में जिस प्रथम दर्शन में प्रेम का उल्लेख मिलता है उसे मात्र कल्पना की मान्यता नहीं दी जा सकती है। यौवन के आगमन के साथ ही एक स्वाभाविक प्रवृत्ति के रूप में नर नारी का परस्पर आकर्षण परिलक्षित होता है। इस प्रक्रिया में उसी व्यक्तित्व का चयन होता है जो प्रेमी को संस्कार रूप में प्राप्त व्यक्तित्व के परितत्वों से युक्त होता है।

इस अवस्था में फ्राइड का इडियस तथा इलेक्ट्रा मनोग्रंथियों का सिद्धांत तर्क संगत लगता है। शैशव अवस्था में बालक के अवचेतन में उसकी माँ के रूप में सम्पूर्ण नारी का चित्र उसकी माँ के रूप में अपनी छाप छोड़ता है। ऐसे ही बालिका के अवचेतन में उसका पिता पुरुष एवं पौरुष का प्रतीक बनता है यही दोनों बातें युवा अवस्था में प्रेमपात्र के चयन की आधार बनती हैं।[10] यह कहना कि प्रेमपात्र की सुन्दरता या असुन्दरता अच्छा या बुरा होना चयन का आधार बनता है सही प्रतीत होता है।[11] विभिन्न धर्म ग्रंथों की उक्ति Revier are made haven पूर्वोक्ति दृष्टि से सही प्रतीत होता है।[12]

प्रायः प्रेम पर आधारित साहित्य पर विचार करते समय भावनात्मक प्रणय और मौन भावना को एक दूसरे में जोड़ते हुए यह आग्रह किया जाने लगता है कि प्रेम मनुष्य की एक सहज आदित प्रवृत्ति है।[13] यह कथन प्रेम के स्थूल पक्ष काम अथवा रति से सम्बद्ध आकर्षण के लिये तो ठीक हो सकता है किन्तु भावात्मक प्रणय मनुष्य की एक उन्नत भाव दशा है। यह उन्नत भाव दशा या प्रीति या तथाकथित शुद्ध प्रेम किसी स्वार्थ प्रेरित इच्छा का परिणाम नहीं होता। इसके विपरीत प्रेमी प्रिय को अपने को विलीन करने के स्थान पर स्वयं को उसके अनुरूप बनाता है। प्रेम के दोनों पक्षों

---

8. Seven faces of Love—Andre Mouroise p. 24.
9. Love the Law of Life—Toyohiko, Kagawa p. 51.
10. Psychology of sex—harve Lock Ellis—p. 276-88.
11. Seven faces of love andrue maurqraise —168.
12. Psychology of sex—harve lock Ellis—p. 273.
13. The Qrisen of family, Privet and property and the state—p. 115-116.

रति और प्रीति पर सम्यक् दृष्टि डालने पर हम पाते हैं कि जहां रति में शारीरिक के बाद मन में विरक्ति, उपेक्षा या घृणा की भावना जागृत होती है। वहीं प्रीति में उत्तरोत्तर, विकास, प्रगाढ़ता और गम्भीरता आती जाती है। प्रेम का यह दूसरा पक्ष प्रेमी की लगन भाव, प्रगाढ़ता, सहज स्वभाव के द्वारा स्थिरता प्राप्त करता है और तदनन्तर क्षीण न होकर निरन्तर एक जल धारा की भांति प्रवाहित होता रहता है। यह जलधारा निश्चय ही गंगा की गहराई और पवित्रता से कम नहीं होती। नारदीय भक्ति सूत्र में देवर्षि नारद कहते हैं 'गुण रहित, कामना रहित, प्रतिक्षण वर्धमान, विच्छिन्नं सूक्ष्मतर अनुभव रूपत।[14] व्यक्ति के अपने व्यक्तित्व का विकास प्रीतम के माध्यम से होता है। यह अवस्था तभी आती है जब वह प्रिय चिन्तन में इतना डूबा जाता है कि निरन्तर प्रियतम के सानिध्य की अनुभूति दर्शन साक्षात्कार होता रहता है। स्वयं अपने में न रहकर प्रीतम स्वरूप हो जाता है। यह यों कहें कि वह केवल उसका दर्शन करता है उसी का मधुर सम्भार्षण सुनता है उसी की चर्चा और चिन्तन में लगा रहता है।[15]

जिस प्रकार साहित्य में अन्य सामाजिक जीवन की मान्यतायें और आचार-विचार प्रतिवन्धित हुए हैं उसी प्रकार प्रेम भी व्यापक रूप से वर्णित हुआ है। विश्व का तीन चौथाई से भी अधिक साहित्य इसी 'प्रेम' का वर्णन-विश्लेषण है। हिन्दी काव्य में भी प्रेम की अभिव्यंजना अनेक प्रकार से हुई है। प्रेम के लौकिक पक्ष का विकास वीरगाथा काल में हुआ है तो दूसरी ओर अलौकिक स्वरूप राग अनुराग भक्ति द्वारा श्रीमद्भागवत में प्रतिपादित हुआ है। मध्यकाल में भारतवर्ष में कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक प्रेम की धारा प्रवाहित हो रही थी। दक्षिण में आलवार भक्त बंगाल में ब्राउल साधक मिथिला की अमराई में, जयदेव का गीत गोविन्द और विद्यापति की पदावली, कृष्णभक्तों के प्रेम रस की वृष्टि करते हुए मीरा के सरस पद और उत्तर भारत में वैष्णवों की साधना के द्वारा पूर्वोक्त प्रेम की धारा संगठित हुई थी। ऐसे ही काल में सूफियों के प्रेमाख्यानों में ऐसे प्रेम का वर्णन हुआ जो लौकिक होते हुए भी अलौकिक था। मध्य युग की प्रेम धारा मुख्य रूप से राधा कृष्ण लीला सम्बन्धी और संत व साधकों के रहस्यात्मक प्रेम में विभाजित थीं कबीरदास तथा अन्य निर्गुण संत प्रेम प्रदर्शन में गूढ़ता का समावेश कर रहे थे दूसरी ओर सूफी संतों कवियों का प्रेम के वर्णन में संकेत परम सुविधा के प्रेम का था। सूफी प्रेमाख्यानों में सफलतापूर्वक लौकिक प्रेम और लौकिक पात्रों के माध्यम से अलौकिक प्रेम की स्थापना का कठिन कार्य भी सफलतापूर्वक किया गया है हम

---

14. नारदीय भक्ति सूत्र 54।
15. वही, 55।

अब तक किये गये विश्लेषण के आधार पर प्रेम के विविध रूपों को इस प्रकार सूची-बद्ध कर सकते हैं—

1. विवाह के बाद प्रस्फुटित होने वाला प्रेम का आदर्श रूप जिसमें एक निष्ठा और कर्त्तव्य की भावना का सामंजस्य रहता है।

2. सामाजिक बन्धन और विवाह-संयोग की इच्छा से मुक्त विरह मूलक प्रेम जिसमें भावोन्माद, भावना की तीव्रता, विरह की सजगता और गहन आकांक्षा निहित रहती है। भगवान श्रीकृष्ण और राधा तथा अन्य गोपियों का प्रेम इसी कोटि का है।

3. प्रेम का वह रूप जिसमें पुरुष की कातरता, विरह और उद्वेगपूर्ण भावुकता तुक प्रधान रहती है किन्तु नारी की विहलता आतुरता मुखरित नहीं होती है। महाकवि कालिदास ने मेघदूत में ऐसे ही प्रेम का वर्णन किया है।

4. इस कोटि का प्रेम गुण, श्रवण, साक्षात दर्शन या चित्र दर्शन या स्वप्न दर्शन से होता है। सूफी साहित्य में हमें इसी कोटि के प्रेम का चित्रण मिलता है। उदाहरण के लिए गुण, श्रवण द्वारा प्रेम का प्रारम्भ पद्मावत, हंस जवाहिर तथा पूपावती आदि कथाओं में हुआ है। चित्रदर्शन द्वारा प्रेम का आरम्भ रत्नावली और चित्रावली आदि प्रेमाख्यानों में हुआ है। स्वप्न दर्शन द्वारा प्रेम का प्रारम्भ करनकावती, कामलता, प्रेमदर्पण, युसुफ-जुलेखा तथा इन्द्रावती आदि में हुआ है। साक्षात दर्शन द्वारा प्रेम का प्रस्फुटन मधुमालती, मधुकरमालती आदि प्रेमाख्यानों में वर्णित हुआ है।

भक्ति भावना, दास्य, साख्य और माधुर्य भाव

भक्ति भावना में जीवात्मा और परमात्मा के प्रेम एवं मिलन की अनुभूतियां होती है। इसमें आध्यात्मिक प्रेम को साकार होकर प्रतिबिम्बित एवं विकीर्ण होने का अवसर मिलता है। इसमें लौकिकता की गन्ध मात्र भी नहीं होती है। भक्त और भगवान का प्रेम ही जगत का सार तत्व प्रतीत होने लगता है तथा संसार विषय वासनाओं से जलता हुआ प्रतीत होता है। यह आग बिना हरि के मिलनबुझ पाना सम्भव नहीं है। प्रेम रस चखनें भर से यह आग बुझ जाती है जीवात्मा एवं परमात्मा के इस प्रेम की अभिव्यक्ति अनुभूति की गहराई तथा तीव्रता के दर्शन करने से मिलती है तथा यह अनुभूति पति-पत्नी के सम्बन्ध से ही प्रायः सम्भव होती है क्योंकि इस सम्बन्ध में ही प्रेम की सबसे अधिक मर्मस्पर्शिता तथा तन्मयता का चित्रण सम्भव है। फिर भी भगवत विषयक रति में साधक उसके साथ विभिन्न सम्बन्धों की अनुभूति की परिकल्पना करता है। उन परिकल्पनाओं में दास्य, साख्य और माधुर्य भाव का समावेश किया जा सकता है।

भगवान के महत्व और अपने साधुत्व की चेतना के साथ होने वाली भगवद्विषयक रति दास्य भक्ति भावना के अन्तर्गत आती है इसमें भक्ति का दास्य-परक रूप ही परिकल्पित हुआ है। दास्य भावना भी मधुर रति का ही एक अंग है। दास्य रति में भति-हृदय के पश्चाताप, आत्म निरीक्षण और विराग की स्वाभाविक व्यंजना होती है जैसे—

'थोरे जीवन भयो तन भारो
कियो न संत समागम कबहूं, लिया न नाम तुम्हारो।
अति उनमत्त मोह-माय-बस नहिं कछु बात बिचारो।।'[16]

× × × ×

'अब में नाच्यौ बहुत गुपाल।
काम क्रोध को पहिरि चोलना,
कंठ विषय की माल।'[17]

यह सुनिश्चित है कि भक्ति का दास्य मूलक भेद ऐसा भेद है जिसमें भगवान के प्रति महत्वानुभूति प्रकृति एवं अभीष्ट रूप में होती है। भगवान में महत्ता और अपने में अवशता की अनुभूति मानव मात्र के लिए सर्वाधिक स्वाभाविक अनुभूति है। इसी कारण दास्य मूलक भगवत प्रेम के काव्य की पहुंच जन सामान्य के हृदय तक होती है।

दास्य भक्ति में भगवान की महत्ता और भक्त की लघुता का होना अनिवार्य है किन्तु सख्य भक्ति भावना में दोनों में समानता की भावना का भाव उभर कर आता है। इस प्रकार सख्य भक्ति की मूल चेतना भगवान के प्रति साम्यानुभूति-मूलक प्रेम है। सांसारिक दुःख और अवशता के अनुभवों ने उसे भगवान के महत्व और आत्म-लघुत्व के जितने गहरे अनुभव दिए हैं उतने गहरे सख्य के नहीं हैं। फिर भी उसमें भी वही चैतन्य की धारा प्रवाहित है जो उस परम शक्ति में है अतः उसने परम शक्ति के साथ सख्य सम्बंध भी जोड़ा है और उस शक्ति को स्नेह एवं सहारा देकर एक मित्र के समान पथ-प्रदर्शक माना है। इस प्रकार सख्य भाव की भक्ति दास्य के समान तो नहीं, पर बहुत दूरी तक जनमानस के लिए एक स्वाभाविक अनुभूति है। इस भक्ति में भगवान के साथ क्रीड़ा-खेल में सम्मिलित होना, कभी उससे डांट खाना, कभी उसे डांट बताना, कभी शिकायत तो कभी झगड़ा यह सब

---

16. सूरसागर, प्रथम स्कन्ध, विनय पद 134।
17. वही, पृष्ठ 153।

बातें भावुकता और कल्पना के प्रसार हैं। सख्य की गहरी अनुभूति में महत्व-चेतना का विकास स्वाभाविक है—

'लागी केलि करै मझ नीरा। हंस लजाइ बैठि ओनहिं तीरा।।
पद्मावति कौतुक कहं राखी। तुम ससि होहु तराइन्ह साखी।।

× × × ×

'मुहम्मद बाजी पैम कै, ज्यों भावै त्यों खेल।
तिल फूलहिं के संग ज्यो, होइ फुलाइल तेल।।'[18]

सख्य भावना में सरलानुभूति के चित्र प्रतिबिम्बित होते हैं सूर का सख्य भाव का यह बड़ा प्रसिद्ध पत्र है—

'खेलत में को काको गुसैंया।
हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस हीकत करत रिसैंया।।'[19]

यहां महत्व विस्मृति के साथ सखाओं में सच्ची साम्य भावना उभरी है। सख्य भावना में ये खेल तभी खेले जा सकते हैं जब भक्त इस अनुभूति के धरातल पर पहुंच जाता है कि इस मिथ्या संसार तथा इस शरीर का अस्तित्व क्षणिक है अतः जो अवसर मिला है उसमें प्रभु से तादात्म्य स्थापित करके नाना खेलों को खेला जा सकता है—

'ये रानी! मन देखु विचारी। एहि नैहर रहना दिन चारी।।
जब लगअहैं पिता कर राजू। खेलि लेहु जो खेलहु आजू।।'[20]

इस तरह भगवान के सख्य-मय रूप के प्रति भक्ति भावना जगाने के कारण इसमें सख्य भक्ति रस की अवतारणा होती है। इस भावना में साम्य मूलक भक्ति रति के चित्र उभर कर आते हैं।

माधुर्य भाव की भक्ति में कांता रति की परिकल्पना की गई है। दाम्पत्य प्रेम जो ईश्वरीय प्रेम का स्थान ग्रहण करता है हमारे भक्त कवियों को बहुत पसंद है इस प्रकार के प्रेमात्मक रूपों को ईश्वरीय प्रेम का दाम्पत्य प्रेम आत्मदृष्टा कवियों

---

18. पद्मावत, मानसरोदक खण्ड, पद, 6।
19. सूर सागर-दशमस्कन्ध, पद 863।
20. पदमावत, मनसरोदक खण्ड, पद 2।

में सब कहीं अपनाया जाता है। अंग्रेजी कवि पैटमोर ने इसाई धर्म के सम्बन्ध में कहा है—'ईसा मसीह के साथ जीवात्मा का उनकी विवाहिता स्त्री का सम्बन्ध ही उस भक्तिभाव की कुंजी है जिससे युक्त होकर उनके प्रति प्रार्थना, प्रेम एवं श्रद्धा प्रदर्शित होनी चाहिए।[21] पुरुष एवं प्रकृति, सांख्य दर्शन के अनुसार विश्व की प्रेम भरी लीला में पुरुष एवं स्त्री के ही प्रतीक रूप में समझे जाते है उपनिषदों में परमात्मा के साथ जीवात्मा के मिलन की तुलना में दो प्रेमियों के आलिंगन के साथ करती है। वृदारण्यक उपनिषद में कहा गया है कि—'जिस प्रकार कोई पुरुष अपनी प्रियतमा द्वारा आलिंगन होने पर सभी बाहरी बातों को एकदम भूल जाता है, उसी प्रकार जीवात्मा भी परमात्मा के साथ संयुक्त हो जाने पर सभी बाहरी या भीतरी बातों का ज्ञान खो देता है।'[22]

कृष्ण की प्रेमिका गोपियां वैदिक ऋचाओं की प्रतीक मानी जाती थीं और उनका प्रेम इतना उग्र था कि भगवान के साथ अति निकट का साथ रखे बिना उन्हें संतोष ही न था। संत अंदाल ने जो प्राचीन आलवार कवियत्री थीं, अपने गीतों में विष्णु के साथ सम्पन्न हुए अपने विवाह का स्वप्न देखा था।[23] कृष्ण भक्त कवियों के यहां मधुर भाव का महत्व देखा जाता है। संत अंदाल की भांति मीरा बाई ने कृष्ण को ही अपना पति मान लिया—

'मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरा पति सोई।।[24]

बल्लभ सम्प्रदाय का सिद्धांत है कि पुरुषोत्तम ही एक मात्र पुरुष है और जो कोई उससे प्रेम करते हैं उन्हें स्त्री समझना चाहिए। प्रेम की मादकता संत साहित्य में भी परिलक्षित होती है दाम्पत्य प्रेम जो ईश्वरीय प्रेम का स्थान ग्रहण करता है हमारे ज्ञानी कवियों को बहुत पसन्द है। इनके गीतों में इनके हृदय प्रेमात्मक रूपक पूर्णरूप से व्यक्त करते हुए जान पड़ते हैं।

माधुर्य भाव के दो पक्ष

यद्यपि निर्गुण काव्य को प्रेम सम्बन्धी रूपक सूफियों से ही मिले हैं तथापि सूफी व भारतीय परम्पराओं में विशिष्ट अन्तर लथित होता है। फारसी साहित्य में काव्यात्मक रूपक के लिए साधारतय: स्त्री को रिझाने के लिए पुरुष की ओर से ही

---

21. मिस्टिसिज्य इन इंगलिश लिटरेचर-मिस स्पर्जन, पृष्ठ 49।
22. वृहृदारणयक-4-2-29।
23. तामील सूडीज, पृष्ठ 324।
24. शब्दावली, पृष्ठ 24।

प्रयत्न किए जाते हैं। तथा इन्हीं प्रयत्नों को आधार बनाया जाता है। किन्तु भारतीय साहित्य के अन्तर्गत स्त्री का पुरुष के लिए प्रदर्शित प्रेम विरह अधिक विस्तार के साथ निरूपित किया जाता है। फारसी में मजनू लैला के लिए आकाश-पाताल एक कर देता है किन्तु लैला उससे उतनी प्रभावित नहीं जान पड़ती है, उधर भारतीय नायिका सभी प्रेम कालों में अधिक कष्ट झेलती हुई देखी जाती हैं अतएव यह उपयुक्त है कि फारसी की परम्पराओं का अनुसरण करने वाला सूफी कवि परमात्मा को पत्नी के रूप में प्रदर्शित करें। भारतीय परम्परा का अनुसरण करने वाले कबीर उसके विपरीत परमात्मा को पति के रूप में स्वीकार करते हैं क्योंकि परमात्मा द्वारा अपने जीवन के लिए प्रदर्शित प्रेम स्वभावतः दया का रूप ग्रहण कर लेता है।

निर्गुण के लिए वहीं एक मात्र पुरुष है और अन्य सभी उसी एक की पत्नियां हैं और उनका कर्तव्य है कि उसे प्रसन्न करने के लिए सब को प्रसन्न करें। कबीर ने उस एक मात्र अविनाशी स्वामी के साथ विवाह कर लिया है—

'कहै कबीर हम व्याहि चले हैं, पुरुष एक अविनासी।'[25]

दादू का कहना है कि हम सभी कोई उस एक पति की पत्नियां हैं और उसी के लिए अपना शृंगार किया है—

'हम सब नारी एक भरतार, सब कोई तन करै सिंगार।'[26]

नानक कहते हैं कि सब लोग उस कंत की पत्नियां हैं और उनके लिए शृंगार करते हैं—

'सबे कंत सहेलिया, सगलीआ करहिं सिंगार।'[27]

प्रेम की दो दशायें है जिनमें एक संयोग है और दूसरी वियोग की। सूफी फकीर इन शब्दों के स्थान पर क्रमशः 'विसाल व फिराक' के प्रयोग करते हैं और निर्गुणियों ने इन्हीं को मिलन व विरह नाम दिया है। निर्गुणियों में पूर्णलीन हो जाने का भाव दिखाई देता है। संयोग के होते ही प्रेम एवं प्रेमपात्र की सारी विभिन्नतायें नष्ट हो जाती हैं और खेल समाप्त हो जाता है। परम्परा के साथ

---

25. कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ 86।
26. बाठी (ज्ञान सागर), पृष्ठ 122।
27. गुरु ग्रन्थ साहब, पृष्ठ 28।

मिलन की आह को सूचित करने वाले 'विरह' का विवरण उनके यहां विशद रूप में पाया जाता है; उनका सौन्दर्य मनोहर अभिव्यक्तियों में परिस्फुट होता है। साधारण प्रकार से आनन्द प्रदान करने वाली वस्तुयें भी विरह की दशा में विपरीत प्रभाव डालने लगती हैं। बुल्ला साहब का यह विरह कितना तीव्र दिखाई पड़ता है—

'देखो पिया काली घटा मोपै भारी।'
सुन्नि सेज भयानक लागी मारौं विरह की जारी।।
प्रेम प्रीति यहि रीति चरन लगु, पल दिन नाहिं विसारी।।
चितवत पंथ अंत नहि पायों, जन बुल्ला सिहारी।।'[28]

परमात्मा के प्रेमी का विरह-संदेश इतना करूण है कि वह दूसरों के हृदयों को दुखित किए बिना नहीं रहता है। प्रेमिकाओं के संदेश साधारण संदेश नहीं। कबीर कहते हैं कि मैं अपना शरीर स्याही करके राम को पत्र लिखूंगी—

यह तनु जारों मसि करौ, लिखौं राम का नावुं।
लेखणि करूं करंग की, लिखि लिखि राम पठाऊं।।[29]

भक्त का हृदय इस भावना के कारण कांपता रहता है कि भगवान के प्रति प्रदर्शित किया गया उसका प्रेम कदाचित वैसा नहीं हैं जैसा उसके लिए उपयुक्त होता। कबीर कहते हैं कि मुझमें वे गुण नहीं, प्रेम-साधना की योग्यता तथा सौन्दर्य नहीं हैं। उन्हें नहीं मालूम कि प्रियतम से मिलन होगा भी अथवा नहीं—

'मन परितीत न प्रेम रस, ना इस तन में ढंग।
क्या जानूं उस पीवसूं कैसे रहती रंग।।'[30]

इन संतों जैसा प्रेम हम व्यवहार में भी पाते हैं। कबीर कहते हैं कि हे सखी, प्रियतम के साथ मिलने के लिए उत्कंठित हो रही हूं। मेरे यौवन काल में विरह मुझे सता रहा है और में ज्ञान की गली में इठलाती हुई चल रही हूं। मेरे सत गुरु ने उस प्रियतम का प्रेम-पत्र भी दे दिया है—

28. सन्तबानी संग्रह पृष्ठ 172।
29. कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ 8।
30. वही, पृष्ठ 22।

'सखियो हमहूं भई बलमासी ।
आयी यौवन विरह सतायो, अब मैं ज्ञान गली अठिलाती ।
ज्ञान गली में सतगुरु मिलिगे, दई पिया की पाती ॥'[31]

इस प्रकार माधुर्य की स्थिति में साधक प्रेमी को मिलन और विरह की नाना अनुभूतियाँ होती हैं और वह अपने प्रियतम के साथ भावनात्मक रास रचाता है और विरह में उसके सौन्दर्य को देखने के लिए तड़पने लगता है। लेकिन इस सौन्दर्य को वही देख सकता है जिसने प्रियतम के समक्ष कुछ भी संकोच नहीं किया हो कबीर का मत है कि—

'घूंघट का पट खोल रे, तोको पीव मिलेंगे ।[32]

इस प्रकार प्रियतम के कभी दर्शन होते हैं कभी वह सौन्दर्य की झलक दिखा कर छिप जाता है और फिर वियोग की तड़पन में ऐसी आग जलती है जो बुझ नहीं पाती है और तब तक यह ज्वाला जलती है जब तक वह उपलब्ध नहीं हो जाता है और फिर संकोच का कोई स्थान ही नहीं रह जाता है।

सूफी प्रेमाख्यानों में प्रेम कथा का वर्णन मुख्यत: निम्न चार भागों में विभाजित है—

1. प्रेम का प्रस्फुटन, प्रत्यक्ष दर्शन, चित्रदर्शन, स्वप्न दर्शन गुण श्रवण एवं साहचर्य से प्रेरित।
2. प्रयत्न-प्रेमी प्रेमिका द्वारा अथवा दोनों में से किसी एक की ओर से।
3. संघर्ष-प्रेम के मार्ग की बाधाओं के निराकरण के लिए प्रेमी या प्रेमिका द्वारा संयुक्त या उनमें से एक द्वारा।
4. प्राप्ति-अन्त में इन प्रेमाख्यानों में या तो दोनों का मिलन वर्णित किया गया है अथवा किसी एक या दोनों की मृत्यु।

उपरोक्त चार प्रेम की अवस्थाओं का विश्लेषण अब हम दो अलग-अलग दृष्टिकोण से करेंगे।

मध्यकाल सामन्तीयुग था। देश में परदेश जैसी प्रथायें स्त्री और पुरुष के मिलन या दर्शन के अवसरों को प्राय: समाप्त कर चुकी थी। सम्भवत: यही कारण था कि सूफी कवियों को या तो गुण श्रवण व चित्र दर्शन जैसे अविश्वसनीय से लगने वाले घटनाक्रम का सहारा लेना पड़ा या हास्यास्पद लगने वाली स्वप्न दर्शन प्रसंग का। अधिकांश सूफी प्रेमाख्यानों में प्रयत्न व संघर्ष नायक को ही करना पड़ा जिसका कारण सम्भवता यह था कि परदे में घिरी महिलाओं के द्वारा ही प्रेमिका

---

31. कबीर उपरोक्त ग्रंथावली, पृष्ठ 291।
32. वही, पष्ठ 291।

की प्राप्ति को अभीष्ट समझते थे। हम कह सकते हैं कि इस प्रकार का प्रेम भावुक प्रणय किसी भी अर्थ में माना नहीं जाता। दूसरे दृष्टिकोण से विचार करने पर हम प्रयास और संघर्ष को चार प्रकार से पाते हैं। प्रथम, जुलेखा-युसूफ के प्रसंग में प्रेमिका अनिच्छुक प्रेमी की प्राप्ति का प्रयास करती है। द्वितीय, अनिच्छुक प्रेमिका की प्राप्ति थी। प्रेमी द्वारा प्रयास इन दोनों को ही भावात्मक प्रणय की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। तृतीय प्रेमी द्वारा एक से अधिक प्रेमिकाओं की प्राप्ति का प्रयास या इसका विलोम। चतुर्थ, दोनों का परस्पर आकर्षित होकर मिलन हेतु प्रयास। यह चतुर्थ वर्ग ही भावात्मक प्रणय का आधार है। मिलन के लिए किये जाने वाले संघर्ष की तीव्रता और दीर्घता उनके मध्य के आकर्षण को उत्कृष्ट और प्रेमपात्र को प्रियतर बनाते हैं। प्राप्ति का ये संघर्ष यदि अनिच्छुक प्रिय पात्र के लिए है तो इसमें आत्मपीड़न और गृहीत्याग आदि संघर्ष के माध्यम हो सकते हैं। एक से अधिक प्रेमी या प्रेमिकाओं में किसी एक की प्राप्ति के लिए संघर्ष तर्क संगत है। किन्तु सत्य तो यह है कि अधिकाँश प्रेमाख्यानों में संघर्ष समाज और प्रेमियों के मध्य होता है। प्रेमी और प्रेमिका के मिलन में धर्मशासन समाज और परिवार के साथ-साथ पालतू तोतामैना और कुत्ता आदि भी बाधन बने हैं। यह एक विडम्बना है कि जिस प्रेम को मनुष्य के लिए ईश्वर का वरदान और जीवन का अभिन्न अंग माना गया है। उसे समाज ने कभी नहीं स्वीकारा। यही कारण है कि कुछ पाश्चात्य विद्वानों को यह कहना पड़ा कि सामाजिक व्यभिचार ही साहित्य में वर्णित और स्वीकृत प्रणय है। प्रेमाख्यान में प्रणय को साहित्य में स्वीकृत होने के साथ ही सामाजिक स्वीकृति दिलवाने के लिए धार्मिक और दार्शनिक उद्देश्यों एवं विवाह आदि समाज के स्वीकृत मान्यताओं से समन्वयीत रखा गया है।[33] विवाह आदि संस्कार सम्बन्धित निम्न पंक्तियों का उल्लेख अप्रसांगिक न होगा—

> **लगन धरी राजा जब, न्योत फिरा चहु पास।**
> **राग रंग घर-घर सबै, दोउ दिशि भयो हुलास।।**
> **दोउ दिशि बाजा आनन्द बधावा। जब राजा कर मंडप छावा।**

अब हम प्रेम के उस रूप की चर्चा करेंगे जिसे प्रेम मार्गीय सूफियों से अपनाया है। सूफियों के अनुसार प्रेम ज्ञान परस्पर विरोधी हैं। ज्ञान की उत्पत्ति जिज्ञासा और शंका से होती है। शंका द्विविधा को जन्म देती है। और द्विविधा मन को भ्रमित करती है। जब कि प्रेम मार्ग एक निष्ठा का अनुगामी है। यही कारण है कि 'सूफी मानते हैं कि बुद्धि तर्क और मीमाँसा, प्रेम की अग्नि में भस्म हो जाते हैं—

---

33. मध्यकालीन धर्म साधना-पृष्ठ 225।

मन की दुविधा छाँड़िके, जो धावे धर भेख।
निर्मल भ्रमर सवारि के, दरस आरसी देख।

उसमान के अनुसार ज्ञान-ध्यान, जप, तप, संयम नियम सबका महत्व प्रेम के सम्मुख तुच्छ है। संसार में वही श्रेष्ठ है जो प्रेम का प्रतिपालन करता है। प्रेम का स्थान सर्वोच्च है, यदि सच्चा तो प्रेम हो सके। प्रेम की भावना गंगा के समान पवित्र है। जिसकी प्राप्ति से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं।[34]

सूफी प्रेम को सब कुछ मान, अन्य भावों की उपेक्षा करते हैं वे भली-भाँति जानते हैं कि प्रेम सब रसों का मूल है एक सूफी का उद्गार है 'अगर इश्क न होता, इन्तजाम आल में सूरत न पकड़ता। इश्क के बगैर जिन्दगी बवाल है। इश्क को दिल दे देना कमाल है। इश्क बनाता है। इश्क जलाता है। दुनियां में जो कुछ है इश्क का जलवा है। आग इश्क की गर्मी है। हवा इश्क की बेचैनी है। पानी इश्क की रफ्तार है। खाक इश्क का क्याम है। मौत इश्क की बेहोशी है। जिन्दगी इश्क की होशियारी है। रात इश्क की नींद है। दिन इश्क का जागना है। मुस्लिम इश्क का जमाल है। काफिर इश्क का शौक है। दोजख इश्क का जोक्र है।'[35]

सूफी कवि प्रिय के रूप की कल्पना मधुवाला या साकी के रूप में करते हैं।[36] इस प्रेम चित्रण में आलम्बन परम सौन्दर्य शाली महान सत्ता और आश्रय जीवात्मा होती है। जो परमसत्ता से दूर होकर विरह सह रही है। परमसत्ता का साक्षात्कार उसकी अभीष्ट है। वह सुख-दुःख या स्वर्ग नरक के बीच स्वयं को भ्रमित न करके निष्काम भाव से उद्धान्त प्रेमी को पाना चाहता है।[37]

सूफीमत साधना और साहित्य में 'प्रेम' का अतीव महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी साधना प्रेम की साधना है। उनका साधन मार्ग प्रेम पंथ है। उनका प्राप्य

---

34. ज्ञान ध्यान यद्धिम सबं, जप तप संयम नेम।
    मान सो उत्तम जगत जन, जो प्रतिपारो प्रेम।
    (उसमान-चित्रावली-पृष्ठ 236)
35. तसब्बुफ अथवा सूफीमत, श्री चन्द्रवली पाण्डेय।
36. मोरे कलवरिया की दारू अंगूरी। जिन पीवत ही चढ्यो वह सूरी।
    एक बूंद वह जिनका पियाओ। पल भर मा कैलास चढ़ायो।
37. नाहीं सरग का चाहौं राजू। न कोहि नरक किछु कालू।
    चाहो ओहिकर दरसन पावा। जेइ मोहि आनि प्रेम पथ लावा।
    (जायसी-पद्मावत्)

प्रेम-प्रभु है। उनका 'एक भरोसा एक बल एक आस विश्वास'[38] 'प्रेम' ही है। यदि सूफी साधकों को प्रेमी साधक के नाम से अभिहत किया जाय तो अनुचित न होगा। 'प्रेम' उनके काव्य के समस्त प्रतीकों में सर्वश्रेष्ठ प्रतीक है। सूफी चाहे जिस किसी को प्रेम का पात्र कहें परन्तु उनका प्रियतम परमात्मा ही है। उसी प्रियतम को वे अपने प्रेम का अवलम्बन मानते हैं। प्रेम के पुल पर चढ़कर ही सूफी साधक भवसागर पार करते हैं। प्रेम ही उनका अमोघ शस्त्र है, वहीं उनका परम साधन है।[39]

सूफियों ने जिस प्रेम साधना को अपनाया वह अव्यक्त के प्रति प्रेम है जिसे वे साधारण नायक-नायिका के रूप में व्यक्त करते हैं। यद्यपि इनका प्रसंग सामान्य प्रेम का होता है लेकिन संकेत आध्यात्मिक प्रेम के प्रति होता है। वे बीच-बीच में आने वाले रहस्यात्मक स्थल पर परम तत्व का आभास देते हैं और सम्पूर्ण सृष्टि को उसी एक से मिलाने का प्रयत्न करते हैं। सूफी प्रेम साधना सौन्दर्य केन्द्रित है।

वस्तुतः जहां सौन्दर्य है, वहीं प्रेम है और जहां प्रेम है वही सौन्दर्य भी। सौन्दर्य और प्रेम मिलकर सुख की वृद्धि करते हैं। प्रेम ही विरह का मूल है। संयोग के सुख ही वियोग के दुःख हैं। प्रेम में जितना सुख होता है वियोग में दुःख की मात्रा भी उसी अनुपात में होती है। जिस प्रकार प्रेम में विरह अनिवार्य है उसी प्रकार विरह में ताप व तड़पन और व्याकुलता भी स्वाभाविक है। प्रेम जन्य वेदना की असत्यता और उसकी पीर का अनुभव जायसी को हुआ वे कहते हैं—

'मुहम्मद विनती प्रेम कै सुनि महिं गगन डेराइ।
धनि विरही औ धनि हिया, जौ अस अजिन समाइ।

× × ×

प्रीति बेलि जनि उरझै कोई, अरुझै मुये न छूटे सोई।
प्रीति बेलि ऐसे तन डाढ़ा, पलुहत सुख, बाढ़त दुःख बाढ़ा।
प्रीति अकेलि बेलि चढ़ि धावा, दूसरि बेलि न संचरै पावा।[40]

---

38. तुलसीकृत दोहावली, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ 96।
39. पद्मावत का काव्य सौन्दर्य, डा० शिव सहाय पाठक, पृष्ठ 220।
40. जायसी ग्रन्थावली, (भूमिका), सं० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 63।

इस प्रेम को सब नहीं समझ सकते हैं जिसे प्रेम बाण लगता है केवल वही इसकी अनुभूति कर सकता है—

'प्रेम घाव दुःख जान न कोई,
जेहि लागै जाने पै सोई ।[41]

मंझन की दृष्टि में यही प्रेम प्रकाशमय, उज्ज्वल और पवित्र है, यह प्रेम सौभाग्य सूचक है—

'प्रेम जोति समसिष्टि अंजोरा, दोसर न पाख प्रेम कर जोय ।
विरुला कोई जाके सिर भागू । सो पावै यह प्रेम सोहागू ।'

इस प्रकार प्रेम जन्य विरह की पीर, कथा और नाना प्रकार के मानसिक एवं शारीरिक उत्पीड़न उस विरह तत्व से एकमेव होने के ही साधन और सोपान हैं । इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सूफियों और सन्तों दोनों ही ने प्रेम को माध्यम स्वरूप स्वीकार किया ।

ईरानी प्रेम पद्धति का स्वरूप

मुसलमान खुदा की ताकत को जानकर उसके बचन और कृपा पर श्रद्धा रखते थे । तत्कालीन शामी जाति बाल का आदेश, ईस्तर आदि देवताओं की पूजा करती थीं । इस जाति के लोग अपनी मनोकामना पूरी होने पर अपनी सन्तानों को इन देवताओं के मन्दिरों में समर्पित कर देते थे । इन समर्पित लड़के और लड़कियों के जमघट ने कालान्तर में इन मन्दिरों को काम-क्रीड़ा का स्थल बना दिया जिससे हुआ यह कि अनुयायियों के विरोध के कारण यह पूजा और सन्तदान समर्पण की प्रथा कम होने लगी। शामी के विचारधारा से प्रभावित इस्लाम धर्म से सूफी सम्प्रदाय जुड़ा हुआ है । सूफियों ने उस भक्ति पद्धति में दर्शन और चिंतन का समावेश किया और इस प्रकार उन्होंने उसकी मूल भावना रहस्यहाल और मादनभाव सूफियों ने शामी संस्करण से हो पाए, या यों कहें कि सूफी मत में प्रेमभाव का आविभाव शामी जाति के कारण ही हुआ था । इकबाल अली शाह ने कहा है— 'सूफी भावधारा का आदि उद्‌गम मोहम्मद साहब की शिक्षा और व्यक्तित्व में था तथा इसका आरम्भ आनन्दातिरेक की अवस्था में हुआ होगा ।

मोहम्मद साहब के पश्चात् खलीफाओं के युग में इस्लाम धर्म का प्रसार फिलीस्तीन मिश्र, ईरान आदि अनेक देशों में हुआ किन्तु साथ ही खलीफा की निजी

41. वही, पृष्ठ 64 ।

इच्छा धर्म से अधिक महत्वपूर्ण बनती हुई। खलीफाओं के बाद के सुल्तानों के युग में तो स्थित यह हो गई थी कि सुल्तान की निजी इच्छा किसी कार्य को हलाल या हराम निर्धारित करती थी। सूफियों ने इस व्यवस्था से नाता तोड़कर राज्य सत्ता से भयभीत हुए बिना धर्म और राजनीति को पृथक क्षेत्र घोषित किया। सूफियों ने जिक्र और तब्बकुल की भावना तीव्रतम रूप में अपनाई और संन्यास व तपस्या को प्रधानता देकर ईश्वर चिन्तन में लीन होने को अपना मुख्य लक्ष्य बनाया। यह समय हिजरी की दूसरी शताब्दी का था। इस युय के प्रमुख सूफी सन्तों इब्राहिम विन अधम, फुजायल बिन अदाज, आदि ने ईश्वर के प्रति भय की भावना धन के प्रति निस्पृहता और ईश्वर के प्रति एकनिष्ठ निस्वार्थ प्रेम का सूफी मत में समावेश किया। लगभग इसी समय ईसा के अनुयायियों में मतभेद के कारण बुद्धिवादी नास्तिक सत अस्तित्व में आया। इस मत में इस काल के सभी मतों का सार एवं ईश्वर के प्रति अटूट प्रेम की भावना थी। प्रायः यही कारण है कि प्रेमभाव के विकास को आधार मानकर कुछ विद्वान सूफीमत को पूर्वरूप नास्तिक मत भी मानते हैं। इस युग की अन्य प्रमुख सूफी सन्त सबिया, अल-अदाविया ने एकनिष्ठ प्रेम भावना ईश्वर चिन्तन आत्म समर्पण और पूर्ण आस्था की भावना को प्रधानता दी। मार्गरेट स्मिथ ने राविया के बारे में लिखा है—

'She the secluded one was clothed with the clothing of purity and was on fire with love and louging and was enauour-ed; of the desire to approach the lord and be cousuned in his glory. She was a mary and a spatlers women.'[42] राविया ने ही सूफी मत में माधुर्यभाव की स्थापना की थी। अपने परम प्रेम को इन शब्दों में स्पष्ट किया है—'हे स्वामी ! तारे आकाश में झिलमिला रहे हैं, शहनशाहों के दरवाजे बन्द हैं, लोक आलस्य निद्रा में सोये हैं, प्रत्येक प्रेमी अपनी प्रेमिका के साथ है और मैं यहां अकेली।'[43] एक अन्य स्थल पर निष्काम भाव से ईश्वर की आराधना करते हुए कहती है—'हे ईश्वर मैं आपको द्विविध प्रेम करती हूं एक तो स्वार्थपूर्ण कि मैं आपके अतिरिक्त और किसी का ध्यान नहीं करती, दूसरा शुद्ध प्रेम है कि जब आप मेरे मन पर पड़े आवरण को हटा देते हैं तो मैं आपका साक्षात्कार करती हूं। दोनों ही रूपों में श्रेय आपका है, यह आपकी ही कृपा प्रसाद है।' रावियो ने लौकिक सुखों के लिए ईश्वर से कुछ भी मांगना लज्जा की बात बताया। उसके अनुसार पवित्रता

---

42. The early development of Mahamanadanisn—D.S. Margoliough p. 144.
43. Rabia the Mystric—Margrat smith page 54.

पूर्वक एकान्त जीवन बिताने और शरीयत के नियमों का पालन करने का ही प्रतिफल ईश्वर का साक्षात्कार बताया है इस प्रकार नश्वरता असारता और अस्थिरता का ज्ञान होने से ही सूफी वैभव से घृणा कर ईश्वरोन्मुख हुए यह उल्लेखनीय है कि इस प्रकार के सूफी संतों ने भयजनित संन्यास में प्रेम का संचार तो किया किन्तु पूर्ण समर्पण और प्रेम में तर्क और बुद्धि के विकास के कारण पूर्ण प्रतिष्ठा नहीं दिला पाये। ईरान की आर्य संस्कृति बुद्धि और तर्क में पहले सही ही पटुथी और अब इस्लाम धर्म को अपना रही थीं। दो संस्कृति और तर्क पद्धति के मिलन का प्रभाव सूफी संतों पर पड़ा। वे अब कुरान और हदीस के साथ-साथ मोहम्मद साहब या खुदा के शब्दों के द्वारा अपनी जिज्ञासा का उत्तर चाहने लगे थे इस काल में सूफीमत का क्षेत्र विस्तार हुआ और वह भावात्मक आत्म समर्पण से ऊपर उठकर परमात्मा के अस्तित्व से अपना अस्तित्व मिलाकर आनन्द में डूबने लगे। मुल्लाओं और शासकों के इस विरोध के कारण बहुत से सूफी मारे भी गये।

890 ई० को मुसलमान शासक मामून कुरान की शाश्वतता का विरोधी था जिसका कारण तर्क और बुद्धि को प्रश्रय था इस काल के प्रसिद्ध सूफियों करखी, अबूसुलेमान दरानी, जुलनून मिस्त्री आदि का कहना था कि व्यक्ति का वासना से परे रहना कठिन है। इन्होंने माना कि सच्चा सूफी ईश्वर चिन्तन में लीन रहते हुये, उसका आश्रय पाता है और ईश्वरीय अर्थों के लिये ही कार्य करता है इन्होंने लिखा कि वास्तविक ज्ञान उसी हृदय में होता है जिसमें ईश्वर की कृपा का प्रकाश होता है। जिस प्रकार की सूर्य के प्रकाश में सूर्य को देखा जा सकता है। परमात्मा के निकट पहुंच कर साधक अह्म से दूर होता है। जुलनून ने समाहाल, तौहीद, तोबा, करामात आदि विषयों पर व्यक्त अपने विचारों के द्वारा प्रेम को ही साध्य के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। इस नयी विचारधारा की प्रतिष्ठा के कारण इन्हें इस्लाम विरोधी और जिन्दीक घोषित कर दिया गया। खलीफा मुतवक्किल ने जुलनून को कारावास भी दिया यद्यपि बाद में वह उसकी साधना और ज्ञान से प्रभावित हुआ। जामी ने जुलजून को 'नफहातूलउन्स' में तो सूफीमत का प्रथम प्रचारक ही बताया है जरथ्रुष्ट के उपासक शरवाशां के पुत्र बायाजीद विस्तामी सूफीमत में तौहीद और मुहब्बत की भावना की स्थापना की और इस प्रकार अद्वैतवाद को जन्म दिया। तद्स्वरातुल 'औलिया' में बायाजीद ने कहा है कि 'मेरी इस काया के अन्तर्गत भगवान के अतिरिक्त और कुछ नहीं है और मैं धन्य हूं मेरा प्रभु कितना विराट और असीम है।' उसके इस कथन से सूफीमत के प्राणवाक्य सर्वात्मवाद का प्रतिपादन होता है। मजीद ने फना या निर्वाण के प्रतिपादन के द्वारा सूफी मत को ईरानी आर्य संस्कारों से पुष्ट किया। जुलनून और मजीद दोनों ने ही पीर के महत्व को प्रतिपादित किया। जुलनून ने कहा कि ईश्वर की आज्ञा से गुरु की आज्ञा महत्वपूर्ण है तथा मजीद ने गुरुहीन साधक को शैतान का उपासक बताया। अपने प्राणों की

आहुति देने वाले मंसूर ने आत्मोत्सर्ग की सराहना करते हुए स्वयं को सत्य एवं आत्मरूप कहा उमर खैय्याम, निजामी, सादी, रूमी, हाफिज, जामी आदि । कवियों ने अपनी सशक्त रचनाओं द्वारा फारसी साहित्य की अभिवृत्ति के साथ ही प्रेम और विरह के आधार पर प्रेमाभिव्यक्ति कर सूफी धर्म में सरलता भरी ।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कबीलायी, इस्लाम धर्म समिष्ट भावना, व्यक्ति अवमानना और विवाह सम्बन्धों की पवित्रता वहां भी विशेष भावुक आकर्षण को जन्म देती है जिसका वृत्त लौकिक न होकर आध्यात्मिक व धार्मिक होता था परन्तु सूफी प्रेम साधना नर नारी के सहज मुक्त एवं सशक्त आकर्षण पर आधारित है । सहज जैविक लालसा भावनात्मक धरातल पर आकर सामाजिक स्वीकृति के लिए रहस्यवादी स्वरूप धारण कर लेती है । इसका कारण यह है कि ईमानदारी के स्तर पर विधि निषेध को स्वीकार करने वाला वर्ग जहां इसे प्रतीकात्मक रूप में ग्रहण करने के लिये अग्रहशील रहता है वहां इसका लौकिक आकर्षण समाज में इन प्रेमाख्यानों को प्रसिद्ध और लोकप्रियता दिलायी है ।

भारतीय प्रेम पद्धति का स्वरूप

यद्यपि यह सत्य है कि भारत ने विश्व की प्रेम भावना या लहर को सर्वाधिक प्रभावित किया है किन्तु यह सत्य है कि विश्व के अन्य देशों जैसी उत्कट तन्मयता तथा एकान्तिक भावुकता से पूर्ण प्रणय भारतीय साहित्य में प्रायः दुर्लभ है । ऋग्वेद की प्रथममूलक रचनायें एवं सूफी प्रेमाख्यान इसके अपवाद हैं । भारत में आर्यों के आगमन से पूर्व यहां पर व्यक्ति केन्द्रित तथा आत्म निरोधात्मक विचार परम्परायें थीं । भारत आगमन से पूर्व घुमक्कड़ आर्यों में पितृसत्तात्मक एवं सामन्तवाद विकसित हो चुका था ।[44] भारत में स्थाई रूप से बसने पर सम्पत्ति तथा उत्तराधिकार परम्परा का विकास हुआ । नर संतान का महत्व बढ़ा और स्त्री हीनता का सूत्रपात हुआ[45] दूसरी ओर अनार्य जातियां आर्यों की उपेक्षा अधिक प्रगतिशील और मुक्त रही है ब्रह्मणेत्तर सम्प्रदायों में संन्यास एवं त्याग का आग्रह स्त्री के प्रेम की अवमानना का कारण बना परिणामतः प्रेम का वैसा विकास यहां पर नहीं हो सका जैसा यूरोप और अरब देशों में हुआ । भारतीय साहित्य में प्रेम सम्बन्धी प्राचीनतम सूत्र वैदिक आख्यानों में मिलते हैं । ऋग्वेद में निजनधारी-पौराणिक अथवा कथात्मक

---

44. इण्डियन वोमेन थ्रू दि एजेस, पृष्ठ 79 ।
45. प्राकृत साहित्य का इतिहास (उपदेश माला प्रकरण) पृष्ठ 517 ।

दूतिवृत्तों को जन साहित्य का अवशेष आना माना है।[46] उवर्शी पुरुषस्य की कथा शायद विश्व का प्रथम ज्ञाता, प्राचीनतम, प्रेमाख्यानं है।'[47]

इसमें मानव पुरुस्वः तथा देवयोनि की अप्सरा के प्रेम मिलन तथा विरह के संकेत मिलते हैं। शतपत ब्राह्मण में इस प्रेमाख्यान का विस्तार के वर्णन है।[48] न्यूनाधिक परिवर्तनों के साथ इस प्रेम कथा का वर्णन कृष्ण यजुर्वेद, महाभारत (वनपर्व-46-अध्याय) विष्णु पुराण (अंश 8 अध्याय 6), वायु पुराण॰ (अध्याय 91), ब्रह्म पुराण अध्याय 10, 101, और 131 (विष्णु धर्मोत्तर प्रथम खण्ड 130-6) हरिवंश पुराण, श्रीमद्भागवत, कथा सरित सागर तथा कथा मंजरी में मिलता है। महाकवि कालिदास के अमरनाटक विक्रमोवंशीय इस प्रेमाख्यान को उसके चरमोत्कर्ष पर वर्णित करता है। ऋग्वेद के सरल प्रेमाख्यान को विशिष्ट यज्ञादि की प्रतिष्ठा का साधन बनाने का प्रयास हुआ है। ऋग्वेद में वर्णित प्रेमाख्यानों को विशिष्ट यज्ञादि की प्रतिष्ठा का साधन बनने के साथ-साथ उसमें वर्णित प्रेमाख्यान छोटे होते हुए भी लौकिक यथार्थता और सजीवता से पूर्ण है। वास्तव में इसमें पुरुष को उसकी पूर्व प्रेमिका द्वारा त्यागे जाने की सशक्त लौकिक कथा है। ऋग्वेद का दूसरा महत्वपूर्ण प्रेमाख्यान उस काल का एक महत्वपूर्ण सूत्र है जिसमें आदिम युगीन निबन्ध यौवनाकर्षण व संतति प्रसार की भावना एवं बदली हुई परिस्थिति में उसे वर्जित सम्बन्ध या व्यभिचार माने जाने का द्वन्द्व चित्रित हुआ है। 'यह कथा उन्मुक्त सम्बन्ध काल का अवशेष एवं इसमें कामासक्त बहन अपने भाई से सहज यौवन सम्पर्क की कामना करती है। इस दृष्टि से यह सामाजिक एवं नृपत्व शास्त्रीय विकास क्रम से सम्बन्धित महत्वपूर्ण रचना है।[49] ऋग्वेद की अन्य प्रेमकथा श्यावास्व[50] की कथा इस कथा में ऋषि अर्चनाना के पुत्र श्यावास्य और राज रघविति की मनोरमा की कथा है जिसमें वह तपस्या कर ऋषीत्व प्राप्त करता है और अंत में मनोरमा को प्राप्त करने में सफल हो जाता है। इस कथा में भावुक प्रेम के स्थान पर पितृ सत्तात्मक सामन्ती वर्ग की कन्या प्राप्ति का रूढ़िगत स्वर प्रश्वर है। शुन्हसेफ की कथा में प्राचीन मानव के क्रियाकलापों और नरवलिका वर्णन है।[51] इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में अगस्त व लोपामुद्रा

---

46. सम प्राब्लम आफ इण्डियन लिटरेचर, पृष्ठ 4-11।
47. ओरिजन आफ हिस्टोरिक्स 7 इपेन्डे, पृष्ठ 245।
48. शतपथ ब्राह्मण (11 कोंड, पंचम अध्याय, प्रथम ब्राह्मण) चतुर्थ भाग, पृष्ठ 2575 से 2583 तक।
49. ऋग्वेद (मंडज-10, सूक्त 10) पृष्ठ 1022-23।
50. वही मंडल 5, सूक्त 61।
51. सम प्राब्लम्स आफ इण्डियन लिट॰ पृष्ठ 12-13।

(1-176) देवर्षि और शान्तनु (10-68) आदि कथानक मिलते हैं ब्राह्मण तथा अरणयक मूलत: कर्मकाण्ड से सम्बन्ध है इनमें आयी कथाओं को कर्मकाण्ड के मरुस्थल में स्थित निजन्धरी तथा लोक कथाओं को शाद्वल की संज्ञा दी जाती है।[52]

महाभारत से परवर्तीय पुराण विकसित हुए। पुराणों के परवर्तीय प्रेम कथात्मक साहित्य की दृष्टि से उर्वशी-पुरूवस्य शकुन्तला, ऊषानुरुक्त, रुक्मिणी हरण; प्रद्युम्न, मायावती, सुभद्राहरण से सम्बन्धित प्रेमाख्यान प्रमुख है।

बौद्ध कालीन साहित्य में त्याग व निर्माण में स्त्रियों को बाधा स्वरूप माना जाता रहा, फिर भी उस काल की जातक, कथाओं में कतिपय सूत्र प्राप्त होते हैं। कट्ठधरी जातक, सुजाता जातक, सुरुचि जातक, कुंश जातक आदि में प्रणय की शुरूआत के लिए प्रथम चित्र दर्शन स्वप्न दर्शन और गुण श्रवण जैसी स्थापित रूढ़ियों का उपयोग हुआ है तथा उन्मादन्ती जातक में मंत्री राजा के मुग्ध होने के कारण उसे अपनी पत्नी दान कर देता है। ऐसा ही प्रसंग हिंदी के पद्मावती प्रेमाख्यान में भी आया है। संक्षेप में बौद्ध काल में भी प्रेम एवं प्रेमाख्यान की परम्परा ने अपना स्वरूप खोया नहीं।

बौद्धों की कहानियों को जैन कवियों ने रूपकों के माध्यम से प्रस्तुत किया जिसमें नैतिक उपदेशों का बाहुल्य था रूपकों के अतिरिक्त जैनियों के धर्म कथाओं में प्रेमाख्यानों का रूप बौद्ध की कहानियों से कहीं-कहीं अधिक मिलता है। जैसे 'भविष्यत कथा' और 'जसहर-चरिउ' धर्म कथा के साथ-साथ प्रेमाख्यानों की श्रेणी में गिने जाते हैं इन कवियों ने पूर्ववर्ती प्रेमाख्यान परम्परा के प्रमुख तत्वों को सुरक्षित रखते हुए उनमें कई नूतन प्रवृत्तियों का विकास किया उन्होंने गद्य के स्थान पर दोहा—चौपाई से मिलती-जुलती पद्यात्मक शैली का प्रयोग किया। साथ ही कथा की परिणिति शांत रस में करके नायक-नायिका को संन्यास की ओर अग्रसर कर दिया। इतना होते हुए भी उन्होंने सौन्दर्य-प्रेम और विरह की व्यंजना में पूर्णतया धर्म निरपेक्ष दृष्टि का परिचय दिया है।

इस प्रकार यह प्रेम परम्परा महाभारत के प्रेमाख्यानों से लेकर अपभ्रंश के कवियों तक अनेक रूपों, तत्वों और प्रवृत्तियों को ग्रहण करती हुई आधुनिक भाषाओं में पहुंची। और इस प्रकार इसी परम्परा के अनुकूल सूफियों ने हिन्दी में अपनी कविताओं को रूप प्रदान किया। अत: बिल्कुल यह कहना कि सूफियों की प्रेम परम्परा विशुद्ध मसनवी शैली पर है, बहुत समीचीन प्रतीत नहीं होता। आचार्य शुक्ल ने भी इस बात को इस प्रकार स्पष्ट किया है 'चौपाई, दोहे की ये परम्परा हम

---

52. ए हिस्टरी आफ इण्डियन लिट० 208।
53. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल।

आगे चलकर सूफियों की प्रेम कहानियों में, तुलसी के रामचरितमानस में तथा क्षत्रप्रकाश, व्रजविलास, सबल सिंह चौहान के महाभारत इत्यादि अनेक काव्यों में पाते हैं।'[53] इस प्रकार 'इसमें कोई सन्देह नहीं कि हिन्दी प्रेमाख्यानों की शैली को फारसी मसनवियों से अनुकूल बताना उतना ही असंगत है जितना कि उनकी प्रेम पद्धति और विषयगत प्रवृत्तियों को भारतीय बताना।'[54]

भारतीय प्रेमाख्यानों में जिस प्रकार की प्रेम परम्परा और उसके रूप चित्रित हुए हैं उनका वर्णन भी कर देना यहां उपयुक्त प्रतीत होता है। प्रेम का अखंड सूत्रपात महाभारत से होता है। महाभारत काल से पूर्व जहां भारतीय समाज में अति मर्यादावादी दृष्टिकोण की प्रमुखता दिखाई पड़ती है वहीं महाभारतीय समाज में हम स्वच्छन्द प्रणव भावना का उन्मूलन व विकास देखते हैं। उसमें वर्णित विभिन्न प्रसंगों से स्पष्ट होता है कि उस युग में प्रणय के क्षेत्र में जाति कुल वर्ग व लोक मर्यादा का विचार बहुत कुछ शिथिल हो गया था तथा सौन्दर्य की प्रेरणा से ही प्रेम और विवाह सम्बन्ध स्थापित होने लगे थे। इस क्षेत्र में आर्य अनार्य का भेद लुप्त हो गया था। प्रणय स्वप्नों की पूर्ति के लिए सामाजिक मर्यादाओं का उल्लंघन, नायिका का बलपूर्वक अपहरण अनुचित नही माना जाता था। इसी युग से स्वच्छंद प्रेमाख्यानों या रोमान्स साहित्य का प्रवर्तन माना जा सकता है। यही प्रवृत्तियाँ पर्वतीय साहित्य में बराबर प्रचलित रही जैसे—नायक-नायिका के अप्रत्यक्ष परिचय से प्रेम की उत्पत्ति, हंस के द्वारा सन्देशों का आदान-प्रदान, नायक-नायिका के मिलन में अनेक आघातों की उपस्थिति, परिस्थितिवश नायक-नायिका का विच्छेद एवं पुर्नमिलन। इसमें सौन्दर्य, प्रेम विरह का चित्रण सर्वत्र रोमानी शैली में हुआ इसलिए संस्कृत और हिन्दी और अनेक पर्वतीय कवियों ने इससे प्रेरणा लेकर के विभिन्न प्रेमाख्यानों की रचना की।

भारतीय प्रेमाख्यान काव्यों की मूल भावना प्रणय या शक्ति है। इस दृष्टि से इन्हे शृंगार प्रधान कहा जा सकता है, लेकिन यह शृंगार गार्हस्त्य शृंगार की कोटि में ही आता है। जिस प्रकार का शृंगार हमें सूफियों में मिलता है जिसमें सामाजिक मर्यादाओं और परम्पराओं को बहुत अधिक महत्व नहीं दिया गया। उन्होंने प्रेम को जीवन में सर्वोपरि तत्व मानते हुए उसके प्रति अत्यन्त उच्च एवं उदात्त दृष्टि का परिचय दिया है। जिससे इनका प्रणय सामाजिक, नैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक आदि सभी बाधाओं, सीमाओं व कुंठाओं से मुक्त होकर अपने सहज स्वाभाविक तथा पूर्ण विकसित रूप में प्रस्फुटित होता है। इतना होते हुए भी यह

---

54. वही, सम्पा० डा० नगेन्द्र, पृष्ठ 135।

नहीं माना जा सकता कि यह प्रेम विशुद्ध विदेशी है। इसमें भारतीय परम्परा है और भारतीय संस्कृति की विकास रूप रेखा पर ही आगे चलकर हिन्दी प्रेमाख्यान काव्य अपने रूप को सजा-संवार कर प्रतिष्ठित हो पाया।

ईरानी और भारतीय पद्धतियों में समन्वय

अरब प्रदेश मध्यकाल तक पश्चिमी संसार तथा भारत के बीच महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में रहा है। भारत व अरब के सम्बन्ध बहुत पुराने हैं। इस्लाम-पूर्व दक्षिणी अरब व यमन की सभ्यता का उद्गम भारतीय माने जा चुके थे तथा उस काल में ही अरबी, यहूदी तथा भारतीय विश्वासों का सम्मिश्रण हो गया था।'[55] ईरान व अन्य अरबी देशों के साहित्यिक सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ एवं प्राचीन रहे हैं, यहां तक कि भारतीय साहित्य की कई पुस्तकों के अंग्रेजी व अन्य यूरोपीय भाषाओं के अनुवाद उनके अरबी अनुवाद को आधार मानकर किये गये हैं। सूफीमत के शामी अरबी मूल के होने पर भी सभी विद्वान उस पर गहन भारतीय प्रभाव को स्वीकार करते हैं।[56] यूरोपीय रहस्यवाद पर भी भारतीय आत्म एवं ब्रह्म सिद्धांत का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव स्वीकार किया जाता है।[57] ईरान तथा भारत के सम्बन्ध तो और भी प्राचीन एवं घनिष्ठ रहे हैं।[58] इस अवस्था में मध्यकालीन भारतीय तांत्रिक-शक्ति विचारधारा का फारस तथा अरब देशों में पहुंचाना सर्वथा स्वाभाविक था। किसी समाज में अपनी आंतरिक या किसी बाह्य प्रेरणा के प्रभावान्तर्गत विकसित होने के लिए सामाजिक वातावरण में ही उसके प्रेरक तत्व विद्यमान रहते हैं। इन्हीं के कारण कोई समाज या साहित्य समान धर्म विचार एवं मान्यताएं आत्मसात करता है।

यद्यपि भारत में विश्व की प्रेम मूलक लहर को सर्वाधिक प्रभावित किया है फिर भी भारतीय साहित्य में ईरान या यूरोप की तरह की तन्मयता एवं एकांतिक भावुकता पूर्ण प्रणय दृष्टिगोचर नहीं होता।

यह विचित्र स्थिति है कि विश्व की रोमांसिक लहर को अत्यधिक प्रभावित करने वाले भारत के साहित्य में यूरोप की तरह की उत्कृष्ट तन्मयता तथा एकान्तिक भावुकता से पूर्ण प्रणय के प्राय: दर्शन नहीं होते। ऋग्वेद की प्रणय मूलक रचनायें तथा मध्यकालीन मुसलमान कवियों के प्रेमाख्यान ही इसके अपवाद हो सकते हैं। ऋग्वेद

55. सूफीमत और हिंदी साहित्य, डा० विमल कुमार जैन, पृष्ठ 6-7।
56. मध्यकालीन धर्म साधना, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 254।
57. सम प्राबलम आफ इण्डियन लिट० पृष्ठ 59।
58. फारसी साहित्य की रूपरेखा, अली असगर हिकमत, पृष्ठ 107-108।

की रचनाओं की सी जीवान्त रचनाएं पर्वतीकाल में दुर्लभ है।[59] मध्य कालीन मुसलमान कवियों का लोकाचारातीत, एकान्तिक प्रेम का चित्रण ही भारतीय साहित्य के लिए नई चीज माना गया है।[60] भारत की सामाजिक-धार्मिक परिस्थितियों का विश्लेषण इसका समाधान प्रस्तुत करता है। आर्यों से पहले पूर्वी तथा मध्य देशीय संस्कृतियों के प्राप्त संकेतों से यह ज्ञात होता है कि वे व्यक्ति केन्द्रित तथा आत्म निरोधात्मक विचार परम्परायें थीं। त्याग, अहिंसा, वैराग्य जैसी विकसित तथा सभ्य मान्यताओं की अनुरागी यह समाज व्यवस्थायें पशुपालक, आक्रमण, सैनिक व्यवस्था-सम्पन्न, वाह्य शक्तियों के उपासक तथा जीवन्त नियमों के अनवर्ती आर्यों के समक्ष भौतिक दृष्टि से अवश्य आसक्त सिद्ध हुई और आर्यों के समक्ष उनका सतत पतन होता गया। आर्य विचारधारा को अपने भौगोलिक वातावरण में स्थानीय परिस्थितियों में बढ़ी पनपी संस्कृतियों ने बहुत अधिक प्रभावी-परिवर्तित किया। इसमें सन्देह नहीं कि वाह्य दृष्टि से विजेता आर्यों ने उन्हें पूरी तरह आत्मसात कर लिया और शीघ्र ही विस्तृत सामाजिक व्यवस्था में उनका आर्य करण हो गया।[61] पर्वर्तीय काल में बौद्ध-जैन, उपनिषिदिक, तांत्रिक एवं योगमार्गी प्रतिक्रियाओं के मूल में यही विचारधारायें विद्यमान एवं सक्रिय रही हैं परन्तु वृहत्तर रूप में आर्यत्व के घेरे में ही स्वीकृत होने के कारण इनकी तीक्ष्णता तथा विशिष्टता अथवा कुंठित हो गई थी।[62]

कृषि जैसी स्थाई सम्पत्ति की प्राप्ति के साथ भारत के स्थाई जीवन में उनके कबीलाई सामन्तवाद को रूढ़ तथा दृढ़ भारतीय एवं राष्ट्रीय सामन्तवाद का रूप प्रदान किया। सम्पत्ति तथा उत्तराधिकारी, परम्परा का विकास नर सन्तान के महत्व तथा स्त्री हीनता के क्रम को आरम्भ करते है।[63] स्त्री स्वातन्त्र अब स्त्री की पुरुषाधीनता की ओर नवागन्तुक आर्यों के आने पर बढ़ता है। नर-नारी के सम्बन्ध में आर्य-अनार्य जातियां प्रगतिशील व मुक्त रही हैं। ब्राह्मण परम्परा की अपेक्षा स्त्रियों की स्थिति में कुछ सुधार का कारण बौद्ध प्रतिक्रिया बनती है।[64] यह तथ्य है कि बौद्ध-जैन परम्परायें सिद्धांत व व्यवहार में सामन्ती व वर्गवादी ब्राह्मण परम्परा के विपरीत समाजवादी तथा भारत की विशिष्ट भौगोलिक परिस्थितियों के प्रभाव

---

59. एसेन्ट इण्डियान एरोटिक्स एण्ड एरोटिक लिटरेचर, पृष्ठ 3।
60. हिंदी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ 49।
61. मध्य कालीन धर्म साधना, पृष्ठ 26-27, 66-67।
62. इण्डियन ओमेन थाट एज-पृष्ठ 79।
63. प्राकृत साहित्य का इतिहास।
64. इण्डियन ओमेन थाट, एज, पृष्ठ 10, 48, 83-84।

में विकसित प्रतिक्रियायें थीं। यूरोप के समान एक ओर ईसाइयत की सी कट्टरपंथी सुधारवादी मनोवृत्ति व निरंकुश सामन्तवाद तथा दूसरी ओर उतना भी सशक्त लोक (पैगाम) यहां विद्यमान नहीं रहा, जिनका परस्पर सम्बन्ध वहां कोर्टेरिया के फूट पड़ने का कारण बना। संस्कृत काव्य के जागरण काल में अभिजात वर्ग में जीवन को पूर्णता जीने की भावना अवश्य प्रबल हुई, तथा शुद्ध मांसल कृतियों की रचना हुई। उनमें रहस्य या प्रतीकात्मकता का आश्रय नहीं लिया गया था पर पितृसत्तात्मक अभिजात के लिए मानसिक बुभुक्षा तृप्ति के साधन वैश्या एवं रखैल परम्परा के रूप में उपलब्ध होने से यूरोप के समान उद्दाम, भावुक, आत्मपीड़क परन्तु उत्कृष्ट प्रणयाभाव का विकास तो क्या प्रायः कल्पना भी नहीं हो पाई। स्त्री का स्थान शाक्त परम्परा तथा तान्त्रिक भक्तों में महत्वपूर्ण होने पर भी व्यवहारिक दृष्टि से पौराणिक हिन्दू समाज की जीवन प्रक्रिया को बदल सकने में ये मत समर्थ नहीं हो सके। ये सम्प्रदाय प्रायः निम्न वर्ग के हाथों में ही रहे तथा असामाजिक एवं गूह्य रूपों में ही प्रचलन हो सका। साधनों में डोम्बी, रजकी आदि निम्न वर्गीय महिलाओं का ही उल्लेख इसका प्रमाण है।[65] ब्राह्मणेतर सम्प्रदायों में संन्यास एवं त्यागवादी आग्रह भी स्त्री के प्रेम की अवमानना का कारण बना तथा ये मतवाद साम्प्रदायिक मतवादों तक ही सीमित रह गये।[66] परिणामतः यह कहा जा सकता है कि प्रेम अथवा कोर्टेजिया के बीज विद्यमान होने पर भी यहां की परिस्थितियों में उनका उस प्रकार का उपयुक्त विकास सम्भव नहीं हो सका जैसा यूरोप तथा अरब देशों में हो सका।

सूफी प्रेमाख्यान का ईरानी, अरबी, फारसी परम्परा से प्रभावित होने के कारण प्रेमतत्व के चित्रण में भावावेश और उत्कृष्टता के संयोजन में किसी सीमा तक सफल रहे हैं। प्रायः इन सभी कृतियों में प्रणयारम्भ विकास, प्रयत्न संघर्ष की सीढ़ियों पर सफलतापूर्वक चढ़ते हुए चरमोत्कर्ष पर पहुंचते हैं। दूसरी ओर इसमें समाज की सीमाओं के अतिक्रमण का चित्रण अपवाद स्वरूप ही मिल सकता है, जिसका कारण सामाजिक सामन्ती मान्यताओं के साथ ही परलोकवादी धार्मिक संस्कार भी रहे हैं। इस प्रकार इसमें पाश्चात्य विद्वानों द्वारा स्वीकार्य प्रेम के आधारभूत तत्व व्यभिचार की छाया तक प्राप्त नहीं होती और इसके विपरीत इनका अन्त विवाह में होता है जो प्रेम तत्व की उत्कृष्टता को कुंठित कर देता है सूफी प्रेमाख्यान का एक प्रकार से विशुद्ध भारतीय संस्कृति, प्राकृत, अभ्रंश परंपरा में आते हैं और समान काव्यरूप रूढ़ियों विधि निषेधों एवं शैली तत्वों का परिपालन करते हैं।

---

65. एसेन्ट इण्डियन एराटिक्स एण्ड एराटिक लिटरेचर पृष्ठ 11।
66. इण्डियन ओमेन थ्रो दि एज, पृष्ठ 222-24।

हिंदू मुस्लिम एकता स्थापित करने के लिए सूफी कवियों ने दोनों की प्रेम पद्धतियों एवं सस्कृतियों में समन्वय कर दिया यथा--ईरानी प्रेम पद्धति में नायक के प्रेम का वेग अधिक तीव्र रहता है और भारतीय प्रेम पद्धति में नायिका का किंतु सूफियों ने तुल्यानुराग की अवस्था को दिखाकर दोनों आदर्शों में समन्वय स्थापित कर दिया है। इसी प्रकार ईरानी प्रेम पद्धति में परिवारिक एवं सामाजिक प्रेम की प्रतिष्ठा के लिए कोई स्थान नहीं रहता, किंतु भारतीय प्रेम पद्धति तो आदि से ही लोक सम्बद्ध और व्यवहारात्मक रही है। उसकी प्रभा जीवन के विभिन्न भागों में फूटती और प्रज्वलित होती है। उदाहरणार्थ राम के द्वारा पुल बांधना, रावण पर आक्रमण आदि को हम केवल प्रेमिका को पाने का प्रयत्न ही नहीं कह सकते बल्कि इनमें एक प्रकार का लोक हित और शौर्य भी निहित है। सूफी कवियों ने अपने काव्य में ईरानियों के एकान्तिक प्रेम के साथ-साथ भारतीय प्रेम के मुख्य अंग लोक व्यवहार को भी समावेश कर दिया है। सूफी काव्य में ऐसे भी प्रसंग हैं जिनमें भारतीय संस्कृति के अनुरूप लोक पक्ष को उभारा गया है, यथा पद्मावत में नागमती का वियोग एक भारतीय नारी का विशुद्ध रूप दृष्टिगोचर हुआ है।

द्वितीय अध्याय

दार्शनिक समन्वय

दार्शनिक समन्वय

आस्था और विश्वास से पार जानने की जिज्ञासा को शान्त करने के लिये विवेकी पुरुष जब तर्क द्वारा निश्चित तथ्य को सोचने का प्रयास करता है वही दर्शन बन जाता है, अर्थात् तर्क और संशय के परिणामस्वरूप किसी सत्य को पा लेना दर्शन के जन्म हेतु बन जाता है। संसार अनेक विषमताओं से युक्त है, जैसे सुख-दुख दिन-रात, व्यष्टि और समष्टि तथा जीवन और मृत्यु, लेकिन इसके साथ इन वस्तुओं की नश्वरता व क्षणिकता जुड़ी हुई हैं। जिज्ञासु व्यक्ति इन्हें शाश्वत व स्थिर रूप देने का प्रयास करता है। उसके आदि और अन्त का पता लगाकर उस अनन्त सत्ता से सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है जो उसका आदि है अर्थात् प्रारम्भ बिन्दु और इस प्रकार उस शाश्वत का बोध हो जाने पर ही जिज्ञासा का दमन होता है। दर्शन का एक मोड़ जीव और जगत के स्थिरता पर भी है जिसे व्यक्ति तर्क के माध्यम से सिद्धांत रूप में प्रतिस्थापित करता है इन स्थापनाओं को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता है हां यह अवश्य हो सकता है कि देश काल और परिस्थितियों के अनुसार उनमें भी परिवर्तन तथा चिन्तन पद्धति में घुमाव आ जाता है इस प्रक्रिया को भी दो रूपों में देखते हैं—एक तो यह है कि वह मान्यता प्राप्त विधि विधानों, रीति-रिवाजों समाज तथा राजनीति को ज्यों का त्यों ग्रहण कर लेता है और दूसरा यह है कि पुरानी मान्यताओं को अस्वीकार कर बुद्धि और तर्क के सहारे नवीन आदर्शों व सिद्धांत की स्थापना करता है।

सूफीमत की विचारधारा पर इस्लामेतर धर्मों को भी बहुत कुछ प्रभाव पड़ गया है। 1. उनकी चिन्तन पद्धति का विकाश चाहे जिस रूप में हुआ हो, परन्तु उसका स्परूप सदा इस्लामी रहा। 2. उनकी दार्शनिकता का मूल आधार कुरान रहा। सूफी चिन्तकों ने उसी के वाक्यों की नवीन व्याख्यायें उपस्थित कीं। उन्होंने कुरान के संकेतों के आधार पर ही नवीन उद्भावनाओं को भी प्रस्तुत किया तथा कुरान अथवा इस्लाम का विरोध करने का प्रयत्न नहीं किया उसी के क्रोड में सूफी-

मत का दार्शनिक विचारधारा पल्लवित हुई। इतना होने पर भी विभिन्न देशों तथा महापुरुषों की निरन्तर प्रभाव के कारण इसमें जो वाह्य बातें समाविष्ट हुई उनसे इसके मौलिक सिद्धांतों में बहुत कुछ मतभेद आ गया है और तभी सूफी-कवि ईश्वर जगत तथा मानव से सम्बन्धित दार्शनिक प्रश्नों के उत्तर देने में मतैक्य नहीं है।

सूफी कवियों का दृष्टिकोण समन्वयवादी है। अर्थात् वे विधिविधान समाज राजनीति, पूजा उपासना को पूर्व स्थापित नियमों के आधार पर ही मानकर चलते हैं। दार्शनिक की दृष्टि, जीवन से दूर देखने को होती है। इसलिए दर्शन के अन्तर्गत संसार की उत्पत्ति और विनाश के कारण, कारक और कारकों के स्वरूप पर भी विचार किया जाता है सूफी मत का उद्‌भव बहुत समय बाद हुआ है अतः दर्शन के क्षेत्र में उन्हें परम्परा से बहुत कुछ प्राप्त था और यही कारण है कि उस पूंजी को संजोकर उन्होंने उसमें और अधिक वृद्धि करने का प्रयास किया है। तात्कालिक व्यवस्था के आधार पर उन्होंने दर्शन जैसे अस्म और नीरस तत्व में प्रेम का रंग चढ़ा कर उसे अनुरागी व लोक प्रिय बना दिया। वस्तुतः सूफी सम्प्रदाय एक ऐसा सम्प्रदाय था जिसमें सरलता सादगी और पवित्रता को ही अपना अभिन्न अंग माना गया था। उनका यह विस्तृत विचार स्पष्ट करता है कि उनके पीछे कोई महत्वपूर्ण सिद्धांतों की पृष्टभूमि तैयार थी। सूफीमत पर विचार करते हुए डा० चन्द्रवली पाण्डेय ने अपनी पुस्तक-तसब्बुफ अथवा सूफीमत में लिखा है—सूफी मत पर नास्तिक, मानी और नव अफला तूनी मतों का प्रभाव पड़ा है और बाद के तसब्बुफ अथवा सूफीमत पर भारतीय वेदान्त और बौद्ध धर्म का। परन्तु वेदान्त और तसब्बुफ का स्वतंत्र अध्ययन करने वाले विद्वान इस बात को मानते हैं कि तसब्बुफ वेदान्त का मधुर रूपाश्रन्तर है कुछ और नहीं।'

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सूफियों की समन्वयता प्रवृत्ति के द्वारा ही उनका आंचल इतना विशाल है कि सभी वेदांत व पुराणों तथा उपनिषद का अन्य सम्प्रदायों के सिद्धांत को गम्भीरता के साथ ग्रहण किया और उन्हें अपने रंग में रंगकर उनसे अधिक सम्बन्ध स्थापित किया है। और इस प्रकार तत्कालीन ईरानी नव अफलातूनी ईसाई तथा भारतीय विचारधाराओं के समन्वय से कुछ साधकों ने अपना एक स्वतंत्र मत स्थापित किया जो सूफीमत के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इन्होंने बहुत सी इस्लाम की विचारधाराओं का विरोध भी किया। डा० रामकुमार वर्मा के शब्दों में—'भारत में सूफी सम्प्रदाय का स्वागत इसलिए भी विशेष रूप से हुआ कि उसमें वेदांत की पूरी पृष्ठभूमि है, और अपने मूलरूप में सूफी सम्प्रदाय वेदांत का रूपान्तर मात्र है।' वेदांत में यही कहा गया है सर्वत्र उस आदि ब्रह्म की ही छाया माना है, मंझन में मधुमालती में स्पष्ट लिखा है—

त्रिभुवन अपुरी पूरिकै, एक जोति सब ठांऊ ।
जोतिहि अनवन मूरति, मूरति अनवन नाऊं ।।[1]

अर्थात तीनों भवन में एक ही प्रकाश है और उसी प्रकाश से विभिन्न मूर्तियां निर्मित हुई और उन मूर्तियों के विभिन्न नामांकन कर दिये गये ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूफियों की चिन्तन पद्धति स्वतंत्र थी, वे किसी पारस्परिक अन्धविश्वास के पथ पर चलना उचित नहीं समझते थे, जिसके कारण उन्हें अनेक कट्टरपंथी मुसलमानों के अत्याचारों का शिकार भी होना पड़ा । कार्वी नामक सूफी संत को कारावास दण्ड दिया गया और मंसूर हल्लाज जो 'अनहलक' या 'सोअहं' की नित्य घोषणा करता था उसे आठ वर्ष तक बंदी रखने के बाद शूली हर चढ़ा दिया । इस में भी वह यही कहता रहा कि 'ईश्वर' ने इस विषय में मुझे अपने निजी मित्र के रूप में माना है, क्योंकि इन कष्टों के द्वारा उसने मुझे वही प्याला पीने को दिया जिसे स्वयं अपने अधरों से लगाया था ।[2]

अर्थात् सूफी साधकों की दृढ़ता ओर सच्चाई की यही कसौटी थी, जिससे उसमें और अधिक शक्ति बढ़ती गई और उनकी उदार भावनाओं ने समन्वयात्मक दृष्टि को साथ लिया, जो कि हर प्रकार से, स्थायित्व के लिए आवश्यक है । अस्तु सूफी मत के इतिहास को देखने से पता चलता था कि यदि उनका प्रथम युग आचरण प्रधान था द्वितीय युग चिन्तन प्रधान तो तृतीय युग समन्वय प्रधान रहा । दर्शन के क्षेत्र में उनका समन्वय विभिन्न पक्षों में यथासमय मिलता है ।

ब्रह्म के सगुण एवं निर्गुण रूप में समन्वय

ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों की व्यंजना सूफी-कवियों ने की है उनका निर्गुण ब्रह्म कभी सौन्दर्य के रूप में, कभी प्रेम के रूप में, कभी अक्केकुल (पूर्णज्ञान) के रूप में और कभी नूर के रूप में वर्णित है । मधु मालती में मंझन ने उसे प्रकाश के रूप में माना है—

वाकी जोति प्रकट सब ठाऊं, दीपक सिस्टि जो मुहम्मद नाऊं ।[3]

सूफियों का ब्रह्म सर्वशक्तिमान एवं परम सौन्दर्य है । उसका सौन्दर्य संसार के अणु-अणु में व्याप्त है, कुरान में जिस अल्लाह का वर्णन है वह दण्ड

---

1. मधुमालती, स्तुति खण्ड, छन्द-2 ।
2. गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय साधना, व्योहार राजेन्द्र सिंह, पृष्ठ 368 ।
3. मधुमालती-मंझन, छन्द-7 ।

में कठोर है, लेकिन उस पर विश्वास करने वाला आनन्द का उपभोग करता है, और जिस सिंहासन पर आसीन होता है उससे स्पष्ट है कि वह सर्वोपरि शासक है, उसकी स्मृति समृद्धि और वैभव असीमित है तथा उसकी एक भृकुटि सम्पूर्ण सृस्टि का संहार कर सकती है, जैसा कि शिव के तृतीय नेत्र के विषय में प्रसिद्ध है। डा० रामपूजन तिवारी ने भी अल्लाह की परिभाषा इस प्रकार दी है—

'अल्लाह का आकाश, पाताल, पृथ्वी सब जगह प्रकाश है। कुरान का अल्लाह समूचे संसार के ऊपर निगाह रखता है वह बुरे कर्मों का बुरा और अच्छे कर्मों का अच्छा फल देता है। मनुष्य और अल्लाह के बीच निरंकुश मालिक और सेवक का सम्बन्ध है।[4] जायसी ने अल्लाह के कमाल का वर्णन' अखरावट में इस प्रकार किया है—

'गगन अन्तरिख राखा, बाज स्वम्भ बिनु टेक।'[5]

सूफियों की निर्गुण भावना आदि वर्णित वेदों वे उपनिषदों के आधार पर ही है अतः उनका उपनिषदों से स्पष्ट समन्वय प्रतीत होता है। वस्तुतः ब्रह्म की शक्ति अलौकिक है, न उनका कोई नाम है न रूप है न जाति है और न ही गुण है लेकिन फिर भी वह सर्वत्र व्याप्त है अर्थात् सब वहीं है। उसकी दिव्य शक्ति से समस्त सृष्टि परिचालित होती है। वेदों में भी उसके विराट रूप का वर्णन है—

एतावोन् अस्य महिमा अतो ज्यायांश्च पुरुषः।
यादोअस्य विश्वा भूतानि त्रिपादास्यामृत दिवि ॥[6]

× × × × ×

तीन भुवन घट घटन, अनौन रूप बेलास।
एक जीभ कहु ताहि कै, कैसे अस्तुति करैहवास ॥[7]

× × × ×

अलख अरूप अबरन सो कर्ता, वह सब स्रो सब ओहि सो बर्त्ता।
परगट गुपुत सो सरबवियापी, धरमी चिन्हि न चीन्हैं पापी।

---

4. सूफीमत साधना और साहित्य, श्री रामपूजन तिवारी, पृष्ठ 249।
5. जायसी ग्रंथावली-रामचन्द्र शुक्ल।
6. ऋग्वेद-पुरुष सूक्त।
7. मधुमालती मंझन-दोहा-1।

न ओहि पूत न पिता न माता, न ओहि कुटुम्ब न ओहि संग नाता।
जना न काहू न कोऊ ओहि जना, जहं लग सब ताकर सिरजना ।।[8]

मंझन ने तो स्पष्ट ही उनके निर्गुण स्वरूप को स्वीकार किया—

'गुपुत रूप परगट सब ठाँई, निरगुन एकोंकार गोसाईं ।।'

इतने पर भी कि न तो उसका रूप है और न ही उपाधि वह निर्गुण होते हुए भी गुणों से युक्त है। उसका 'निर्गुण तत्व' ही उसका एक गुण हो जाता है अर्थात् वह अवर्णनीय है, इसीलिए वेदों में उसे नेति-नेति कह कर पुकारा है।

'ए एव नेति नेति आत्मा ।[9]

वस्तुतः सगुण और साकार तो हमारी भावना का आधार है, आदि और अन्त तो निर्गुण रूप में ही समाहित है भक्ति के ही कारण और युग की आवश्यकतानुसार ही निर्गुण ब्रहं सगुण बन जाता है। इसी प्रकार सूफियों का निर्गुण ब्रह्म भक्त के प्रेम वशीभूत होकर उसकी प्रियतमा बन जाता है जिसे पाने के लिये वह व्याकुल हो जाता है और सांसारिक यातनाओं को सहर्ष सहन करता है। धीरे-धीरे वह अपनी साधना के द्वारा उसी निर्गुण में लीन हो जाता है। आत्मा की अन्तिम स्थिति का किसी का ज्ञान न होना उसके निर्गुणत्व को सिद्ध करता है। वस्तुतः सगुण ब्रह्म का अस्तित्व निर्गुण में ही व्याप्त होता है; ब्रह्म के दो रूपों का वर्णन आदि ग्रंथों में भली-भांति है, किसी में पर और ऊपर, किसी में शब्द-अशब्द, किसी में मूर्त और अमूर्त, सत् और व्यत् कहा गया है—

'एतद्वै सत्यकामं परंच अपरंच'[10]

× × ×

'द्वै वा ब्रह्मणें रूपे मूर्तं च चामूर्त्तं च मर्त्यं
चामृतं च स्थिर चास्थिरं च सच्च त्यच्च'[11]

---

8. जायसी ग्रंथाबली, रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 3।
9. वृहदारण्यकोपनिषद, 39-26।
10. प्रश्नोपनिषद, 5-2।
11. वृहदारण्यकोपनिषद, 23-1।

आगे चलकर पुराणों के युग में ब्रह्म में लीला करने के कारण जनसामान्य को अपना आभास दिलाने के लिए ही सगुण और साकार रूप धारण किया, श्रीमद्भगवद्गीता में भी निर्गुण ब्रह्म की विवेचना विस्तृत व स्पष्ट शब्दों में की गई है—

'सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रिययविर्वजितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुण गुणभोक्त च ।।[12]

अर्थात् सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषयों को जानने वाला है, परन्तु वास्तव में सब इन्द्रियों से रहित है तथा आसक्ति रहित और गुणों से अतीत हुआ भी अपनी योग माया से सबको भरण-पोषण करने वाला और गुणों को भोजने वाला है। इस प्रकार वह दूर भी है और पास भी है, स्थिर भी है और अस्थिर और निर्गुण भी है सगुण भी। वही ब्रह्म लीलामय बनकर सगुण बन जाता है, सगुण-निर्गुण का परस्पर सम्बन्ध जल और जल तरंगों के समान है, जिस प्रकार पानी का मूल रस पानी है किन्तु उसका विकृत रूप तरंगों या हिव आदि में परिवर्तित हो जाने पर विभिन्न नामों से सम्बोधित अवश्व होता है लेकिन उसका प्राण तत्व जल ही है। उस निर्गुण की प्राप्ति का एक मात्र साधन सगुण भक्ति ही है अर्थात् निर्गुण साध्य और सगुण साधन है। अतः सिद्ध है कि दोनों का सम्बन्ध आंतरिक है। यही कारण है कि सूफी कवियों ने जहां काव्य सृजन में पूर्व के स्तुति खण्ड में निराकार को इंगित किया वही सगुण और साकार को विस्तार प्रदान किया। वे अपने ब्रह्म की व्यंजना अनेक भांति से करते हैं, उनकी प्रियतमा अलौकिक है इसलिए अवर्णनीय है लेकिन साकार रूप में उपासना करने के कारण उसका यथोचित चित्रण करना भी अनिवार्य है। मंझन ने अपनी रचना मधुमालती में अपनी प्रियतम के सौंदर्य का वर्णन इस प्रकार किया है—

'अति सरूप रस भरे अमोला, जो शोभित सुख मध्य कपोला।
मैं मतिहीन बरनि न आई, मुख कपोल बरनै केहि भाई।'[13]

अपनी भावना के कारण ही निर्गुण ब्रह्म सगुण बन जाता है, इस सगुण ब्रह्म को माया प्रभावित करती है, माया के कारण ही उसका नाम-रूप परिवर्तित हो जाता है और उसमें विभिन्न सांसारिक विकार समाहित हो जाते हैं, जबकि

---

12. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 13 श्लोक-14।
13. मधुमालती-पुनर्मूल्यांकन-दोहा 83।

निर्गुण ब्रह्म निर्लिप्त और माया के रहित है। शंकराचार्य के अनुसार तो सगुण मायावित होने के कारण असत्य है किन्तु सूफी कवियों ने ऐसा नहीं माना। उनके अनुसार तो माया भी ईश्वरीय शक्ति है, अतः उसे असत्य नहीं कह सकते हैं। मानव की चंचल मनोवृत्ति का केन्द्रीयकरण तो सगुण ब्रह्म में किंचित सम्भव है। अन्यथा वह ईश्वर प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील ही नहीं हो सकता। सगुण ब्रह्म के साथ हम अपने अनुरागी मन का एक विशेष सम्बन्ध जोड़ लेते हैं। उसके साथ पति पत्नी, प्रियतम-प्रियतमा, स्वामी-सेवक, पिता-पुत्र का सम्बन्ध बनाने से हम अपने हृदय के भावों को स्पष्टतः व्यक्त कर सकते हैं। और इस प्रकार सगुण ब्रह्म से आत्मीयता स्थापित हो जाती है। सूफी कवियों ने प्रेम-पन्थ पर अग्रसर होने के लिए ब्रह्म को अपनी प्रियतमा स्वीकार किया और उसे पाने के लिए संसार के कठिन से कठिन कष्ट को सहन करके अपने मार्ग को ग्रहण किया है। दुःसाध्य यातनाओं को सह कर भी प्रेमी-प्रेमिका के ध्यान को नहीं छोडता, कहीं रंचमात्र उसका स्वप्न दर्शन हो जाता है तो कहीं किसी व्यक्ति या पक्षी से उसके सौन्दर्य का वर्णन सुनकर अपनी सुधबुध खोकर उसे पाने के लिए व्याकुल हो जाता है। और यही कारण है कि वह उस प्रेम की पीर के सम्मुख संसार के समस्त वैभव को क्षण भर में तिरस्कृत कर अपने को धन्य मानता है। इस प्रकार निर्गुण और सगुण का समन्वय सूफी कवियों ने अपने साथ विचारों द्वारा बडा बेजोड प्रस्तुत किया है। समस्त कवियों ने सर्वप्रथम तो उस निर्गुण निराकार अखंड शक्ति का ही नमन किया है और फिर अपने विचारों की स्थिरता तथा उद्देश्य पूर्ति हेतु सगुण की अराधना कर चित्त में शांति का अनुभव किया। वस्तुतः निर्गुण का वर्णन कैसा ? उसके लिए तो जिह्वा लेखन, भाव विचार तथा समस्त कर्मेन्द्रियां स्तब्ध हो जाती हैं। वर्णन तो दृश्य वस्तु का ही सम्भव है, सभी सूफी कवियों ने निर्गुण की बन्दना कर एक-दो पंक्ति में करके सगुण को प्राप्त करने के लिए हृदय खोलकर रख दिया तथा लेखनी को विश्राम देना भी उचित नहीं समझा। अतः स्पष्ट है कि निर्गुण को पाने का माध्यम सगुण ही है। साहित्य के क्षेत्र में सगुण ब्रह्म की अराधना सी आद्यान्त होती नहीं है। और ईश्वर की प्राप्ति सगुणोपासना से ही सम्भव है। निर्गुणोपासक ज्ञानी कहलाता है और सगुणोपासक भक्त। ज्ञानी से भक्त श्रेष्ठ है, क्योंकि ज्ञान में बुद्धि की प्रधानता होने से तर्क और संशय उपस्थित रहता है जब कि भक्ति में हृदय प्रधान होने से एकीभाव तथा समर्पण भाव रहता है। निर्गुण और सगुण के पारस्परिक भेद तथा अभिन्न सम्बन्ध में कहा जाता है कि निर्गुण सगुण की योग्य मर्यादा है, यदि वह न रहें तो सगुण दोषयुक्त हो जाता है. अतः दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। दोनों ही कठिन हैं और दोनों ही सरल व सुलभ हैं। सगुण की उपासना करके बढ़ते हुए चरण निर्गुण पर ही पहुंचते हैं और यही इनका साध्य तथा उद्देश्य बन जाता है।

अद्वैतवाद-सर्ववाद तथा सूफीमत के प्रेमतत्व में समन्वय

सूफीमत अपने में बहुत कुछ गम्भीरता से ओत-प्रोत है। भारतीय दर्शन के गम्भीर और गहन तत्वों को ही सूफियों ने अपना कर अपने मार्ग को दृढ़ बनाया है। वास्तव में वही मत लोकप्रियता व स्थिरता प्राप्त कर सकता है। जो सभी धर्मों व सम्प्रदायों के सारतत्व को ग्रहण कर एक नवीनता प्रस्तुत करता है। भारतीय दर्शन में भी युग परिवर्तन के साथ विभिन्न धारायें बदली जो अपने समय की बलवती थीं। अद्वैतवाद भी उन्हीं में से एक आधार स्तम्भ है, जिसकी स्पष्ट झलक सूफीमत में यत्र-तत्र दिखाई पड़ती है। अद्वैतवाद के प्रवर्तक शंकराचार्य जी थे, उनके अनुसार वास्तविक सत्ता एक है, परमात्मा और वही सत्य है अन्य सब-कुछ असत्य है। डा० नारायण प्रसाद बाजपेयी ने अपनी पुस्तक में कुरान के द्वारा कुछ अद्वैती विचारधारा का पोषण किया—'वही आरम्भ एवं अन्त है। गुप्त एव प्रकट है और वही सर्वज्ञ है। जहाँ कहीं भी तुम जाओ वह तुम्हारे साथ है। निर्माणकर्ता सत्य में कोई द्वैत की भावना नहीं है, उसमें 'मैं' और 'तुम' सभी एक ही सत्य हैं क्योंकि एकत्व में किसी प्रकार का भेद भावना नहीं रहती। सृष्टि का निर्माण कर्ता अनेकतत्व की भावना से परे केवल परम सत्य या हक है और स्वयं को अनावृत करके जब वह प्रकट करता है तब वही संसार और खल्क हो जाता है।'[14] इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि सूफियों की यह भावना 'अहं ब्रह्मास्मि' तथा 'एकोअहं द्वितीयानास्ति' का ही एक रूप है। सूफी साहित्य के अग्रज महाकवि जायसी ने भी उसे इस प्रकार व्यक्त किया है—

> **'आपुहिं गुरु सो आपुहिं चेला, आपुहिं शब औ आप अकेला।**
> **आपुहिं मीच जियन पुनि, आपुहिं तन-मन सोई।**
> **आपुहिं आप करै जो चाहै, कहां सो दूसर कोई।'[15]**

× × × ×

> **तब बहि भीतर वह सब माहीं। सबै आपु दूसर कोउ नाहीं।[16]**

---

14. सूफी महाकवि जायसी और रहस्यवाद, डा० नारायण प्रसाद बाजपेयी पृष्ठ 10।
15. जायसी ग्रंथावली, आ० रामचन्द्र शुक्ल, पार्वती महेश खंड, पृष्ठ 39।
16. चित्रावली पृष्ठ 1।

चूंकि सूफी-दर्शन का प्रारम्भ फारस में हुआ था और फारस पर भारतीय वेदान्त का पूर्ण प्रभाव था, कट्टर सूफी विचारकों ने तो अनेक अत्याचार सह कर भी भारतीय दर्शन के आंचल को नहीं छोड़ा। वही कारण है कि इनके धर्म व सम्प्रदाय में कुछ भिन्नता के साथ समन्वय अधिक दिखाई पड़ता है। मुख्यत: भेद इनकी चिन्तन पद्धति में था, और इस कारण कुछ वैचारिक दृष्टिकोण से इनके 3 वर्ग बन गये—(1) इजादिया (2) बजूदिया और (3) शहूदिया।

इजादिया वर्ग के लोग ईश्वर और सृष्टि में परस्पर भेद मानकर चलते हैं, जिससे द्वैतवाद की झलक स्पष्ट दिखाई देती है।

वाजूदिया सम्प्रदाय अद्वैतवाद के अधिक निकट है, क्योंकि ये एक ही सत्ता को वास्तविक मानते हैं और सम्पूर्ण सृष्टि में उसे व्याप्त देखते हैं। शेख नबी ने ज्ञानदीप में इसी भाव को सुदृढ़ किया है—

'वोहि के रूप सब होत सरूपा। वोह निरूप नाहि काहु के रूपा।[17]

अर्थात् सृष्टि में उस ब्रह्म का रूप और गुण सभी अणु मात्र होते हैं, जीव ब्रह्म का ही अंश है और ज्ञान प्राप्ति के द्वारा वह ब्रह्ममय अर्थात् अंशी में लीन हो जाता है। उदाहरणार्थ जिस प्रकार स्वर्ण निर्मित आभूषण किसी अंग विशेष का बनकर, विशेष नाम से उच्चारित व व्यवहृत होता है, और कंगन, माला ता कुण्डल आदि कहलाता है, लेकिन वास्तविक स्वरूप में वह स्वर्ण ही है, क्योंकि उसका आदि और अन्त तो स्वर्ण है, आभूषण तो उसका अणु मात्र है। शंकराचार्य के अद्वैतवादी सिद्धांतों 'अहं ब्रह्मस्मि' और 'सोअहं' का पूर्ण रूप से सूफी काव्य में रूपान्तर हुआ है।

शूहूदिया सम्प्रदाय वाले बिम्ब प्रतिबिम्बवाद के अनुयायी हैं। उनके अनुसार जिस प्रकार दर्पण में प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है उसी प्रकार सृष्टि रूपी दर्पण में परमात्मा का प्रतिबिम्ब दृष्टिगत होता है। इसके अनुसार ब्रह्म ही दृश्य एवं दृष्टा है वही दर्पण है और वही देखने वाला।

सूफी कवियों ने जीव के विषय में अद्वैतवाद को ही अपनाया है। उनका कथन है कि जीव और ब्रह्म में वस्तुत: कोई भेद नहीं है। पर ब्रह्म स्वयं ज्ञान है, ज्ञाता है और ज्ञेय भी है। व्यवहारिक स्तर पर भी उसका अलग अस्तित्व है। वह सर्व निरपेक्ष स्वयं प्रकाश है। इसलिए अद्वैत है जीव ब्रह्म का अंश है, इन्सान के वास्तविक स्वरूप तथा परमात्मातत्व में कोई अन्तर न मानते हुए सूफी साधकों का यह विश्वास है कि ब्रह्माण्ड तथा पिण्ड में ईश्वर की चेतना वर्तमान है। मूलरूप से

---

17. ज्ञानदीप, शेखनबी, छन्द-2।

आत्मा परमात्मा एक है, भिन्नता व्यावहारिक है वास्तविक नहीं। सूफियों के अनुसार मानव सम्बन्ध सूफीमत की विशेषता है।[18]

सूफियों में एक प्रसिद्ध कहावत है 'अल मुजाजो कंतरतुल हकीकी' अर्थात् मजाज हकीकत का पुल है।[19] इस बात की पुष्टि अधिकतर फारसी साहित्य में हुई है उसमें कहा गया है कि सांसारिक प्रेम के मार्ग पर चलकर ईश्वरीय प्रेम को प्राप्त किया जा सकता है। अब्नुल अरबी (नृ० सन् 1240 ई०) ने स्त्री प्रेम को ईश्वरीय प्रेम बताया है।[20] उनके अनुसार लौकिक प्रेम भी ईश्वरीय प्रेम को प्राप्त किया जा सकता है। नारी प्रेम को ईश्वरीय प्रेम की तरह पवित्र माना गया है। मौलाना रूमी ने एक स्थान पर कहा है 'स्त्री ईश्वरीय किरण है। वह सांसारिक प्रेमिका नहीं है। वह निर्माता है, निर्मित नहीं।[21] इस प्रकार मौलाना रूमी ने स्पष्ट रूप से कहने का प्रयत्न किया है कि सांसारिक प्रेम ईश्वरीय नहीं है। तथा जब तक आत्मा की शुद्धि नहीं होती, ईश्वरीय प्रेम सम्भव नहीं। वह इस बात को भी स्वीकार करता है कि सूरत तथा रंग पर आधारित प्रेम अन्त में खोखला प्रमाणित होता है।[22] जामी ने अपने प्रेमाख्यान 'युसुफ-जुलेखा' में कहा है कि प्रेम द्वारा ही अपने स्व से मुक्ति प्राप्त हो सकती है। युवावस्था में विचार साँसारिक प्रेम की ओर झुकते हैं। यही प्रेम ईश्वरीय प्रेम में बदल जाता है। यह प्रारम्भिक वर्णमाला है, इसके बाद हम ईश्वरीय संसार को ग्रहण करते हैं और इसके सहारे उसका चिन्तन करते हैं।[23] उसने यह बात स्वीकार की है कि इश्क मजाजी में और इश्क हकीकी में कोई वास्तविक अन्तर नहीं है जिस कारण पहला दूसरे तक पहुंचने का स्वाभाविक सोपान भी बन सकता है।[24]

ईश्वर तत्व के सम्बन्ध में मुस्लिम दार्शनिक विचार सूफियों के कट्टर सिद्धांतों को भी मानते हैं। इस्लाम धर्म के अनुसार परमात्मा, अलौकिक तथा सृष्टि से अतीत और परे हैं। वह अवतार नहीं लेता, क्योंकि बहुदेववाद को इस्लाम में कोई स्थान नहीं है। वह एक रस है तथा उसके ऐश्वर्य सौन्दर्य तथा पूर्णतः का ज्ञान उपासकों को अनन्य भक्ति के द्वारा होता है जो परमात्मा में विलीन होकर उसकी विभूति

---

18. सूफीमत साधना और साहित्य, आ० रामपूजन तिवारी, पृष्ठ 379।
19. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, डा० श्याम मनोहर पाण्डेय पृष्ठ 19।
20. वही, पृष्ठ 19।
21. मौलाना रूम, जगदीश चन्द्र वास्पति, कलकत्ता पृष्ठ 216।
22. वही, पृष्ठ 216।
23. युसुफ-जुलेखा, आर०बी०एच० ग्रिफथ, लन्दन, पृष्ठ 24।
24. हिन्दी सूफी प्रेमाख्यान, पृष्ठ 8-9।

का अनुभव करते हैं वह उनकी रक्षा करता है। ईश्वर सृष्टिकर्ता संहारक, रक्षक सभी कुछ है। उसकी इच्छा प्रधान है वह सृष्टि कर्ता होते हुए भी नियमों से परे हैं, शाश्वत है।[25] मनुष्य उससे भयान्वित और श्रद्धावनत हो सकता है उससे प्रेम नहीं कर सकता। अल्लाह ने सृष्टि निर्माण 'कुन' शब्द कहने मात्र से मिट्टी से किया। अद्वैतवाद और सर्ववाद को एक ठोस आधार न देकर प्रेम के द्वारा आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति ही ब्रह्म ज्ञान है। सूफियों का ब्रह्म के नाना रूपों में अवतरित होने का उल्लेख उपनिषदों में भी वर्णित है—

'ब्रह्म आप ही जगत के रूप में प्रकट हुआ।'[26]

आपन अन्त कीन्ह दुइ ठाऊं। एक के धरा मुहम्मद नाऊं।
वही जोति पुनि किरिन पसारी। किरिन किरिन सब सृष्टि संवारी।[27]

सूफी कवियों ने उस ब्रह्म को पाने के लिए विभिन्न साधनाओं को बताया, उन्होंने चार साधनावस्थायें बताई है—शरीयत, तरीकत, हकीकत और मारिफत। यही मारिफत की अवस्था ज्ञान प्राप्ति की स्थिति है। इस अवस्था में पहुंचकर आत्मा 'फना' हो जाती है और वह 'बका' का अनुभव अर्थात् मैं ही परमात्मा हूं। ऐसा दृढ़ विचार हो जाता है। इस बात का साम्य गीता के सिद्धान्त से बहुत कुछ है—

'यथा दीपो निवातस्थौनेगते सोपमा स्मृता।
योगिनों यतचितस्य युजन्तों योगाभात्मन:।'[28]

अर्थात् मनुष्य के गुण, स्वभाव, कर्म और उसकी समस्त इच्छाओं का जब विरोधाम हो जाता है, तब वह पूर्णरूप से परमात्मा की इच्छा से परिचालित होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि ईश्वर और जीव स्वरूप से भिन्न हैं, लेकिन गुणों से अभिन्न हैं। इस प्रकार की अवस्था में पहुंचने पर ही प्राणी विदेह मुक्त कहलाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी जीव भक्त और विदेहमुक्त का वर्णन भगवाव ने अपने मुख से किया है—

'विहायं कामान्य: सर्वान्पुमाश्चरित नि:स्पृहं:।
निर्ममों निरहंकार: स शान्तिमधि गच्छति।।'

2.. सूफी काव्य संग्रह, पृष्ठ 34।
26. तैशितरीयोपनिषद-1/2/6।
27. चित्रावली, पृष्ठ 5।
28. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय-6, श्लोक-19।

एषा ब्राह्मी स्थिति: पार्थ नैना प्राप्य विमुह्यति,
स्थित्वास्यामन्त: कालेअपि ब्रह्म निर्वाण मृच्छति ।[29]

अर्थात् जो मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर ममता रहित और अहंकार रहित, स्पृहा रहित हुआ बर्तता है वह शान्ति को प्राप्त होता है । भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन ! यह ब्रह्म को प्राप्ति हुए पुरुष की स्थिति है । इसको प्राप्त होकर मोहित नहीं होता और अन्तकाल में भी इस निष्ठा में स्थित होकर ब्रह्मानंद को प्राप्त हो जाता है । सूफियों ने भी इस स्थिति को स्वीकार किया है कि—'मुहम्मद जियतंहि जे मुए तिन पुरुषन्ह कह साधु' इस प्रकार स्पष्ट है कि सूफी भी वेदान्तियों की भांति ईश्वर प्राप्ति और मुक्ति को ही जीवन का चरम लक्ष्य मानते थे । ईश्वर की प्राप्ति प्रेम पंथ पर चलकर ही सम्भव है, जो प्रेमी अपने प्रियतम या प्रेमिका के लिए प्राणों की बाजी तक लगा देता है वही उसे प्राप्त कर सकता है । जिस साधक के हृदय में प्रेमाग्नि की चिनगारी नहीं सुलगती वह कभी एकाकार नहीं हो सकता है क्योंकि प्रेमाग्नि में तपकर ही विशुद्ध हृदय होता है । श्रीमद्-भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने मुख से कहा है—

'यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरूतेअर्जुन ।
ज्ञानाग्नि सर्पाकर्माणि भस्मसात्कुरूते तथा ।।[30]

अर्थात् हे अर्जुन । जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि ईंधन को जला डालती है वैसे ही ज्ञानाग्नि सब कर्मों को जो विकरादि के कारण है भस्म कर देती है । ज्ञानियों की ज्ञानाग्नि और सूफियों की प्रेमाग्नि समान ही होती है । सूफियों की ब्रह्म के मिलन की अवस्था कबीर का अनुसरण करती है—

'हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराय ।
बूंद समानी समुद महं सो कत हेरी जाय ।[31]
'बूंद समुद्र जैस होइ मेरा गा, हिराइ अस मिलै न हेरा ।[32]

इस अद्वैत की पराकाष्ठा उपनिषदों में भी वर्णित है, अन्तिम स्थिति परमात्मा में ही लीन होने की है जिसे श्वेतरोपनिषद में इस प्रकार कहा गया है—

---

29. वही, 3/71/72 ।
30. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय-4 श्लोक 37 ।
31. कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ 15 ।
32. जायसी ग्रन्थावली, आ० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 100 ।

'भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं चमत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविध ब्रह्मेतत् ।'

अर्थात् भोक्ता, भोग्य तथा परमात्मा तीनों ब्रह्म के ही एक रूप हैं। कबीर ने भी ईश्वर को अपना पति माना है और इस प्रकार उससे एकाकार होने की घनिष्ठता को अति आत्मीय शब्दों में कहा है—

'हरि मरिहैं तो हमहूं मरिहैं, हरि न मरैं हम काहे को मरिहै ।[33]

इसी सम्बन्ध में जायसी ने भी पद्मावती के मुख से कहलवाया है—

'जोरैं जियहिं मिली गर रहहिं,
मरहिं त एकै दोऊ ।'[34]

इस प्रकार ब्रह्म विभिन्न नाम और रूपों में प्रकट होकर संसार में व्यवहृत होता है और इस प्रकार सम्पूर्ण अवधि तक व्यवहार करके अन्त में उसी आदि स्त्रोत में जहां उत्पन्न होता है तिरोहित हो जाता है, जिसके फलस्वरूप उसका वैयक्तिक महत्व नष्ट हो वह ब्रह्म मय ही बन जाता है।

अतः सूफी साधकों के अनुसार प्रेम की पुण्य ज्योति से हम ब्रह्म को प्राप्त करने का मार्ग खोज सकते हैं। प्रेम का मार्ग सत्य का मार्ग है। जिस हृदय में प्रेम का सिव रस है। वह कावा एवं कैलाश की भांति पुनीत है। प्रेम से हीन हृदय पत्थर है प्रेमी ही उस परम ज्योति को प्राप्त कर सकता है। यद्यपि उसे इस प्राप्ति के हेतु शरीयत के नियमों का पालन भी अवश्य करना पड़ेगा, किन्तु उसके हृदय में प्रेम भावना होना सर्वाधिक आवश्यक है।

भारतीय हठयोग एवं योग साधना और सूफी प्रेम साधना का समन्वय

सूफी साधकों का यह सिद्धांत है कि जब तक वह वर्तमान शरीर धारण किये हुए रहता है तब तक उसके शरीर का मुख्य काम यह होना चाहिए कि वह वहदानियां (परमात्मा के एकत्व) का ध्यान करता रहे और वैसा करते हुए तरीका अर्थात् सूफियों द्वारा निर्धारित आध्यात्मिक मार्ग पर अग्रसर होता रहे।[35] जिक्र के अतिरिक्त मुराकबा (ध्यान) की भी क्रिया है। बाद में सूफियों ने देखा कि भावा-

---

33. कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ ।
34. जायसी ग्रन्थावली पृष्ठ 110 ।
35. सूफीमत साधना और साहित्य, पृष्ठ 363 ।

विष्टावस्था केवल जिक्र (स्मरण) ध्यान आदि से ही नहीं उत्पन्न होती है। नृत्य आदि का सम्मिलित नाम 'समा' से प्रकट किया जा सकता है।[36]

सूफियों के जिक्र की क्रियाओं की समानता बहुत कुछ योग के प्राणायाम तथा ध्यान आदि से है। 'जिक्र' में साधक को ध्यानस्थ होकर बैठना पड़ता है इसके द्वारा साधक नाना चक्रों का भेदन करता है। योग के छः चत्रों को लतायफी सित्ता कहा गया है। इन चक्रों के नाम मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक अनाहृत, विशुद्धाख्य, आज्ञा है।[37] योग साधना में ब्रह्मरन्ध का विशेष महत्व है इसी को खोलने के लिए साधक को साधना करनी पड़ती है। इसके खुलते ही अमृतरस झरने लगता है। संत कबीर ने इसकी अभिव्यक्ति इस प्रकार की है—

'ऐसा ज्ञान विचारिलै, लौ लाइलै ध्याना।
सुनि मंडल में घर किया, जैसे रहै सिचाना।।[38]

'ब्रह्‌रन्ध' में इडा पिंगला और सुषुम्ना नाडियों का संगम होता है योग साधना के अन्तर्गत सुषुम्ना नाड़ी से कुण्डलिनी शक्ति ऊपर की ओर अग्रसर होती है। सामान्य व्यक्ति में यह कुण्डलिनी शक्ति सुप्तावस्था में रहती है। साधक अपनी साधना द्वारा इसे जाग्रत करने का प्रयास करता है। मन की एकाग्रता की सिद्धि में ज्यादा बाधा उपस्थित करती है अतः भारतीय हठयोग एवं योग साधना आध्यात्मिक रूप से परमतत्व की प्राप्ति हेतु तो है पर सूफी साधकों का सिद्धांत है कि परमात्मा का अनवरत स्मरण तथा अभ्यास करने के लिए साधक को किसी पीर या गुरु की शरण लेनी पड़ती है। वह अपने पीर या गुरु की आज्ञा के पालन की शपथ ग्रहण करता है। और अपने को उसका मुराद स्वीकार करता है।[39] पीर या गुरु के अतिरिक्त साधक औलिया की उपासना करता है। उनका यह सिद्धांत है कि वह इमाम (गुरु) के हाथों में अपने शव की नाई छोड़ दें।[40] गुरुवाद का यह प्रवेशवाद की चीज है और इनकी प्रेरणा देने वाला भारतवर्ष ही रहा है।[41]

सूफी-सिद्धांतों के अनुसार अक्ल (बुद्धि) के मार्ग को ग्रहण करने की अपेक्षा श्रद्धा एवं विश्वास का प्रसस्त पथ ही अत्यधिक महत्वपूर्ण है। ख्वाजा मुइद्दीन चिस्ती

---

36. वही, पृष्ठ 372।
37. वही, पृष्ठ 386।
38. कबीर ग्रंथावली, श्यामसुन्दर दास पृष्ठ 138।
39. सूफी काव्य संग्रह, पृष्ठ 47-48।
40. मुण्डकोपनिषद, 1।2।12।
41. सूफी काव्य संग्रह, आ० परशुराम चतुर्वेदी।

ने कहा है कि—ऐ मुईन ! अक्ल की आंख से दोस्त का हुस्न न देख तू मजनूं की आंख से लैला के हुस्न को देख ।[42]

सभी भारतीय दर्शनों का मूलोद्देश्य त्रिविध तापों से मुक्ति प्राप्त कर परम-आनन्द की उपलब्धि करना ही रहा है । सूफी-साधकों का अंतिम लक्ष्य सांसारिक जीवन व्यतीत करते हुए भी इसके विविध तापों से निस्तार पाकर के शरीर में ईश्वर का पूर्ण प्रतिरूप है । जगत उसकी केवल आंशिक छवि है ।[43]

सूफियों ने भारतीय दर्शन के सभी पक्षों को ग्रहण करने के विचार से ही हठयोग साधना को भी अपने स्पर्श से मुक्त नहीं किया । उनकी प्रेम मार्गीय साधना हठयोग की साधना पर ही आधारित है अतः सूफी साधना यौगिक साधना है यौगिक साधना अन्तर्मुखी साधना है, अतः इसका सम्बन्ध शरीर की आन्तरिक क्रियाओं से है । 'हठ' शब्द का अर्थ है (ह=सूर्य और ठ=चन्द्र) इन्हीं सूर्य और चन्द्र की साधना को इड़ा और पिंगला का संयोग भी कहते हैं । 'इन दोनों को मिलाकर सुषुम्ना में केन्द्रित कर देना ही योगी का चरम लक्ष्य माना है ।[44]

जायसी ने रतनसेन को सूर्य और पद्मावती को चन्द्र माना है । सूर्य रूप रतनसेन चन्द्र रूप पद्मावती के मिलन के लिए संकल्प करता है—

किरन करा भा प्रेम अंकुर, जौ ससि सरग मिलै होइ सूर ।[45]

इड़ा और पिंगला का मिलन बहुत कष्टपूर्ण होता है, क्योंकि चन्द्र का स्थान सातवें आसमान पर है । दोनों का विवाह हो जाने पर जायसी ने लिखा है—

'आज सूर ससि के घर आवा, ससि सूरहि जनु होइ भिरावा ।'[46]

दोनों के मिलन की स्थिति को ही सामरस्य की स्थिति कहते हैं, जब कि साधक ब्रह्म में लीन हो जाता है और निरन्तर अमृतरस का पान करता है, जिसके परिणामस्वरूप साधक में दिव्य ज्योति का प्रकाश होता है । योग शास्त्र में ब्रह्मरंध्र

---

42. मुईन व चश्मे खिरद हुस्ने दोस्त न नमायद
    बैवी वदीये मजनं जमंनि लैला रा । दीवान ख्वाजा, गरीब नैवाज ।
    संग्रह कर्त्ता—मुस्लिम अहमद निजामी, उर्दू बाजार, जामा मस्जिद [illegible]
    पृष्ठ 24 ।
43. जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी—कवि और काव्य, पृष्ठ 68 ।
44. गोरखनाथ और उनका युग—डा० रांगेय राघव 1963, पृष्ठ 120
45. जायसी ग्रंथावली—पृ० 39 ।
46. जायसी ग्रंथावली, पृष्ठ 123 ।

तथा सहस्त्रार चक्र का अत्यधिक महत्व है, साधना के द्वारा सहस्त्रार चक्र का अत्यधिक महत्व है, साधक का अन्तिम लक्ष्य है। हठयोग के षटचक्र सूफी साधना के छः समुद्र हैं, और सातवां समुद्र सहस्त्रार चक्र है। जायसी ने अपने काव्य में सिंहलगढ़ का वर्णन किया है। जिसका रूपक शरीर से बांधा है जिसके नौ द्वार ही नौ पौरी है, जो गढ़, ब्रज के समान दृढ़ तथा दुर्भेदय है, उसे पार करना किसी सामान्य व्यक्ति का साहस नहीं। इस गढ़ के पाँच कोतवाल हैं—काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह। ये कोतवाल निरन्तर सहारा देते रहते हैं जो चक्र-भेदन नहीं करने देते। इस प्रकार इन नौ द्वारों के बाद दशमद्वार हठयोग का ब्रह्मरंध्र है, जिसमें निरन्तर राजघरियारा बजना हठयोग के अनहदनाद का प्रतीक है सूफी काव्य के सभी प्रेम-काव्यों में प्रियतमा के लिए पुरुष प्रेमी कठिन कष्ट सहकर अन्त में उसे प्राप्त कर ही लेता है, रास्ते की विपत्तियों के असाध्य होने पर वह अभीष्ट की प्राप्ति के लिए सतत् सफल प्रयास करता रहता है। सहस्त्रार पर नीर-क्षीर नामक दो नदियां हैं यही इड़ा और पिंगला हैं दोनों के मध्य सुषुम्ना नाड़ी प्राणों की स्वामिनी है वहीं पर मोती चूर नामक एक कुण्ड है यही कुण्ड ब्रह्मरन्ध्र है जिसका पानी अमृत के समान और कीच कपूर की भांति सुगन्धित है। राजयोगी ही उस जल का पान कर सकता है।

सहस्त्रार गगन से भी ऊँचा है, उसे देख तो सकते हैं, परन्तु स्पर्श असम्भव है, उसके चारों ओर विधुचक्र घूमता रहता है। सूफियों ने 'कैलाश' का भी यत्र-तत्र वर्णन किया है, यह योग का ही पारिभाषिक शब्द है। जायसी ने स्पष्ट लिखा है—

'सात खंड अपर कबिलासू, तहेवा नारि सेज सुख बासू।'

अर्थात् सात खंड के ऊपर कैलाश है जहां वह पद्ममिनी प्रियतमा का निवास है। हठयोग के चक्रों का वर्णन अथर्ववेद में भी वर्णित है, जिससे स्पष्ट है कि वैदिक युग से ही इस साधना का प्रारम्भ हो गया था—

अष्टचक्रापुरी द्वारा देवानांपूरयोध्या,
तस्या हिरण्मया कोषा स्वर्गन्योतिपाश्ताश्च।'

कठोपनिषद में इन्द्रियों का वर्णन बड़ा ही स्वाभाविक और व्यावहारिक है—

'परांचिरणानि व्यतृणतस्वयंभूस्तस्यात्परांअहंपश्यति नान्तरात्मन्
कश्चिद्धीर: प्रत्यगात्मानर्भक्षदावृत्त चक्षुरमृतत्वामिच्छन।'[47]

---

47. कठोपनिषद—2।1।7।

अर्थात् स्वयं प्रकट होने वाले परमेश्वर ने समस्त इन्द्रियों को बाहर की ओर जाने वाली ही बनाया है, इसलिए मनुष्य बाहर की वस्तुओं को ही देखता है अन्तरात्मा को नहीं। किसी भाग्यशाली बुद्धिमान पुरुष ने ही अमर पद को पाने की इच्छा से इन्द्रियों को बाह्य विषयों की ओर से लौटाकर अन्तर्मुखी होने की ओर संकेत किया है। वहां वही मनुष्य पहुंच सकता है जो सांस तथा मन की साधना में कुशल हो। जैसे कृष्ण ने यमुना में घुसकर-कालीनाग को नाथा था वैसे ही तू भी सांस रोककर मन को नाथ लें। योग के द्वारा चित्तवृत्तियों का निरोधकर अन्तर्मुखी होना चाहिए 'योगश्चित्तवृत्ति निरोध' अर्थात् व्यक्ति अन्तर्मुखी होकर व्यावहारिक जगत में व्यवहार तो करता है लेकिन उसकी आसक्ति परमात्मा में ही रहती है अतः सूफी का दर्शन यौगिक होते हुये भी प्रेम के रंग में रंगा होने के कारण अनुरंजनीय हैं तथा उसमें पति-पत्नी के मधुर सम्बन्ध के कारण और भी लोकप्रियता आ जाती है। सूफी साधकों का यह दृष्टिकोण उनकी उदारता का द्योतक है। सूफियों ने प्रियतम से मिलन के कई सोपान बताये हैं, स्वयं जायसी ने लिखा है— 'चारि बसेरे सौ चढै, सत सौं उतरै पार।' इसी प्रकार सूफियों की साधना को उन्होंने चार यात्राओं में विभाजित किया—

प्रथम यात्रा मारिफत ज्ञान से आरम्भ होकर फना (पूर्णलय) तक चलती है। दूसरी फना से लेकर बफा तक चलती है। यहां पहुंचकर साधक हक स्वरूप हो जाता है। आगे बढ़कर वह 'कुल' (पूर्ण मानव स्थिति) तक पहुंच जाती है। इसके बाद तीसरी यात्रा का आरम्भ होता है, जब पूर्ण मानव की स्थिति पर पहुंचा हुआ साधक देवदूत अथवा आध्यात्मिक गुरु के रूप में उन अनन्त शक्तियों का संचय करता है, जिनसे वह स्वयं मुक्त हो सके। इसके पश्चात साधक और भी आगे की स्थिति में पहुंचता है और अन्तिम यात्रा का अन्त शरीरान्त से होता है जिसमें मानव पूर्ण मानव बनकर दैवी गुणों से समन्वित स्वच्छ दर्पण की भांति बन जाता है।

———
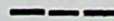
तृतीय अध्याय

धार्मिक समन्वय

धर्म क्या है ?

जीने का एक ढंग, एक प्रकार है धर्म, इसमें किसी जाति विशेष का कोई विशेष प्रकार नहीं है, इसके विशेष रूप से दो प्रकार बताये जाते हैं —सामान्य धर्म और विशेष धर्म ।

सामान्य धर्म के रूप मनुस्मृति में इस प्रकार बताये हैं—

धृतिः क्षमा दमाअस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।
धीर्विधा सत्यम क्रोधों दशकं धर्मलक्षणम् ।।[1]

अर्थात् धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय (चोरी न करना), शुचिता (भीतर और वाह्य दोनों की) इंद्रिय निग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य अहिंसा आदि ये धर्म के दस प्रमुख लक्षण बताये गये हैं । महाभारत के शान्तिपर्व में मनुष्य के सनातन धर्म की परिभाषा इस प्रकार है—

अक्रोधः सत्यवचनं संविभागः क्षमा तथा प्रजन स्वेषु दारेषु ।
शौचमद्रोह एव च आर्जवं मृत्युमरणं नवैते सार्ववर्णिका ।।[2]

मनुष्य का सनातन धर्म सत्य बोले, दान दें, तप करें, शुचि हो, सन्तोष रखें, इसमें लोक लज्जा हो, क्षमाशील हो व्यवहार में सीधापन हो, ज्ञानपूर्वक कार्य करें, शान्तिपूर्ण हो, दया करने वाला, ध्यान एकाग्र करने वाला हो । इससे भी ऊपर सनातन धर्म के विषय में महाभारत में एक जगह कहा गया है—

---

1. मनुस्मृति, 6।82 ।
2. महाभारत (शान्तिपर्व) 60, 7-8 ।

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा भिरा । अनुग्रहश्य दानं च समां धर्मः सनातन ।।[3]

सभी प्राणि वर्ग के साथ मन, कर्म, वाणी से द्रोह न रखना, अनुग्रह भाव रखना, यही सज्जनों का भाव है, यही सदा सत् है । नित्य धर्मों में सबसे बड़ी प्रतिष्ठा सत्य, अहिंसा और दान की है । उपनिषदों में कथा है कि देवताओं, असुरों, और मनुष्यों ने तय किया और वर मांगा, ब्रह्म ने तीनों को एक ही वर दिया । द·········द·········द । देवताओं ने इसका अर्थ इस प्रकार लिया कि हमें अपनी योग-वृत्ति को नियन्त्रण में रखना चाहिये । हम बहुत भोग के आसक्त हो गये हैं, इसे वश में करना चाहिए क्योंकि मनुष्यों ने हमें कृपण और लोभी समझा है, अत: हमें देना चाहिए । दानवों ने अपने को अतिकर समझ 'द' से दया का उपदेश समझा । दान करने में मनुष्य संकोच छोटेपन और सीमित स्व के ऊपर विजय प्राप्त करता है । पर सबसे बड़ा सनातन धर्म सत्य है, धर्म का मुख्य आधार भी है । सत्य की खोज की भावना मनुष्य की दृष्टि को उदार बनाती है । तभी वह किसी को भी अपने विरोध में नहीं पाता । वह समझता है कि दूसरे को मारने का निषेधात्मक मूल्य हिंसा है । निषेधात्मक मूल्य से बचाना ही मनुष्य की मनुष्यता में दीक्षा है । और जब मनुष्य में यह उदारता आती है तो वह स्वत: दानशील हो जाता है । सीमित जीवन वाला मनुष्य सत्य के विराट रूप में स्वयं खिचता जाता है । हिन्दू धर्म शास्त्रों में सत्य की और ऋतु को जोड़ा गया है । ऋतु के तीन पहलू हैं पहला प्रकृति की गति, दूसरा विश्व दृष्टि की नियमित सामान्य व्यवस्था और फिर यज्ञ के सम्पर्क में देवाराधन का सम्यक और व्यवस्थित विधान, इसका तीसरा अर्थ मनुष्य कानैतिक आचारण भी ।[4] यह भी धर्म शास्त्रों में कहा है कि सच्चाई का प्रिय होना चाहिये पर प्रिय को ऋतु विरोध नहीं होना चाहिये ।

इस प्रकार से सत्य, प्रिय और ऋतु-तीनों को एक बिन्दु पर रखकर तीनों को सादेक्ष बनाना चाहिये । ऋतु का अर्थ—सृष्टि की गति का नियम सत्य का अर्थ होता है टिकने की क्षमता । सनातन धर्म का परिकल्पना में तीनों चीजें परम आवश्यक हैं । टिकने की क्षमता, गतिशीलता और सबके लिए प्रिय होना परस्पर सापेक्ष होने के कारण नित्य धर्म के साथ सनातन रूप में प्रवाही है । सत्य और प्रिय की बात मनुष्य की प्रगति के साथ सामंजस्य रखती है किन्तु असत्य से हुई प्रगति का निषेध भी अन्तयुक्त होना चाहिए । इसी प्रकार सत्य और ऋतु का महत्व जानने के लिये मनुष्य में रागात्मक चित्त को परितृप्त करने की क्षमता होनी चाहिए । जैसा मनुस्मृति में कहा है—

---

3. महाभारत (शान्तिपर्व) 162.2 ।
4. हिस्ट्री आफ धर्म शास्त्र—भाग-4 पृष्ठ 2ले०पी०वी० काणे ।

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यम् प्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रह्मदेव धर्मः सनातनः ॥5

ये धर्म सबके लिये, प्रत्येक अवस्था के लिए हैं । इन्हीं से दूसरे धर्म आभाषित होते हैं । इनके आलोक में ही उन्हें देखना और परखना चाहिए ।

मूलभूत धर्म के अलावा हमारे व्युत्पन्न धर्म भी है । इसमें कुछ नियम पूर्वक और कुछ नैमित्तिक हैं । प्रतिदिन करने के धर्मों में शरीर के भीतर बाहर की शुचिता है, ध्यान है, ज्ञानार्जन या स्वाध्याय है । सभी प्राणियों को समस्त देशकाल को बलि या उपहार देना है, दान, दया, क्षमा, कपटरहित व्यवहार, भोग-नियंत्रण क्रोध पर काबू, शरीर को धर्म कार्य हेतु मानना, जागरूकता, कर्तव्य पालन का अनुष्ठान आदि सिद्धियों के लिये कई प्रकार के अनुष्ठान नित्य कर्म में आते हैं । शरीर और मन को चिन्तन योग्य बानाने के लिये प्रात: स्नान और अंग शुचिता आवश्यक है । सन्ध्या बन्दन के द्वारा सृष्टि के उद्देश्यों के साथ तादात्म स्थापित करने का प्रयत्न, तर्पण के द्वारा ऋषियों, देवताओं, पितरों के प्रति कृतज्ञता का स्मरण, स ी प्राणियों हेतु अपने को अर्पित करने का प्रयत्न, गायत्री मन्त्र के जाप से वाह्य प्रकाश को समाहित करना ये चिंतन सभी प्रकार सधते हैं । निम्न धर्म में अनुष्ठान रूप मे अतिथि सेवा है, जो लोक व्यापी नारायण का प्रतिनिधि होता है । भोजन भी एक धर्म है, क्योंकि हिन्दू प्राण अन्यमय मानते हैं, अत: वह समस्त प्राणियों के साथ प्राण जोड़ना और पांचों प्राणों के लिए अन्य को अर्पित करके अन्य ग्रहण करना चाहता है । वह विराट स्वरूप का स्मरण अन्तरिक्ष, आकाश, वायु, प्राण और अग्नि में करता है। अत: भोजन भी धर्म का अविभाज्य अंग है । भोजन का दोहरा अर्थ है—भोजन से अपना पोषण करना, जिससे दूसरों का भी पोषण कर लें, क्योंकि दूसरों में कही अपना अन्तर्निहित है भोजन केवल इन्द्रिय आस्वाद या पेट पालन नहीं है ।

इस प्रकार जो कर्म प्रतिदिन के हैं, मनुष्य के निजी दायित्व की पूर्ति के लिए हैं, वह धर्ममय है । जब तक कि वे परिवेश के साथ सामंजस्य रखते हुये किये जायें या विश्वात्मा की भावना से किये जायें, वह सब व्युत्पन्न धर्म नियमपूर्वक करने के हैं ।

इसके अलावा नैमित्तिक धर्म भी है । नैमित्तिक धर्म दो प्रकार के हैं—नियत और अनियत । नियत नैमित्तिक धर्म मनुष्य के जीवन चक्र की विभिन्न अवस्थाओं से सम्बद्ध है । इसके अन्तर्गत गर्भाधान से अत्येष्टि तक षोडश संस्कार आते हैं—गर्भाधान पुंसक, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण अन्नप्राशन, चोलकर्म, विधारंभ, कर्णबंध, उपनयन, समावर्तन, विवाह, अगन्याधान और अन्त्येष्टि ।

5. मनुस्मृति ।

ये संस्कार मनुष्य की विविध अवस्थाओं के कर्त्तव्य पालन से सम्बद्ध अनुष्ठान, प्रथम अवस्था में ब्रह्मचर्य, द्वितीय में ग्रहस्थाश्रम, तृतीय में वानप्रस्थ, चतुर्थ में सन्यास नियत अर्थात् कालावधि से बंधे हुए नैमित्तिक कर्म है—कालचक्र का ऋतुचक्र से सम्बन्धित। इसमें पर्व और उत्सव भी आते हैं। अनियत नैमित्तिक धर्म के अन्तर्गत कुआं खोदना, बाग लगवाना, पाठशाला बनवाना आदि लोकों प्रकार के इष्टापूर्त कार्य आते हैं। सत्संग मन्दिर पूजा नित्य भी हो सकती है, नैमित्तिक भी। पूजा व्यक्तिगत होती है, समूह में भी, प्रत्येक व्यक्ति की अपनी व्यक्तिगत भूमिका होती है। पूजा मात्र धर्म नहीं है। न पुजारी मात्र-धर्म का व्यवस्थापक है। पूरा जीवन धर्म है। अतः धर्म के स्वरूप पर विचार करने से वह तीन रूपों में दिखाई पड़ता है। तात्विक पारलौकिक तथा ऐहिक या व्यावहारिक। तात्विक रूप से धर्म वह वस्तु है जिसके द्वारा प्रत्येक वस्तु अपने स्वरूप को धारण किए हुए है। इस दृष्टि से स्वभाव ही धर्म है। अग्नि का धर्म दाहकता अथवा मनुष्य का धर्म मनुष्यता है। इस प्रकार वह तत्व जो आत्म रूप धारण किए हुए है समस्त विश्व का धर्म हुआ। अतः विश्व व्याप्त चैतन्य ही विश्व का धर्म हुआ। इसी धर्म की अनुभूति मामलों अथवा रहस्य वादियों को होती है।

धार्मिक सदैव पूर्ण को प्राप्त करना चाहता है इसलिए असत् और अशिव पर सत् और शिव की विजय ही उसका लक्ष्य है किन्तु मूल धर्मात्मक तत्व के अनुभव साधनों के अर्थ में धर्म उत्तरोत्तर संकुचित होता चला गया। पारलौकिक दृष्टि से अभ्युदय के साधनों को धर्म कहा गया और ऐहिक या व्यावहारिक दृष्टि से समाज अथवा विश्व का विचारण करने वाले तत्वों के समान्य या विशेष रूपों को धर्म कहा गया। इस प्रकार धर्म अपने तात्विक रूप में अपरिवर्तनीय है किन्तु व्यावहारिक या अन्य रूपों में परिवर्तनीय हो गया। इसलिए धर्म अपने व्यापक अर्थ में रूढ़िगत विश्वास न होकर वह अनुभूति है जिसमें एक सचेतन, शाश्वत सत्ता समस्त विश्व में व्याप्त प्रतीत होती है और उसी सचेतन सत्ता में निमग्न होकर धार्मिक अपने वास्तविक स्वरूप को पाना चाहता है।

कुछ नियत कालिक धर्म इस प्रकार है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण स्थान संस्कारों का है। हिन्दू जीवन संस्कार को महत्व बहुत देता है। इसलिए प्रत्येक नयी अवस्था में प्रवेश करते ही कर्म के प्रति जागरूकता लाई जाती है।

तत्कालीन युग के विविध धार्मिक सम्प्रदाय

मध्यकाल में विभिन्न धर्मों एवं सम्प्रदायों का बोलवाला था। एक ओर सिद्धों तथा नाथों की प्राचीन परम्परा प्रचलित थी, दूसरी ओर मुसलमानों का एकेश्वरवाद, सूफियों का सूफीवाद, शैवों का शैव-सम्प्रदाय, वैष्णवों का वैष्णव सम्प्रदाय, रामभक्ति, कृष्णभक्ति-सम्प्रदाय, शक्ति उपासकों का शक्ति सम्प्रदाय

आदि विभिन्न मत प्रचलित थे। निर्गुण और सगुण का संघर्ष भी अपनी पराकाष्ठा पर बना हुआ था। पंचदेवों (विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य तथा गणेश) की उपासना भी प्रचलित थी। तुलसी के मानस से भी यह बात सिद्ध होती है। यथा—

'राजपति और पुरारि तमारी,
उमा रमन पद वन्हि बहोरी,
कि नर्वाहि, अंचल अंजलि जोरी।'

(रामचरितमानसः अयोध्या चित्रकूट दरबार)

इस समय बहुत से देवी-देवताओं की पूजा प्रचलित थी, प्रेत-पूजा का भी ढोंग धार्मिक ओट लिए हुए था। कबीर ने इसका खुले शब्दों में इस प्रकार चित्रण किया है—

**'यह भ्रम भूल सकल जग खाया, जिनि जिनि पूजा तिनि जहं डाया।
झण्ड न पिण्ड न प्राण न देही, काटि-काटि निव कौतुक देही।
बकरी मुर्गी कीन्हेउ ददेवा, अगली जनम इन अवसर लेवा।
कहे कबीर सुनहुं नर कोई, भूतवा के पुजले भुतवा होई।'**

(कबीर ग्रन्थ, शब्द भाग)

कुछ महन्त लोग महादेव का पंथ चला रहे थे, यथा—

'महादेव को पंथ चलावे, ऐसो बड़ो महंत कहाये।'

हठयोगियों के आडम्बर की स्थिति कम जटिल नहीं थी। इस समय ब्रह्म-ज्योति के उपासकों की भी कमी नहीं थी।

मध्यकाल में अवतारवाद की परम्परा भी स्वीकृत हो गयी। दशावतार की पौराणिक मान्यता स्थिर हो गयी।

जैन और बौद्ध धर्म से भी पर्याप्त आडम्बर आ गये थे।
यथा—

**'जैन जीव की सुधि न जाने वाली तोरि दुहुरं आने।
दोना मजा चंपक फूला, तामे जीव से कर तुला।'**

(क०ग्र०, रमैणी भाग, पृष्ठ 182)

इस समय भक्त कवियों के हृदय में गुरु के प्रति इतनी आस्था थी कि इसे ईश्वर के समकक्ष मान्यता मिल गयी थी। कबीर ने कई स्थानों पर इस बात को व्यक्त किया है। यथा—

'गुरु-गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागो पांय,
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो मिलाय।'
(कबीर ग्रंथावली, साजी, गुरुदेव को अंग)

इधर साम्प्रदायिक-आचार्यों के अभ्युदय से वैष्णव धर्म प्रबल हो गया था। 11वीं शताब्दी में रामानुजाचार्य 'श्री सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा कर चुके थे, जिसमें लक्ष्मी नारायण की पर्याप्त मान्यता थी। 12वीं शताब्दी में मध्वाचार्य ने द्वैतवाद के सिद्धांत को चलाया जिसमें ब्रह्म और जीव की पृथक्-पृथक् सत्ता स्वीकार की गयी, इसी शताब्दी में निम्बाकाचार्य हुए, जिन्होंने कृष्ण भक्ति में राधा को प्रतिष्ठित किया।

इनकी जन्म तिथि 1114 ई० मानी जाती है। 1300 ई० में विष्णु स्वामी के अस्तित्व ने कृष्ण भक्ति में नया मोड़ आया। इनका सम्बन्ध बल्लभ सम्प्रदाय से माना जाता है। इन्होंने 'सर्वज्ञ सूक्त' नामक अपने ग्रन्थ में यह बतलाया है कि ईश्वर सच्चिदानन्द का स्वरूप तो है किन्तु वह जीव से पृथक् है। माया ईश के आधीन है और जीव माया छल होने के कारण क्लेश पाता है।

14वीं शताब्दी में स्वामी रामानन्दाचार्य ने रामभक्ति के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन किये। रामानुज ने रामभक्ति का क्षेत्र जहां केवल सवर्णों तक सीमित रखा था और शूद्र इसमें प्रवेश नहीं पा सकते थे, वहां रामानन्दाचार्य ने शूद्रों के लिए रामभक्ति का द्वार खोल दिया। इसका यह प्रभाव हुआ कि रामभक्ति धारा का विशेष प्रचलन हुआ और जो अछूत हिन्दू धर्म का परित्याग कर अन्य धर्मावलम्बी बन रहे थे, वे सभी पुनः हिन्दू धर्म की ओर बढ़ने लगे। इस प्रकार वैष्णव धर्म अन्य धर्मों पर विजयी हो गया।

14वीं शताब्दी में जीव गोस्वामी के आविर्भाव ने वैष्णव धर्म के प्रतिष्ठित करने के लिए इसे शास्त्रीय आधार प्रदान किया, जिससे कृष्ण शक्ति धारा को विशेष प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। 1449 ई० में स्वामी वल्लभाचार्य का जन्म हुआ। इन्होंने कृष्ण भक्ति के क्षेत्र में नवीन उद्भावनाओं का प्रवेश कर इसे शास्त्रोक्त एवं लोक रंजक बना दिया। यद्यपि निम्बार्क ने ही कृष्ण भक्ति के साथ राधा की प्रतिष्ठा कर दी थी किन्तु बल्लभ ने उसकी विशेष पुष्टि की थी। जिसके कारण गोपी बल्लभकृष्ण हिन्दी काव्य के अनुजीव्य बन गये। उपर्युक्त चारों आचार्यों। रामानुज, निम्बार्क, मध्व तथा बल्लभ ने ब्रह्म सूत्र पर अपने-अपने ढंग से भाष्य लिखे, जिससे वैष्णव धर्म को उच्च कोटि के सिद्धांतों की उपलब्धि हुई।

काव्य के क्षेत्र में कबीर ने ज्ञानाश्रयी शाखा का प्रवर्तन किया, जिसमें अधिकांश संतजनों को शरण मिली और इस धारा में अधिकांश जितने भी कवि हुए सभी निम्न वर्ग के संत थे। उदाहरणार्थ धर्मदास, नामदेव, रैदास आदि। इन संतों

के अपने विभिन्न सम्प्रदाय थे, जैसा कि आचार्य परशुराम चतुर्वेदी जी ने लिखा है—

'बारकरी सम्प्रदाय, बालपंथ, सहजिया सम्प्रदाय, नाथपंथ, कबीर पंथ, साधू सम्प्रदाय, दादूपंथ, निरंजनी सम्प्रदाय, बावरी पंथ, मूलक पंथ, बाबा लाली सम्प्रदाय धानी सम्प्रदाय, सत्यानामी सम्प्रदाय, धरनीश्वरी सम्प्रदाय, दरियादासी सम्प्रदाय, शिवनायवीं सम्प्रदाय, चरणदासी सम्प्रदाय, गरीब पंथ, पानप पंथ, रामस्नेही, सम्प्रदाय आदि ।[6]

निर्गुण धारा की सूफी शाखा में कुतवन, मंझन उस्मान जायसी आदि ने सूफी धर्म का प्रतिनिधित्व किया और इन्होंने हिन्दू धर्म के साथ समन्वयात्मक पद्धति को अपना कर प्रेम के द्वारा ईश्वर प्राप्ति का मार्ग जनता के सामने प्रस्तुत किया । यह उल्लेखनीय है कि सूफी धारा के मानने वाले अधिकांश मुसलमान ही थे और इस धारा के प्रचारक कवि भी मुस्लिम ही थे इतना होने पर भी इन सूफियों को मुस्लिम धर्मावलम्बियों से संघर्ष लेना पड़ता था ।

मुस्लिम सम्प्रदायों में ख्वाजा सम्प्रदाय का महत्व माना जाता है 1430 ई० में पीर सदुरुद्दीन ने अली को विष्णु का दसवां अवतार घोषित किया । इसने 'दशावतार' नाम की एक पुस्तक लिखी जिसमें विष्णु के नौ अवतारों के साथ ही साथ इली को भी दसवां अवतार घोषित किया । गुजरात क्षेत्र में इस सम्प्रदाय के लोग 'सतपंथ' के अनुयायियों के रूप में प्रसिद्ध है । 1485 ई० में महाप्रभु चैतन्य के आविर्भाव से वैष्णव धर्म का विशेष प्रभाव बढ़ा, इन्होंने कृष्ण भक्ति में राधा को विशेष प्रतिष्ठा दी । जनता ने उन्हें कृष्णावतार माना । इनके बाद रघुनाथ गोस्वामी ने भी (1498 से 1584) राधा को इष्टदेवी मानकर अनेक साम्प्रदायिक ग्रंथों की रचना की और इसी परम्परा में अन्य अनेक संत कवियों ने योगदान दिया ।

16वीं शताब्दी में रामभक्ति कवि अग्रदास जी हुए, जिन्होंने रसिक सम्प्रदाय का प्रवर्तक आचार्य होने का श्रेय प्राप्त किया । ऐसा ज्ञात होता है कि कृष्णभक्ति की ललित भावधारा से प्रभावित होकर इन्होंने रामभक्ति के क्षेत्र में भी शृंगारिकता का प्रवेश कर दिया है । इस सम्प्रदाय के उपासकों को राम सीता के युगल रूप का प्रेम अभीष्ट है और इन्होंने राम की अपेक्षा सीता को अधिक महत्व दिया है ।

रामभक्ति के क्षेत्र में महाकवि तुलसी ने युगान्तर उपस्थित कर दिया। इन्होंने वैष्णव धर्म को तो स्वीकार किया, किन्तु उनका धर्म इतना व्यापक और इतना उदार बना जिससे तत्कालीन प्रचलित सभी धर्मों का समन्वय हो गया। फलतः तुलसी का धर्म, युग धर्म बन गया । इस प्रकार तुलसी ने सम्प्रदायों को भटकने

---

6. उत्तर भारत की संत परम्परा, आ० परशुराम चतुर्वेदी, द्वितीय संस्करण सं० 2021, अध्याय-6, पृष्ठ 569 से 761 के आधार पर ।

से बचाकर उन्हें व्यापक दृष्टिकोण दिया। इस प्रकार उनका धर्म मानव धर्म में प्रतिष्ठित हो गया। तुलसी ने राजा-प्रजा, माता-पिता, पुत्र, भाई, मित्र आदि के कर्त्तव्यों को भी तद्तद् व्यक्तियों का धर्म बतलाया, जिससे समाज को बड़ी राहत मिली। उन्हें एक नया एवं कल्याणकारी पथ प्राप्त हुआ जो सार्वजनिक कल्याण क्षेत्र में वरदान सिद्ध हुआ। इसके अलावा तुलसीदास ने धर्म के अनुसार कर्त्तव्यों को ऊपर उठाने की पूरी कोशिश की पर सम्पूर्ण समाज में समन्वयवादी दृष्टिकोण को नहीं पनपा पाये। इसको पूरी तरह से सफल सूफी कवि ही हुए जिन्होंने ज्ञान और प्रेम के सशक्त माध्यम को अपनाया।

शैव, शाक्त और वैष्णव सम्प्रदायों में समन्वय

शैव एवं शाक्त सम्प्रदायों को दार्शनिक एवं धार्मिक पद्धति ने मध्य कालीन युग के समाज के अन्तर्गत विशेष रूप से ख्याति प्राप्ति की थी। कालांतर में इसका महत्व कुछ कम अवश्य हो गया किन्तु अपने सिद्धांतों के किसी न किसी रूप में यह आने वाले धार्मिक सम्प्रदायों को भी प्रभावित करते ही रहे।

शाक्त धर्म के अन्तर्गत बहुत से तंत्रग्रंथ लिखे गये हैं। जिनमें कुब्जिका मंत्र तंत्र, परमेश्वर मंत्र तंत्र, तथा महाकोल ज्ञान विनिर्णय आदि ग्रन्थ बहुत पुराने माने जाते हैं तथा निःश्वास तत्व संहिता तथा 'चंडी शतक' आदि कुछ पीछे के ग्रन्थ माने जाते हैं। शाक्त सम्प्रदाय वाले शिव के पत्नी दुर्गा को इस सम्प्रदाय के केन्द्र में स्थित रहती है। अस्तु सृष्टि के सम्पूर्ण क्रिया कलाप शिव की दया तथा मोक्ष आदि इसकी (शक्ति) के द्वारा प्राप्त होती है। सारांश यह है कि शक्ति का महत्व शिव से अधिक है।

शाक्त सम्प्रदाय की दार्शनिक विचारधारा सांख्य तथा वेदांत से ली गयी है, जिसके अन्तर्गत योग की महत्वपूर्ण स्थान है, अनादि तथा सनातन शब्द को ही शक्ति कहते हैं, नाद बिन्दु तथा बीज इसकी गतियां हैं। जिसके माध्यम से उसे पहचाना जा सकता है। शाक्त सम्प्रदाय के अन्तर्गत मंत्रों का मण्डल और चक्रों का असीम उपयोग प्राप्त होता था।

हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों में समन्वय स्थापित करने की दिशा में उदार सूफी संतों ने अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका स्थापित की। सूफी इस्लामी उदारता के प्रतीक कहलाते हैं, क्योंकि इन्होंने इस्लाम की कट्टरता का विरोध करते हुए सदाचार, पूर्ण जीवन यापन करने पर विशेष बल दिया। 12वीं शताब्दी के लगभग अंत में सूफी संतों का भारत में प्रवेश प्रारम्भ हुआ। 1190 ई० में प्रसिद्ध सूफी संत ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती ने यहां प्रवेश किया। सूफी काव्य मर्मज्ञ राम पूजन तिवारी का कथन है कि जहां तक पता चलता, सन् ई० 12वीं शताब्दी के अंत में पृथक् प्रथम सूफी साधक

अन्य मुस्लिम देशों से आये।[7] सूफी संतों और साधकों ने अपने सरल जीवन द्वारा साधारण जनता पर अपना नैतिक प्रभाव स्थापित करने में अद्भुत सफलता प्राप्त की। संत साहित्य मर्मज्ञ-आचार्य परशुराम चतुर्वेदी की धारणा है कि सूफी लोगों में इस्लामिक कट्टरतापन अधिक न था। हिंदू समाज व हिंदू परम्परा की अनेक बातों को ये शीघ्र अपना लेते थे। और उनके कारण यहां के सर्वसाधारण में हिल-मिलकर उन्हें अपनी ही बातें सरलतापूर्वक समझा देते थे। हृदय की शुद्धता वाह्याचरण की पवित्रता ईश्वर के प्रति अपार श्रद्धा पारस्परिक सहानुभूति, विश्व भ्रातृत्व व विनय प्रेम की ओर उनका ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करते थे और इन्हें अपने मत की मुख्य देन बतलाते हुए उसे स्वीकार कर लेने का आग्रह भी कर लेते थे।[8]

शेख मुइनुद्दीन चिश्ती के अतिरिक्त कुतुबुद्दीन, बख्तियार, निजामुद्दीन औलिया, निसरुद्दीन, महमूद मलिक मोहम्मद जायसी आदि अनेक सूफी संतों ने साम्प्रदायिक सोमन रूप की दिशा में पहल की। निजामुइद्दीन-औलिया ने हिन्दुओं को बली तथा भाई कहकर सम्बोधित किया। सूफी की उदारता ने निम्न वर्गों पर विशेष प्रभाव डाला।

डा० ताराचन्द्र के शब्दों में हिन्दू मुस्लिम मिलन के कारण एक संहति वाद का उदय अवश्य हुआ, उससे एक समान ईश्वर की आराधना का आविर्भाव हुआ। जिसे हिन्दू-मुस्लिम दोनों पूजते थे जैसे सत्यवीर।[9] इस प्रकार हिंदू-मुसलमानों के स्नेह दीक्षा प्रदान करने से इन सूफी साधकों महात्माओं और कवियों का अत्यन्त उल्लेखनीय योगदान है। सूफियों का मत सूक्ष्म रूप से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि समन्वय ही उसकी मूल दृष्टि रही है। उसका अद्वैत मूकण्ड सर्वात्मवाद भारतीय दर्शन का दान है। उसके सिद्धांतों के अध्ययन से जान पड़ता है कि उसकी शांति भारतीय सिद्धान्तों से ही हुई है। उन पर भारतीय संस्कृति का इतना प्रभाव पड़ा कि उनके दिल की मूर्ति के लिए भी विरोध न रह गया और वे 'बुत' के परदे में भी खुदा को देख सकते थे। इससे स्पष्ट होता है कि सूफी विचार परम्परा और हिन्दू विचार परम्परा में अत्यधिक समानता की 'दिलार परम्परा की इस समानता ने स्वभावतः इन्हें हिंदुओं की ओर आकृष्ट किया। उन्होंने हिंदुओं से खूब मेल-जोल बढ़ाया हिंदू साधुओं का उन्हें सत्संग प्राप्त हुआ। हिन्दू घरों से उन्होंने भिक्षा प्राप्त की।

---

7. सूफीमत साधना और इतिहास-रामपूजन तिवारी पृष्ठ 4-9।
8. उत्तरी भारत की संत परम्परा, परशुराम चतुर्वेदी पृष्ठ 77।
9. इन्कलूसेन्स आफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर, ताराचन्द्र पृष्ठ 217।

हिंदू हृदय की सरल सुषमा को उन्होंने उद्धरित कर मुस्लिम हृदय के सौंदर्य को प्रस्फुटित करना चाहा। अतएव उन्होंने मौलाना रूमी की मसनवीं के ढंग पर हिंदू जीवन की मर्म-स्पर्शिणी कहानियां लिखकर भारतीयों की बुद्धमूल संस्कृति की मनोहारिणी व्याख्या की।'[10]

मध्ययुग के साधकों के अनुसार सभी पंथ ईश्वर से जाकर मिलते हैं। पर सम्प्रदाय होने पर भी मनुष्य के बीच या अभेद दर्शन मध्य युग की विशेषता है। जो जाति भेद भारत की समस्या है, उन्होंने इसे अस्वीकार किया। कबीर ने कहा—

'गुपुत प्रगट है एके मुद्रा, काको कहिये ब्राह्मन शूद्रा।
छूटे गर्व भूलों मत कोई, हिन्दू तुरुक भूठ कुठा होई।'

आध्यात्म जगत् में, सम्प्रदाय भेद, जातिभेद, स्त्री-पुरुष भेद टिक नहीं सकते हैं।

एक ही क्षुधा, तृषा आदि अभावों के समभाव ये आज सभी व्याकुल हैं। इसी से वर्तमान युग में साम्यवाद का प्रचार हुआ। मध्ययुग में कबीर, दादू आदि ने इसी बात से भगवान के साथ सबका समान सम्बन्ध देखकर मानव मात्र की समानता का प्रचार किया।

हिन्दी सूफी-कवियों का प्रेम-धर्म

सूफियों में ईश्वर की कल्पना-प्रेम के रूप में प्राप्त होती है। यह 'प्रेम' लौकिक प्रेम न होकर आध्यातिमक प्रेम है। प्रणय के द्वारा आत्मा का परमात्मा से मिलन माना गया है। सूफी कवियों की अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना करने वाली प्रेम कहानियां प्रबन्ध काव्य के कोटि में आती हैं, इन्होंने अपने प्रेमाख्यानों में माशूक या प्रेमिका के सौंदर्य को ऐसे प्रकाश अथवा ज्योति पुंज के रूप में चित्रित किया है कि जिसकी ओर जीव सत्ता आकृष्ट होकर अपना सर्वस्व अर्पण कर प्रेम के बीहड़ मार्ग पर अग्रसर होने को उद्धृत हो जाता है। इन प्रेमी-युग्म को आपस में मिलने के लिए प्रेम-मार्ग की अत्यन्त विकट बाधाओं और भयंकर विघ्नों का लेश मात्र चिन्ता किये बिना सिद्धि की ओर बढ़ते हैं। अतः सूफी कवियों के अनुसार सच्चा प्रेम-धर्म वही है जो सारे बंधनों को तोड़कर अपने उद्देश्यों में सफलता प्राप्त करें। इन्होंने कभी-कभी आश्चर्य तत्व पर प्राकृतिक शक्तियों के द्वारा प्रेम-मार्ग में आपने वाली दुर्गम कठिनाइयों को दूर किया।

---

10. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृष्ठ 70। स० डा० भगीरथ मिश्र।

सूफी मत साधना और साहित्य में प्रेम का अतीव महत्वपूर्ण स्थान है इनकी साधना प्रेम की साधना है। इनका मार्ग प्रेमपंथ है इनका प्राप्य प्रेम प्रभु इनका एक 'भरोसो, एक बल, एक आस-विश्वास प्रेम ही है।[11]

अगर सूफियों को प्रेमी साधक नाम से अभिहित किया जाय तो अनुचित नहीं है। प्रेम उनके काव्यों में महत्वपूर्ण प्रतीक है। सूफी यूं तो किसी को भी प्रेमका पात्र कह सकते हैं, परन्तु उनका प्रीतम परमात्मा ही है। उसी प्रीतम को वह अपने प्रेम का आलम्बन मानते हैं। सूफियों में यह विशिष्टता है कि वह समस्त संसार को इसी प्रीतम में निमग्न देखते हैं। प्रेम के पुल पर चढ़कर ही सूफी साधक भवसागर को पार करते हैं। प्रेम उनका अमोघ शास्त्र और परम साधन है।[12]

'प्रेम ज्ञान (मारिफ) की भांति ईश्वरीय देन है, यदि सम्पूर्ण संसार ही प्रेम को अर्जित करना चाहे तो सम्भव नहीं है। ईश्वर के प्रेमी वे हैं जिनसे ईश्वर स्वमेव प्रेम करता है। जुनैद का कथन है कि 'मैं सोचता रहा कि ईश्वर से प्रेम करता हूं पर विचार करने पर ज्ञात हुआ कि प्रेम जो ऊपर छाया हुआ है उसका है।[13]

प्रायः सभी धर्मों में परमात्मा के प्रति प्रेम को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। परमात्मा की प्राप्ति के लिए जितने साधन और मार्ग बनाये गए हैं, उनमें प्रेम को बहुत बड़ा स्थान प्राप्त हुआ है। मानव में श्रद्धा एवं विश्वास की उत्पत्ति प्रेम के आधार पर हुई है। सूफियों का शाश्वत विश्वास है कि उसी प्रेम के द्वारा सब कुछ सम्भव है। परमात्मा सम्बन्धी वेदना तथा ज्ञान प्राप्त करना प्रेम के द्वारा सम्भव है। प्रेम साधना की सिद्धि परमात्मा (खुदा) की एकत्व प्राप्त करने में है। परम सत्ता के साथ एकत्व का बोध सूफी साधना के क्रमिक विकास के फलस्वरूप घटित हुआ है। सूफियों का प्रेम प्रच्छन के प्रति है। प्रसंग सामान्य प्रेम का होता है किंतु संकेत परम प्रेम की ओर होता है। लौकिक पात्रों के माध्यम से लौकिक प्रेम की अभिव्यंजना करते हुए भी अलौकिक की स्थापना करने का दुरूह प्रयास इन सूफी प्रबन्ध काव्यों में सफलतापूर्वक हुआ। जायसी कहते हैं कि इस जगत में प्रेम ही सब कुछ है। प्रेम के द्वारा ही मनुष्य स्वर्ग का अधिकारी होता अगर उसने प्रेम नहीं किया तो वह एक मुट्ठी राख के सिवा और क्या है।[14] जामी की एक कविता में

---

11. तुलसीकृत दोहावली, गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ठ 96।
12. पद्मावत का काव्य सौंदर्य, डा० शिवसहाय पाठक पृष्ठ 220।
13. इन एन ईस्टर्न रोज मार्डन, हिन्दी अनु० नर्मदेश्वर चतुर्वेदी (इस्लाम के सूफी साधक) पृष्ठ 97।
14. 'मानुस प्रेम भयउ बैकुंठी। नाहित काह छार एक मूठी॥

जायसी ग्रंथावली पृष्ठ 71।

कहा गया है कि 'इस संसार में तुम सैकड़ों उपाय कर सकते हो लेकिन एक मात्र प्रेम ही ऐसा है जो तुम्हारे 'अहं' से भी तुम्हारी रक्षा करेगा ।[15] सूफियों के अनुसार जब जीव प्रेमी प्रभु से मिलने जाता है तो उसके साथ इस असार संसार से धंधा, पोथी आदि कोई भी वस्तु नहीं जाती केवल प्रेम ही जाता है—

'धन्धा पोथि जाइव नहिं साथ'[16]

जायसी भी प्रेम की पुस्तक पढ़ने वालों को ज्ञानी पुरुष मानते हैं—

'कोटिक पोथी पढ़ि भरे पण्डित माने कोई ।
एकै अच्छर प्रेम का पढ़े सो पण्डित होई ।।'[17]

क्रांतिदर्शी कबीर ने भी प्रेम की भाषा को स्वीकार किया है—

'कबीर पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुवा पण्डित भया न कोई ।
ढाई अच्छर प्रेम का पढ़े सो पण्डित होई ।।'[18]

सूफियों के प्रेम धर्म में विरह का शाश्वत सम्बन्ध निरूपित हुआ है । डा० रामचन्द्र तिवारी कहते हैं—'प्रेम की लता के साथ विरह की अग्नि का सम्बन्ध स्वाभाविक है । प्रेमी की विरहाग्नि भी सरस प्रतीत होती है । सच्चा कवि वही है जिसके काव्य में प्रेम मधु का अमूल्य रस भरा हुआ है । जिसकी वाणी में विरह की वेदना है । प्रेम का कवि ही सच्चा कवि है उसके शरीर में न रक्त बहता है न मांस । वह समस्त व्यक्त प्रकृति को अत्यन्त और रहस्यमयी सत्ता के प्रेम में व्याकुल और मिलने के लिए उत्सुक देखता है । उसे सर्वत्र प्रेम की लालिमा दिखाई देती है वह चराचर की रहस्यमयी सत्ता के प्रेम वाणों से विधा अनुभव करता है ।[19]

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूफियों ने स्थान-स्थान पर प्रेम के माध्यम को स्पष्ट निरूपित किया कभी जीव के लिए अग्नि भी चन्दन है । और प्रेम सभी सुरा-पान कर लेने पर जीव को जीवन मृत्यु के भय से मुक्त घोषित करते हैं । प्रसिद्ध सूफी कवि रूमी ने कहा है—

---

15. जायसी, डा० रामपूजन तिवारी, पृष्ठ 85 ।
16. चित्ररेखा, सं० शिवसहाय पाठक, पृष्ठ 135 ।
17. वही, पृष्ठ 145 ।
18. कबीर ग्रंथावली, डा० माता प्रसाद गुप्त, पृष्ठ 65 ।
19. 'जेहि जिय प्रेम चन्दन बेहि आगी ।' जायसी ग्रंथावली, पृष्ठ

'It is the flame of love that fired me
It is the wine of love that inspired me'

अत: सूफियों ने प्रेम को मानव जीवन की सर्वाधिक प्रभावशाली व्यापक एवं दिव्य शक्ति के रूप में महत्व दिया है। प्रेम ही मनुष्य को देवत्व प्रदान करता है प्रेम ही ईश्वर की प्राप्त कवि का प्रमुख साधन माना है।

प्रेम का विस्तार

मध्य काल में 'प्रेम साधना' पूरे भारत में किसी न किसी रूप में व्याप्त तो थी पर उसका सही रूप में विस्तार नहीं हो रहा था इस युग में सूफियों ने जिस प्रेम भावना को अपनाया वह अव्यक्त के प्रति थी। सूफी अपनी प्रेम व्यंजना साधारण नायक-नायिका के रूप में करते थे। प्रसंग सामान्य प्रेम का होकर भी संकेत आध्यात्मिक प्रेम के प्रति देखा था। बीच-बीच से आने वाले रहस्यात्मक स्थल परम तत्व का आभास देना सम्पूर्ण सृष्टि को उसी एक से मिलने के लिए अत्यन्त व्यग्र दर्शाना सूफियों की प्रमुख विशेषता थी। प्रेम-साधना सौन्दर्य केन्द्रित होकर ही आगे बढ़ पायी।

सूफियों ने ऐसा माना, जहां प्रेम है वहीं सौंदर्य होता है। जहां सौंदर्य है वहीं प्रेम है। सौंदर्य और प्रेम मिलकर सुख एवं संतोष की सृष्टि करते हैं।

सूफियों ने प्रेम का विस्तार उस समय किया जब देश में तत्कालीन युग के विविध सम्प्रदाय अपने-अपने धर्मों का प्रचार कर, अपने-अपने ढंग का प्रेम सन्देशों का प्रचार कर रहे थे। कबीर अपनी डांट-फटकार की भाषा में धर्म, जाति और सम्प्रदाय के बीच फैली रूढ़वादिता को मिटाने की कोशिश कर रहे थे लेकिन उससे चन्द लोग ही लाभान्वित हो सके थे। उसी समय सूफियों ने राजा महाराजाओं की प्रेम कथाओं को आधार मानकर जीवात्मा का परमात्मा से मिलने का सही मार्ग 'प्रेम' का ढूंढ़ा। इसके द्वारा प्रेम के आध्यात्मिक रूप को श्रेष्ठ माना और उसे परम-ब्रह्म की प्राप्ति का प्रमुख साधन माना। जिससे प्रेम का विस्तार अति शीघ्रता से हुआ।

अत: हम कह सकते हैं कि जिस कार्य को सन्त कवि अपनी आदेशात्मक या झाड़ फटकार की शैली से नहीं कर पाये उसे इन सूफियों ने प्रेम के माध्यम से कर दिखाया। प्रेम का मूलाधार सौंदर्य की लोकोत्तर भावना है, इसीलिए सूफियों ने प्रेम को महत्ता प्रदान कर उसे हृदय की मांग माना है। वह पूर्णत्व की प्राप्ति का मधुर संस्थान है। हृदय की एक ऐसे परम हृदय की जरूरत महसूस होती है। जिसके संसर्ग में वह उस सीमा में आ जाना चाहता है कि वह अपने और अपने प्रेम के आश्रय के मध्य

किसी दूसरे की उपस्थिति को सर्वथा अस्वीकार कर देता है। सूफियों ने ऐसे प्रेम का विस्तार किया जो कि 'काम वासना को परिष्कृत करके प्रेम के प्राणोत्पादक मनोहर पुष्प को विकसित करती है' जायसी द्वारा प्रेम का यह वर्णन दर्शनीय है—

'सुनु, धनि ! प्रेम-सुरा के पिए। मरन जियन उर रहै न हिये।'

× × × × ×

सो पँजान पियैजो कोई। पीन अधाइ जाइ परि सोई ॥
'रातिहु दिवस रहै रस-भीजा। लाभ न देख, न देखै छीजा ॥'

सूफियों ने यह विश्वास किया कि भगवान प्रेम है। और अपने आनंद के लिए वह उसे मानव मानव में उत्पन्न करता है। अपने प्रेमियों ने अपने ही लिए वह प्रेम को धरोहर की तरह रख छोड़ता है। इस प्रेम को प्राप्त कर प्रेमी और प्रेमास्पद दोनों ही संतुष्ट होते हैं।

सूफियों के प्रेम की परिधि किसी संकुचित सीमा में सीमित नहीं है, अपितु वह क्षुद्र से क्षुद्र जीव से लगाकर उच्च से उच्च तक फैली है। इसका विस्तार परिवार से लेकर जाति, देश आदि की सीमाओं को पार कर सारे विश्व तक फैला हुआ है, इसमें जाति-पांति या ऊँच-नीच का भेदभाव नहीं है। प्रेम चाहे जिस हृदय में हो, वे उसका आदर करते हैं। प्रेम को इतना विह्वल रूप में दिखाया है जो कि सब कुछ छोड़कर प्रेमिका को पाने के लिए चल देते हैं।

प्रेम की उच्चता

सूफियों ने अपनी रचनाओं का आधार हिन्दू राजा महाराजाओं की प्रेम कहानियों को बनाया, पर इनके प्रेम के साथ जुड़ा ईश्वर को प्राप्त करने के ध्येय ने इन्हें उच्चकोटि का साबित किया।

इब्नुल अरबी का यह कथन है कि—प्रेम रूपी धर्म और परमात्मा के प्रति औत्सुक्य से श्रेष्ठ अन्य कोई धर्म नहीं है। प्रेम सब धर्मों का सार है, चाहे वह जो रूप धारण करे। सच्चा रहस्यवादी इसका सदैव स्वागत करता है। जब प्रेमी में प्रेम का पूर्णस्फुरण हो जाता है तो वह संसार को समभाव से देखने लगता है। उसके हृदय में मुसलमान, ईसाई, हिन्दू का कोई भेदभाव नहीं रह जाता है। उनका धर्म केवल एक रह जाता है प्रेम का धर्म। रूमी ने एक स्थान पर कहा है—'प्रेम

धर्म सभी धर्मों से अलग है। ईश्वरानुरागियों के लिए ईश्वर के अतिरिक्त कोई धर्म नहीं है।[20]

सूफियों के अनुसार प्रेम बुद्धि का मार्ग नहीं चुनता, उसका पथ श्रद्धा और विश्वास का होता है। सूफियों ने प्राय: इस पर भी जोर दिया कि प्रेम मार्ग में अग्रसर होना चाहते हो तो तर्क और बुद्धि का सहारा न लो। अपने में पूर्ण रूपेण हो जाओ।

13वीं शताब्दी में जब ईरान के प्रमुख सूफी काव्यकारों ने इसे अपनी पुष्ट लेखनी द्वारा हृदय ग्राही बनाया। जिसका अनुकरण भारतीय सूफियों ने किया। सूफीमत की सबसे सफल अभिव्यक्ति सनाई काव्य में हुई। सूफियों ने परमात्मा के सौन्दर्य के लिए प्रेम को प्रमुख माना। प्रेम कर्ता ही इसे प्राप्त कर सकता है। स्वयं पर प्रेम के द्वारा ही विजय प्राप्त की जा सकती है। सभी प्रकार के स्वार्थ सभी तुच्छताओं से स्वयं को बचाने के लिए प्रेम की सहायता ली है। प्रेम के सहारे इस बन्धन की जो इस संसार में निबन्ध कर देता है, परमात्मा से मिलन का साधन बनाया जा सकता है। यह दृश्यमान जगत ही मानो साधन और परमात्मा के बीच की कड़ी हो जाता है। अतएव प्रेम की साधना की परमात्मा की प्राप्ति के लिए सोपान माना जाता है।

अन्य सूफी साधकों ने प्रेम को उच्च कोटि का मानकर कहा है कि 'प्रेम हृदय में अग्नि के समान है जो परमात्मा की इच्छा के अतिरिक्त अन्य सभी वस्तुओं को जलाकर भस्मभूत कर देता है।

प्रेम को जिस उच्चता पर सूफियों ने पहुंचा दिया है, वहां तक अन्य कम पहुंच पाए हैं। प्रेम को इन्होंने इतना पवित्र कर दिया है कि उसमें स्वार्थादि क्षुद्र साँसारिक बातों की गन्ध तक नहीं रह जाती। प्रेम ही धर्म रूप हो जाता है, प्रेम ही सब धर्मों में श्रेष्ठ है। सूफियों ने लौकिक पात्रों से अलौकिक प्रेम के निरूपित किया। इनका धर्म प्रेम से ही उत्पन्न होता है। विशुद्ध प्रेम का रूपांतर ही धर्म है, सांसारिक सम्बन्धों में तथा पारिवारिक बंधनों में भी उन्होंने इस पवित्र प्रेम की झलक दिखाई है। इसी प्रेम के आधार पर सूफियों ने लोकधर्म की प्रतिष्ठा की है। इसी क्षेत्र में समाज की सब-ऊंच नीच जातियां तथा उसके प्रत्येक अंग एक हो जाते हैं।

सूफियों ने भारतीय कथानकों का उपयोग कर ईश्वरीय प्रेम को मानव चरित्र में उतारकर उसे ऊंचा उठाया। हिंदू संस्कृति तथा हिंदी भाषा के प्रेम ने

---

20. रूमी पोयट एण्ड मिस्टिक, श्री ए० निकलसन पृष्ठ 171। (एलेन एण्ड अनवि) लन्दन।

उन्हें इन अमर वाक्यों की रचना के लिए प्रेरित किया। इनमें सूफी प्रेमतत्व तथा भारतीय उच्च त्याग तथा सतीत्व के आदर्शों का मेल दिखता है। डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार सूफियों ने हिन्दू शरीर में मुसलमान प्राण डाल दिया है।[21]

प्रेम का समन्वय

सूफियों के सम्बन्ध में अगर प्रेम के समन्वय की बात कही जाए तो वह इनके अवर्णनीय प्रेमाख्यानों में तुच्छ-सी प्रतीत होती है। उन्होंने सब प्रकार के प्रेम की एकता को बताया है, क्योंकि प्रेम के स्रोत का अनुभव कर लिया था और भिन्न-भिन्न प्रेमों को उसी की छोटी धाराएं समझ लिया था। इसलिए उनका युगल प्रेमियों का प्रेम ईश्वर प्रेम में बाधक न बनकर, ईश्वर को, प्रेम को प्राप्त करने वाला बनता है।

सूफियों ने प्रेम का ऊंचा और समन्वयवादी आदर्श प्रस्तुत किया है। पद्मावत महाकाव्य में अनेक स्थलों पर इन्होंने प्रेम के आदर्श को मूर्त करने की चेष्टा की है। जायसी का प्रेम कटौती पर कस जाने पर मानव कंचन के सदृश्य खरा हो जाता है। सूफियों ने आत्मा परमात्मा के सम्बन्ध को प्रेम के रूपक द्वारा व्यक्त किया। भारत के लिए यह भावना नितान्त भिन्न नहीं थी। सांख्य दर्शन के प्रकृति और पुरुष विश्व की प्रेम लीला में स्त्री और पुरुष के ही प्रतीक हैं। उपनिषदों में भी परमात्मा के साथ जीवात्मा के मिलन की तुलना दो प्रेमियों में आलिंगन से की गई है। बृहदारण्यक उपनिषद में कहा गया है कि 'जिस प्रकार; कोई पुरुष अपनी प्रियतम द्वारा आलिंगन होने से सभी बाहरी या भीतरी बातों को एकदम भूल जाता है उसी प्रकार जीवात्मा भी परमात्मा के साथ प्रयुक्त हो जाने पर सभी बाहरी या भीतरी बातों का ज्ञान खो देता है।'[22]

सूफीमत में स्त्री केवल गृह पत्नी या प्रेमिका न होकर ईश्वरीय प्रकाश की किरण या सृष्टा की आत्मा मानी जाती है लौकिक प्रेम के आधार पर अलौकिक प्रेम का निरूपण ही सूफियों का प्रतिपाद्य विषय है।

प्रेम अद्वैतता की सिद्धि की ओर ले जाता है। हिन्दी सूफी कवियों के प्रेम निरूपण में अद्वैत-मान्यता लक्षित होती है। प्रगाढ़-एवं एक निष्ठ प्रेम की मनोवृत्ति इतनी प्रबल होती है कि वह प्रेमी को सदैव एक भाव में बने रहने के लिए बाध्य करती है। जिससे उसका सारा जीवन एकोन्मुख और एकनिष्ठ हो जाता है। सूफियों के प्रेम की पूर्णता और समानता इसी स्तर पर दिखती है।

---

21. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास-176।
22. वृहदाश्व्यक, उपनिषद 4।3।29।

प्रेमोदय से लेकर प्रिय के साथ पूर्ण तादात्मय की प्राप्ति तक प्रेमी की मनः स्थिति का विश्लेषण मनोविज्ञान एवं आध्यात्म दोनों के लिए चुनौती है।

प्रेमतत्व की पूर्णता एवं परिपक्वता प्रियतम के प्रति एकनिष्ठ एवं अनन्य भाव के उदय में होती है। प्रेम अद्वैतता की सिद्धि की ओर को जाता है। इसीलिए विचारकों ने ज्ञानाद्वैत के सामानान्तर भावाद्वैत की स्थापना की है। सूफी प्रेम साधना में भी यह अद्वैत भावोत्पन्नता लक्षित होती है। जायसी के प्रेम निरूपण में भी प्रेम की इस परिपक्वावस्था को निर्दिष्ट किया जा सकता है।

प्रेम धर्म पर लोक धर्म की स्थापना

प्रेम प्रतिहीन अन्य साधनों से न तो आत्मा की उन्नति हो सकती है, और न समाज का सामंजस्य ठीक रह सकता है। सूफियों ने प्रेम धर्म को ही ज्ञान, विराग, कर्म आदि सबसे श्रेष्ठ बताया है। तथा प्रेम की मानव जीवन की सर्वाधिक प्रभावशाली, व्यापक एवं दिव्य शक्ति के रूप में महत्व दिया है। प्रेम ही मनुष्य को देवत्व प्रदान करता है। प्रेम-धर्म के इसी महत्व को महाकवि जायसी के पश्चाताप करते हुए राघव चेतन के मुख से कहलाया है—

'कवि सो प्रेम तंत कविराज। झूठ सांच जेहि कहत न साजा।'

सूफी संत को सृष्टि की रचना प्रेम के कारण मानते हैं। नूर मोहम्मद कहते हैं अगर प्रेम न होता तो सृष्टि की रचना न होती। भारतीय साहित्य में प्रेम का जो स्वरूप था उसे सूफियों ने अपने रंग में रंग डाला, प्रेम अर्जित करने का वस्तु नहीं है अपितु वह ईश्वरीय देन है। इसीलिए आत्मा सांसारिक सौन्दर्य पर टिकी न रहकर अलौकिक सौन्दर्य की ओर आकर्षित होती है। यही सांसारिक सौन्दर्य की मूल है। साधक उसी सौन्दर्य में अलौकिक सत्ता को खोज लेता है। सूफियों ने भारतीय वातावरण की कथायें की और उसमें ईश्वरीय प्रेम की व्यंजना भी की। स्थान-स्थान पर यह बात देखी जा सकती है—ईश्वरीय सौंदर्य (नूर) सत्य और शील का वर्णन कर संकेतों द्वारा यही प्रदर्शित किया गया है कि बुनियाद्दी प्रेम ईश्वरीय इश्क की एक सीढ़ी है अर्थात् इश्क मिमाजी इश्क हकीकी तक पहुंचने की एक सीढ़ी है।'[23] इस प्रकार यह कहा जा सकता है हिन्दी में साधना के निमित्त इश्क (प्रेम) को आधार बनाते हुए सर्वप्रथम सूफी संतों को ही पाया जाता है जिसका

---

23. भक्ति कालीन हि० सा० पर मुस्लिम सांस्कृतिक का प्रभाव-पृष्ठ 133, डा०, असदअली, 1979।

संत कवियों ने उदारता से उपयोग किया। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सूफियों की साधना में प्रेम का बहुत महत्व है और उन्होंने निराकार की उपासना में प्रेम की आधारशिला पर साधना का एक सुन्दर-सा महल निर्मित कर दिया। प्रेम का खेल कठिन तो है किंतु जिसने खेला वह दोनों तर गए। जो प्रेम के रंग में रंग जाता है उसकी भूख नींद सब जाती रहती है—

> **भलेहि प्रेम है कठिन दुहेला। दुइ जग तरा प्रेम जेइ खेला।**
> **जो नहिं सीस प्रेम पथ लावा। सो हिथि भी यह काहे क आवा।[24]**
> **जेहि के हिए प्रेम-रंग जाया। कातेहि भूख नींद बिसराया।[25]**

सूफियों का प्रेम मार्ग सब सम्प्रदायों से जुड़ा है। प्रेमी भक्तों का सम्प्रदाय और पंथ तो खुदा ही है। सूफियों का प्रेम इतना व्यापक और सक्रिय दिखाई पड़ता है कि कृष्ण भक्त कवियों में मीरा और रसखान आदि कवियों की व्यंजना और दर्द की झलक मिल जाती है। इसे तो वही समझ सकता है जिसे यह रोग लगा हो। दीवानी मीरा तो कह उठती है कि—

> **हे री मैं तो प्रेम दीवानी मेरा दर्द न जाणे कोई।**
> **दर्द की गति दर्द ही जाने जो कोई घायल होय।[26]**

सूफियों में ज्ञान विराग साधना और कर्म इन सब में प्रेम ही श्रेष्ठ दिखाई पड़ता है। वह प्रत्येक साधन में प्रेम की जीवनी शक्ति डालना चाहते हैं। प्रेम को ही सबका मूल मानकर वह इन सबका सामंजस्य करते हैं। इस तरह उन्होंने प्रेम धर्म पर ही लोक धर्म की स्थापना को साकार करने का प्रयास किया।

हिन्दी सूफी कवियों के कार्यों का प्रतिफल

जिस समय सूफी कवियों के काव्य ग्रन्थ भारतीय संस्कृति से ओत-प्रोत होकर लोगों तक पहुंचे। उस समय देश से विभिन्न प्रकार के मतभेद फैले थे। सूफी कवियों के कार्यों का यह फल हुआ कि भारतीय सभ्यता की रक्षा और वेद-शास्त्र डूबने से बच गए। समाज को ज्ञान की एवं प्रेम की नवीन दिशा प्राप्त हुआ। जिसमें सूफियों ने लौकिक प्रेम के साथ अलौकिक प्रेम की भी अभिव्यंजना कर समाज को

---

24. जायसी ग्रंथावली-पृष्ठ 40।
25. वही, पृष्ठ 58।
26. मीरा के पद, पृष्ठ 11।

एक सूत्र में बांधा, इससे साम्प्रदायिक झगड़े मिट गए। जाति-पांति की लड़ाई कम हो गई।

अलाउद्दीन खिलजी के समय 'नूरक और चन्दा की कहानी' के लेखक मुल्ला दाउद (1440 ई०) प्रेम काव्य के पहले कवि माने जाते हैं। 'मृगावती' के लेखक कुतवन (1500 ई०) सिकन्दर लोदी के राजत्वकाल में हुए। जिस समय आक्रमण-कारियों की तलवार अपनी रक्त पिपासा बुझा रही थी, उसी समय दोनों जातियों को मिलाने के लिए प्रेम काव्य सबसे अधिक आवश्यक था। इसी आदर्श पर मंझन ने 'मधुमालती' जायसी ने 'पद्मावत' तथा उस्मान ने 'चित्रावली' लिखकर उस प्रेम सूत्र की और भी दृढ़ किया। जायसी इन्हीं शेरशाह के सम सामयिक थे, जिन्होंने कि उलमाओं की कट्टरता की अवहेलना की थी। जायसी की उदारता इसी भावना के अनुकूल है।

सूफी कवियों की भाषा में अन्य लोगों की भाषा की अपेक्षा अधिक परि-मार्जन और साहित्यकता है। निर्गुण संतों के प्रभाव से लोगों के हृदय में कुछ रुखापन तथा संसार से उदासीनता आ गई थी। इसे दूर कर प्रेम के उच्च रूप को सामने रखकर जनता के हृदय में गृहस्थ जीवन के प्रति अनुराग तथा प्रेम की सरस धारा बहाना इन्हीं कवियों का काम था। प्रेम का महत्व तो कबीर, रैदास आदि सभी ने वर्णन किया था, किन्तु उसे जीवन का अंग प्रेममार्गी कवियों ने ही बनाया।

इसके अतिरिक्त लोकहित समाज कल्याण भी इनके काव्य का एक प्रमुख आदर्श था। हिंदू मुस्लिम एकता स्थापित करने के लिए इन कवियों ने दोनों को प्रेम पद्धति एवं संस्कृतियों में समन्वय कर दिया है। यथा-ईरानी प्रेम पद्धति में नायक के प्रेम का वेग अधिक तीव्र रहता है और भारतीय प्रेम पद्धति में नायिका का, किंतु सूफी कवियों ने तुल्यानुराग की अवस्था को दिखाकर दोनों आदर्शों में समन्वय स्थापित कर दिया है। इस प्रकार ईरानी प्रेम-पद्धति में पारिवारिक एवं सामाजिक प्रेम की प्रतिष्ठा के लिए कोई स्थान नहीं था, किन्तु भारतीय प्रेम पद्धति तो आदि से ही लोक सम्बद्ध और व्यवहारात्मक रही है। उसकी प्रभा जीवन के भिन्न-भिन्न भागों में फूटती और प्रज्वलित होती है।

लोक हित एवं समाज कल्याण को काव्य आदर्श मानने के कारण ही सूफी कवियों ने जन समाज के भोगों को अपनाया। इनकी प्रेम गाथाओं में प्रेम भावना का सम्बन्ध यद्यपि राज-परिवार से है, किंतु इसमें जन साधारण की भावनाओं की अवहेलना नहीं की है। इसमें राज-रानियों के पति का विरह एक साधारण नारी के समान है। उदाहरणार्थ—

'पुष्य नखंत सिर ऊपर उनावा,
हौ विनु नाह मन्दिर को छावा ।'[27]

जब सिद्ध नाथ एवं सन्त कवियों ने हिन्दू मुसलमानों के पारस्परिक एवं सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक संघर्षों को समाप्त करने के लिए झाड़ फटकार की शैली अपनायी थी । किन्तु उपदेशात्मक शैली का मानव हृदय पर उतना प्रभाव नहीं पड़ा जितना अप्रत्यक्ष शैली का । अतः वे इन संघर्षों को दूर करने में सफल न हो सके । इस कमी की पूर्ति सूफियों (कवियों) ने की । उन्होंने झाड़-फटकार की शैली में अपना सन्देश न देकर, कान्ता सम्मति मधुर उपदेश दिया । वस्तुतः उनका उद्देश्य हिन्दू जनता को इस्लाम धर्म की ओर आकृष्ट करना था । इसके लिए उन्होंने भारतीय कथा, चरित्र एवं भाषा को अपनाया और इनके माध्यम से उन्होंने सूफी सिद्धांतों एवं इस्लाम धर्म का निरूपण किया । उनके कान्ता सम्मति मधुर उपदेशों का भारतीय जनता पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि प्रत्यक्ष रूप से इस्लाम धर्म को स्वीकार न करते हुए भी अप्रत्यक्ष रूप से सूफी सिद्धान्तों, इस्लाम धर्म एवं उसकी संस्कृति की ओर आर्कषित हो गये ।

हिन्दू मुस्लिम धर्म में समन्वय

सूफी सन्तों से पहले हिन्दू मुस्लिमों ने जो देश की स्थिति बना रखी थी उससे लोग भयभीत थे, देश में ऊंच-नीच, जांति पांति तथा बाह्य आडम्बरों का बोलवाला था डा० ताराचन्द्र ने इसकी व्यापकता का वर्णन लिखते हुए लिगागत, शंकराद्वैत सन्त कवियों एकेश्वरवाद एवं चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं में इस्लाम के महान प्रभाव का जो स्वरूपांकन किया है ।[28] उसमें से प्रथम तीन को तथ्यहीनता को दिनकर जी ने भली-भांति प्रभावित कर दिया है ।[29] कबीर, नानक, आदि निर्गुण धारा के सन्तों पर सूफी-प्रेमतत्व का प्रभाव अवश्य एक सीमा तक पड़ा जिसे प्रायः विद्वानों ने स्वीकार भी किया है ।[30] इसके अतिरिक्त नामदेव के इन शिष्यों जो इस्लाम से उनके सम्प्रदाय में आये पर इस्लाम का प्रभाव प्रतिष्ठित रहा ।' वे रमजान और एकादशी दोनों मानते एवं मक्का तथा पंढरपुर दोनों की तीर्थयात्रा करते हैं । इसी प्रकार

---

27. जायसी ग्रंथावली पृष्ठ 152 कवित्त संख्या-4 ।
28. इनफ्लूयेन्स आफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर, डा० ताराचन्द्र, सं 1954; पृष्ठ 118 ।
29. रामधारी सिंह दिनकर-संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ 281-286 ।
30. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 61 ।

दत्तात्रेय सम्प्रदाय पर भी यह बाह्य प्रभाव परिलक्षित रहता है कि उनके अराध्य देवता का पहरावा मुसलमान फकीर जैसा है।[31] बंगाल में किसी सीमा तक प्रचलित सत्यपीर की पूजा, जिसका कि प्रवर्तक वहां का शासन हुसैन शाह माना जाता है, हिन्दू तथा मुसलमान दोनों में प्रचलित हुई जो कि एक प्रकार से मुस्लिम प्रभाव का द्योतन करती है।[32] इसके अलावा सामान्य हिन्दू जनता में अलौकिक शक्तियों तथा उनसे सम्पन्न माने जाने वाले सन्यासियों के प्रति प्रतिष्ठित अन्धविश्वास मुसलमान पीरों, तथा मजारों की ओर भी उन्मुख हुआ तथा उनकी पूजा होने लगी।[33] यह भी मुस्लिम प्रभाव का एक रूप है जिसके पीछे कोई सैद्धान्तिक अथवा इस्लाम साधनागत तत्व नहीं, अपितु भारतीय जनता में ही बहुमूल्य अन्धविश्वास की प्रवृति काम करती है।

वैसे तो इस्लाम धर्मी समाज के धर्ममतों में से सूफी मत तो भारतीय प्रभाव का ज्वलन्त उदाहरण है किन्तु इसके अतिरिक्त अन्य धार्मिक विश्वासों का भी प्रभाव प्रायः समस्त वर्गों की मुसलमान जनता पर इस युग में पड़ा था। सूफीमत की आधार भूमि का विचार करने से ज्ञात होता है कि उसके मूल में भारतीय वेदान्त का अप्रत्यक्ष किन्तु महत्वपूर्ण प्रभाव तो था ही[34] जिसके साथ ही उस पर दुहरा प्रभाव 'हिन्दू और बौद्ध सन्तों और पंडितों द्वारा पड़ा और इसलिए तसब्बुफ पर सबसे अधिक प्रभुत्व हिन्दुत्व का ही माना जाना चाहिये।' ऐतिहासिक विकास को प्रस्तुत करते हुए दिनकर जी ने यह प्रमाणित किया है कि अरब, बगदाद, और बलख में भारतीय चिन्तन का प्रभाव तो था ही किन्तु इसके साथ ही अनेक सूफी सन्त ज्ञान लाभ के लिए भी भारत की यात्रा करते थे।[35] भारत में आवागमन के पश्चात् एक और प्रभाव योगमार्गी नाथ पंथी साधना का भी पड़ा। कहना न होगा उस युग के धार्मिक वातावरण के अन्तर्गत चमत्कारी एवं आश्चर्य-जनक तत्वों के प्रति विश्वास सामान्यतः हिन्दू मुस्लिम जनता की प्रवृत्ति बन चुका था और जिसके लिए ये सूफीसन्त की प्रेरणा तथा मार्ग दर्शन प्राप्त करने के लिए हिन्दू साधुओं, सन्यासियों एवं योगियों के पीछे-पीछे घूमा करते थे।

इसी प्रकार डा० अशरफ के अनुसार 'गुरु का भारतीय आदर्श पीरों अथवा शेखों से सम्बन्धित मुस्लिम अवधारणा द्वारा अभिव्यक्त हुआ और उसे भावों के

---

31. डा० ताराचन्द्र पृष्ठ 220-21।
32. वही, पृष्ठ 217।
33. डा० सत्यकेतु विद्यालंकार-भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास पृष्ठ 627।
34. संस्कृति, डा० रामधारी सिंह दिनकर, पृष्ठ 253-54।
35. वही, पृष्ठ 257।

नैतिक पतन के फलस्वरूप उनका स्थान आध्यात्मिक आचार्य अथवा उपदेशक के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। कालान्तर में, यह महत्व उनकी संतानों को प्राप्त होने लगा जिसके परिणामस्वरूप उन्हें वह धार्मिक सम्मान तथा स्थान प्राप्त हो गया जो कि हिन्दू जनता के बीच ब्राह्मणों का था।[36] यह प्रसिद्ध है कि मुसलमानों में हज्ज तो पहले से ही प्रचलित था। किन्तु उसके अरिरिक्त अब प्रसिद्ध सन्तों के मजारों पर प्राय: तथा विशेषकर 'उर्स' के अवसर पर जाना सर्वसाधारण मुसलमान जनता के बीच प्रचलित हो गया था। [37] उपर्युक्त परिस्थितियों के कारण जनता में ही अपितु मुसलमान शासकों ने भी हिन्दू तथा मुसलमान सन्तों के प्रति इतनी आस्था एवं अंध-श्रद्धा प्रतिष्ठित हो गयी थी। कि वे अपनी इच्छा पूर्ति के लिए उनके पास जाते थे।[38] चैतन्य चरितामृतं में इसका उदाहरण मिलता है। वहां का मुसलमान सुवेदार जो हिन्दुओं पर निर्मम अत्याचार करने के लिये प्रसिद्ध था, चैतन्य महाप्रभु का आध्यात्मिक चमत्कार सुनकर स्वयं उनके पास आया तथा अपने अनाचारों पर पश्चाताप प्रकट करता है, किन्तु चैतन्य का अनुयायी बनकर सरकारी नौकरी छोड़ने को तैयार सनातन को उक्त पश्चाताप के बाद ही जेल में डाल देता है।[39]

उपर्युक्त धार्मिक प्रभावों के अतिरिक्त 'शवे-बरात' जैसे धार्मिक त्योहारों पर हिन्दू त्योहार 'शिवरात्रि' का प्रभाव इतिहासकारों ने स्वीकार किया है, जिसमें 'शिवरात्रि' की भांति रात्रि जागरण होता है, लोग धार्मिक ग्रन्थों के पाठ में तथा सामान्य जनता के लोभ आमोद-प्रमोद तथा आतिशबाजी में रात बिताते थे। इस्लाम में मूर्तिपूजा का कठोर निषेध था किन्तु मुसलमानों में शीतला जैसे देवी-देवताओं की की मूर्ति पर जल चढ़ाने व पूजा करने की मान्यता भी चल पड़ी।[40]

संत कवियों का प्रभाव भी पड़ा। सूफियों ने संत कवियों के समान धार्मिक और सामाजिक एकता का साधन किया। अन्तर केवल इतना था कि संतों का मार्ग वचन और तर्क का था और प्रेम और श्रद्धा था। अत: इन्होंने हिन्दू-मुसलमानों के विश्वासों का निर्दयतापूर्वक खंडन न कर इन्हें सहानुभूति पूर्वक समझाने का प्रयत्न किया। इन कवियों के समान मस्तिष्क की वस्तु नहीं किन्तु हृदय की चीज बना

---

36. लाइफ एण्ड कन्डीशन आफ दि पीपुल आफ हिन्दुस्तान, डा० के०एम०अशरफ पृष्ठ 73, भाग-1, सं० 1959।
37. डा० के०एम०अशरफ, पृष्ठ 72-73।
38. डा० अशरफ ने मु० तुगलक के योगियों से बाबर के नानक से मिलने की घटनाएं दी हैं पृष्ठ 73।
39. जबुनाथ शांरकर, चैतन्य चारितंरिता चेप्टर 14-17।
40. डा० के०एम०अशरफ, पृष्ठ 205।

दिया । इनके काव्यों में हमें हिन्दू विचारधारा और लोक व्यवस्था का पूरा आदर और समावेश मिलता है । निःस्वार्थ के प्रति आस्था प्राप्त होती है ।

इनकी प्रेम की पीर की कहानियां जो हिन्दुओं के घर की थीं, इनकी मधुरता और कोमलता का अनुभव कराके यह दिखा दिया कि झूठ ही गुप्ततार मनुष्य मात्र के हृदयों से होता हुआ गया है । जिसे छूते ही मनुष्य सारी बाहरीरूप रंग के भेदों की ओर से ध्यान हटा एकत्व का अनुभव करने लगता है ।

मुसलमानी राजत्व काल में आरम्भ में हिन्दू जनता के प्रेम और विनोद में योग देकर भावों का परस्पर आदान-प्रदान किया था । पर कुछ मुस्लिम राजाओं के कट्टरपन और अत्याचार के कारण दोनों जातियां एक दूसरे से विलग रहीं । उनका हृदय मिल न सका । कबीर की अटपटी बानी भी हिन्दू और मुसलमानों के दिलों को जोड़ न सकी । मनुष्य मनुष्य के बीच जो रागात्मक सम्बन्ध हैं, वह उसके द्वारा व्यक्त हुआ । डा० रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार 'नित्य के व्यवहार में जिस हृदय साम्य का अनुभव कभी-कभी किया करता है जिसकी अभिव्यंजना उससे न हुई, जिस प्रकार दूसरी जाति या मत वाले कहते हैं उसी प्रकार हमारे भी हैं, जिस प्रकार दूसरे के हृदयों में प्रेम की तरंगे उठती है, उसी प्रकार हमारे हृदय में भी, प्रिय का वियोग जैसे दूसरों को व्याकुल करता है वैसे ही हमें भी, माता का जो हृदय दूसरों के यहां है वही हमारे यहां भी, जिन बातों से दूसरों को दुख-सुख होता है, उन बातों से हमें भी, इस तथ्य का प्रत्यक्षीकरण कुतबन, जायसी आदि प्रेम कहानियों के कवियों द्वारा हुआ ।[41]

सूफियों ने प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए सामान्य जीवन दशाओं को सामने रखा । जिनका मानव हृदय पर प्रभाव पड़ा । हिन्दू और मुसलमान हृदय आमने-सामने करके इनका अजनवी पन हटाया ।

सूफियों ने ही मुसलमान होकर हिन्दुओं की कहानियां, हिन्दुओं की बोलियों को पूरी सहृदयता से कह कर उनके जीवन को मर्मस्पर्शनीय अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया । कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिलाया । प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी थी । वह सूफी कवि मुल्ला दाउद, कुतबन, मंझन, जायसी के द्वारा पूरी हुई ।

इस प्रकार हिन्दू और मुसलमानों के बीच जो गहरी खाई थी उसे पाटने के लिए सूफी संतों ने सफलता प्राप्त की, अर्थात् यह नहीं कि एकता और समन्वयता का प्रयास किसी और ने किया हो परन्तु प्रश्न यह है कि सफलता किसको और कैसे मिली ।

———

41. जायसी ग्रंथावली—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 2 ।

चतुर्थ अध्याय

संस्कृतियों और सभ्यताओं का समन्वय

संस्कृतियों और सभ्यताओं का समन्वय

मानव जीव की सम्पूर्ण गतिविधियों का संचालन अन्तर्वृत्तियों की जिस समष्टि द्वारा होता है तथा जिसके अपनाने से वह सच्चे अर्थों में मनुष्य बनने की दिशा में अग्रसर होता है, उसे संस्कृति कहते हैं।[1]

संस्कृति मानव जीवन की विशिष्ट पद्धति तथा विकास की दिशा में सतत् गतिशील किन्तु स्थायी जीवन व्यवस्था है, जिसे 'मानव-जीवन का सौंदर्य एवं वैचारिक केन्द्र बिन्दु से संयुक्त सामूहिक दृष्टिकोण कहा जा सकता है।'[2]

संस्कृति भाषा के 'एम' उपसर्ग तथा 'क' धातु के संयोग से संस्कृति शब्द निष्पन्न हुआ जिसका कि अर्थ सामान्यत: परिष्करण या परिमार्जन की क्रिया अथवा सम्यक रूपेण निर्माण से है। डा० पी०के० आचार्य के शब्दों में—'इसमें परिमार्जन या परिष्कार के अतिरिक्त शिष्टता एवं सौजन्य के भावों का भी समावेश हो जाता है। डा० मंगल देव शास्त्री के अनुसार किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन व्यापारों या सामाजिक सम्बन्धों में मानवता की दृष्टि में प्रेरणा प्रदान करने वाले आदर्शों को ही संस्कृति कहते हैं तथा समस्त सामाजिक जीवन की समाप्ति संस्कृति में ही होती है। विभिन्न सभ्यताओं का उत्कर्ष संस्कृति द्वारा नापा जाताा तथा उसी के द्वारा लोगों को संगठित किया जाता है, इसलिए संस्कृति के आधार पर ही विभिन्न धर्मों सम्प्रदायों तथा आचारों का समन्वय किया जा सकता है।

---

1. हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति-डा० मदन गोपाल गुप्त पृष्ठ 1 प्रथम संस्करण।
2. भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता-डा० प्रसन्न कुमार आचार्य संस्करण सं० 2014 पृष्ठ 1।

मैथ्यू आर्नल्ड ने अपनी संस्कृति-विषयक धारणा को दो शब्दों के माध्यम से प्रकट किया है, वे हैं 'जीवनगत परिपूर्णता तथा इसका सौंदर्य एवं प्रकाश[3] उनके मतानुसार 'मानव प्रकृति की उपर्युक्त परिपूर्णता ही जीवनगत सौंदर्य तथा प्रकाश है तथा संस्कृति मशीनरी से परे दृष्टि क्षेप करती एवं विद्वेषात्मक प्रवृत्तियों की विरोधिनी बनकर उक्त सौंदर्य तथा प्रकाश की ही उत्कंठा रखती है ।[4]

इसके अतिरिक्त संस्कृति की अवधारणा के अनुसार 'व्यक्ति, समाज से अलग एकाँकी रहकर उक्त परिपूर्णता को नहीं प्राप्त कर सकता । यदि वह अपने परिपूर्णता के अभियान में दूसरों को अपने साथ लेकर नहीं चलता तथा केवल निजी विकास में ही लगा रहता है, तो उसे उक्त परिपूर्णता की आंशिक उपलब्धि ही होगी । अतएव यह सामाजिक भाव है तथा सांस्कृतिक मनुष्य समानता के सच्चे देवदूत हैं । संस्कृति के अनुसार महान् व्यक्ति वही है जो कि कठिन दुसाध्य, असाधारण ज्ञान के सर्वोत्तम को सर्वसुलभ बनाते हैं ।[5]

पाश्चात्य विद्वान ई०बी० टाइटलर ने संस्कृति को परिभाषित करते हुए कहते हैं—'संस्कृति वह जटिल तत्व है जिसने ज्ञान, नीति, कानून, रीति-रिवाजों तथा दूसरी उन योग्यताओं और आदतों का समावेश है जिन्हें मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के नाते प्राप्त करता है ।'[6] मैलिना उस्की के शब्दों में 'संस्कृति सामाजिक विरासत है जिसमें परम्परा से पाया हुआ कला-कौशल, वस्तु-सामग्री, यांत्रिक क्रियायें विचार, आदतें और मूल्य समाविष्ट है ।'[7] इस प्रकार संस्कृति शब्द का प्रयोग अविद्या में होता है । डा० असद अली के शब्दों में 'इसकी सीमा में खान-पान, वेश-भूषा, रहन-सहन, साहित्य-कला, आचार-विचार, व्यवहार-राजनीति, दर्शन नीति-रीति, रुचि, धर्म, अर्थ आदि सामाजिक तथा जीवन से सम्बन्धित सभी तत्व आते हैं । और इन सभी के संस्कार, सुधार एवं विकास से इनका सम्बन्ध होता है ।[8] इस प्रकार किसी देश, समाज या वर्ग की संस्कृति उनकी सभ्यता के विकास की अवस्था को प्रदर्शित करती है । संस्कृति तथा सभ्यता के अन्तर को साध्य और साधन

---

3. मेथड अरनाल्ड : कल्चर एण्ड एनार्की, एडी० 1950 चेप्टर स्वीटनेस एण्ड, लाइट पृष्ठ 44-47 ।
4. वही, पृष्ठ 69 ।
5. वही पृष्ठ 48 शीर्षक वही ।
6. प्रिमिटिव कल्चर-भाग-1, पृष्ठ 1 ।
7. इनसाइक्लोपीडिया आफ सोशल साइंमेज पृष्ठ 621 ।
8. भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव, डा० असद अली पृष्ठ 14 ।

के विवेचन द्वारा स्पष्टतः समझा जा सकता है। डा० सत्यव्रत विद्वांत अलंकार के मतानुसार 'साधन की उपयोगिता तथा कार्य क्षमता को परखकर उसका मूल्यांकन नहीं होता, प्रत्युत उसकी दृष्टि से उन साधनों का मूल्यांकन किया जा सकता है कि वे उक्त लक्ष्य के कहां तक अनुकूल हैं।'[9] संस्कृति तथा सभ्यता के विकास क्रम के पूर्व निर्दिष्ट तथ्यों से प्रकाशित है कि ये दोनों मानव विकास के दो पहलू हैं—एक उसकी अंतश्चेना, सौंदर्यानुभूति एवं आनन्दोल्लास के अभ्यान्तरिक तत्वों से सम्बन्धित है तथा दूसरा उसकी भौतिक सुख-सामग्री के संयोजन तथा उसके लिए आवश्यक संगठित प्रयत्नों की ओर संकेत करता है। सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ तथा विद्वान श्री प्रकाश जी ने सभ्यता के शारीरिक एवं मानसिक कर्मक्षेत्रीय तथा संस्कृति को उसकी आत्मा तथा उच्चस्तरीय मनीषा का सुपरिणाम बताया है।'[10]

डा० प्रसन्नकुमार आचार्य जी का कथन है कि मनुष्य जिस प्रकार अपने प्राथमिक अवस्था से सभ्यता के क्षेत्र में अग्रसर हुआ है इसी प्रकार सभ्यता के क्षेत्र में भी प्रविष्ट हुआ होगा।[11] संस्कृति तथा सभ्यता सम्बन्धी उपर्युक्त विकास क्रम को लक्ष्य करके डा० भगवत शरण उपाध्याय ने दोनों के सुस्पष्ट अन्तर को अत्यन्त युक्ति संगत ढंग से प्रस्तुत करते हुए लिखा है—'सभ्यता और संस्कृति मनुष्य की सामूहिक प्रेरणा और विजय के परिणाम है, जिनमें से प्रथम आदिम बनैली स्थिति से सामाजिक जीवन की ओर मनुष्य की प्रगति का नाम है और द्वितीय उसी प्रगति की सत्य, शिव और रुचिर परम्परा का।'[12] जब व्यक्ति आत्म-संस्कार द्वारा अपने चरित्रगत क्षेत्रों का परिमार्जन करके चित्तवृत्तियों को अपमार्ग से हटा देता है तो उसके वाह्य जीवन का सुधार तो होता ही है। साथ ही उत्कृष्टतम जीवन के मार्ग में आगे बढ़कर अपने चरम लक्ष्य के निकट पहुंचता है। क्योंकि कुमार्ग से रुकना और सन्मार्ग की ओर अग्रसर होना प्रधानतया इस बात पर निर्भर करता है कि मनुष्य किन भावनाओं, विचारधाराओं, आदर्शों और उद्देश्यों से अपने अंतरंग

---

9. सत्यव्रत सिद्धांतालंकार-समाजशास्त्र केमल तत्तव, प्र० संस्करण पृष्ठ 213/232।
10. कल्चर एण्ड सिवलाइजेशन, श्री प्रकाश वोले० 1 नं० 10 पृष्ठ 8।
11. डा० प्रसन्न कुमार आचार्य-भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता संस्कार सं०, 2014 वि० पृष्ठ 3।
12. डा० भगवत शरण उपाध्याय, सांस्कृतिक भारत, प्रथम सं० पृष्ठ 12, संस्कृति का स्वरूप।

क्षेत्र में अनुपाजित होता है।'[13] उपर्युक्त कथन श्रीराम शर्मा आचार्य ने संस्कृति को वर्तमान परिवेश में महत्वपूर्ण स्थान देने के विषय में कहा।

इस प्रकार सभ्यता, यह द्वार है जिसमें से होकर मनुष्य सामाजिक जीवन के क्षेत्र में प्रवेश करता है, किन्तु संस्कृति उपर्युक्त विशेषता के कारण 'मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति हैं।[14] इसके अलावा सभ्यता सामाजिकरण की समानार्थक होने के कारण वह व्यक्ति को चतुर, कुशल, स्फूर्तिसंपन्न एवं वैभवशाली बन सकती है। परन्तु सच्चे अर्थों में उसे संस्कृति नहीं कर सकती।[15] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संस्कृति जीवन का आन्तरिक सौंदर्य है, जबकि सभ्यता उसके वाह्य साधनों की सुविधा। अतः संस्कृति एक ऐसी शक्ति है जिसके द्वारा मनुष्य अपने संस्कार और आस-पास के वातावरण से प्राप्त करता है, परन्तु सभ्यता मनुष्य को प्रगति-पथ पर ले जाने का संकेत करती हुई उसके मनोविकारों की द्योतक है। निष्कर्षतः संकृति और सभ्यता एक दूसरे की पूरक है 'एक प्रकार से सभ्यता संस्कृति की वाहन है। उसके विविध उपकरणों द्वारा दो भिन्न देशों की संस्कृतियां एक दूसरे के निकट आती हैं। तथा अनेक पारस्परिक समन्वय एवं सम्मिलन से संस्कृति के क्षेत्र में नवीन अध्याय का श्रीगणेश होता है। मनुष्य वाह्य जगत की वस्तुओं का प्रयोग जिस ढंग से करता है उसके भौतिक आवश्यकताओं की प्राप्ति होती है तथा सभ्यता का निर्माण होता है। परन्तु चिन्तन तथा परम्परागत संस्कारों के द्वारा जीवन को सरस सुन्दर, एवं कल्याणमय बनाने के लिए यत्न करता है। उसका परिणाम संस्कृति के रूप में प्राप्त होता है।[16]

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता

संस्कृति और सभ्यता दो भिन्न-भिन्न स्थितियों की द्योतक है। एक को आत्मा, तो दूसरी को शरीर कहा जा सकता है। संस्कृति आन्तरिक नैर्मल्य है तो सभ्यता वाह्य प्रधान। एक में शांति है तो दूसरी में चमक-दमक। एक में प्रबुद्धता

---

13. अखंड ज्योतिः भारतीय संस्कृति विशेषांक जन 1956 ई० पृष्ठ 37। लेखक श्रीराम शर्मा आचार्य-शीर्षक आज की महान आवश्यकता।
14. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल, संस्करण द्वितीय' पृष्ठ 62। शीर्षक भारतीय संस्कृति।
15. डा० धीरेन्द्र नाथ राय, दि स्प्रिट आफ इण्डियन सिवलाइज़ेशन, एडी० 1938, पृष्ठ 266, 28 हेडिंग-मीनिंग आफ सिवलाइजेशन।
16. मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति-डा० मदनगोपाल गुप्त, पृष्ठ 44, प्रथम संस्करण।

है, तो दूसरी में उपयोगिता। एक केन्द्र की ओर प्रत्यावर्तन करती है तो दूसरी परिधि की ओर प्रगति। एक में निःश्रेयस है तो दूसरी में अभ्युदय। एक में नितांत एकान्तिकता है तो दूसरी में सामाजिकता।'[17] संस्कृति और सभ्यता के सम्बन्ध में आचार्य 'सोम' जी का यह कथन सर्वथा सत्य है। किसी भी देश की संस्कृति का निर्माण सभ्यता से मिलकर ही होता है।

संस्कृति की मूल चेतना संस्कार से ही होती है। एक संस्कृति के तत्वों के सर्वथा समरूप दूसरी के तत्व नहीं होते। तत्वों या विशेषताओं की विभिन्नता ही सांस्कृतिक अनेकता को जन्म देती है, और तात्विक भिन्नता ही वह आधार है जिसके कारण किसी एक संस्कृति को अन्य से अलग पहचान पाना सम्भव है। भारतीय संस्कृति भी कुछ विशिष्ट तत्व अपने में समाहित किए हुए हैं।

सर्वप्रथम आध्यात्मिकता की भावना सर्वाधिक सशक्त तत्व हैं। अगर हम इसे संस्कृति का प्राण कहें तो अतिशयोक्ति न होगी क्योंकि भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिकता का तत्व निरन्तर वर्तमान रहा है। नैतिकता और नैतिक आदर्श ही आध्यात्मिकता के रूप हैं। यह उच्च प्रकार की मानसिकता की उपज और मानव प्रेम-भाव का जागरण कराती है।

समन्वय भावना के कारण ही भारतीय संस्कृति विषय परिस्थितियों में भी सुरक्षित रह सकी है। यदि उसमें समन्वय भावना, लचीलापन न होता तो वह संकट में कब की नष्ट हो चुकी होती। समन्वय भावना ही उसे आज जीवन्तता प्रदान करती आई है। भारतीय संस्कृति का एक प्रमुख तत्व प्रेम का विस्तार भी है। प्रत्येक प्राणी के प्रति प्रेम पूर्ण अहिंसा का भाव रखना ही भारतीय संस्कृति की मूल भावना है। यद्यपि प्रेम की भावना प्रायः सभी संस्कृतियों में किसी न किसी मात्रा में अवश्य पायी जाती है, लेकिन भारतीय संस्कृति में प्रेम का जो अनन्त विस्तार है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। सजीव वस्तुओं के अलावा निर्जीव वस्तुओं के प्रति प्रेम के उदाहरण यहां की संस्कृति की विशेषता है। जिस चूल्हे पर हम भोजन पकाते हैं उसे भी साल-भर में एक दो बार लीप-पोत कर सजा-संवार कर उसकी पूजा की जाती है और इस दिन बीते दिन का पका, भोजन करते है। प्रेम की यह विशालता अन्य किसी संस्कृति में दुर्लभ है।' चराचर से प्रेम करने वाली सर्वत्र कृतज्ञता का प्रकाश करने वाली वह भारतीय संस्कृति है। ······विश्व भर से प्रेम करने का विशाल ध्येय अपने सामने रखने वाली ऐसी महान संस्कृति को शतशः

---

17. डा० मुंशीराम शर्मा, 'सोम' वैदिक संस्कृति और सभ्यता पृष्ठ 15 शीर्षक-संस्कृति स्वरूप एवं सीमा।

प्रणाम। उसकी प्रगति करने वाले इन महान् पूर्वजों को भी अनन्त बार वन्दन।'[18] भारतीय संस्कृति में वर्ण व्यवस्था का प्रमुख स्थान रहा है, भारतीय समाज में आज वर्ण व्यवस्था अपने विकृत रूप में वर्तमान रह गई है। वर्ण व्यवस्था का अर्थ जाति व्यवस्था, पेशा या व्यवसाय नहीं, बल्कि वर्ण का अर्थ है, व्यक्ति का गुण-धर्म। दूसरे शब्दों में वर्ण को हम प्रवृत्ति का पर्याय भी कह सकते हैं। मानसिक प्रवृत्ति के अनुसार जीवन पथ का निर्धारण करना ही वर्ण व्यवस्था है। जन्म के आधार पर जीवन पथ निर्धारण एकदम असंगत है। यह आवश्यक नहीं कि कवि का वंश कवि ही बने।

पुरातन संस्कृति ने समाज को सावयव पुरुष माना है। जिस प्रकार व्यक्ति का निर्माण विभिन्न अंगों से मिलकर होता है, उसी प्रकार समाज का भी निर्माण विभिन्न अंगों के योग से होता है। भारतीय संस्कृति ने समाज रूपी पुरुष के चार प्रमुख अंश माने हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। भारतीय संस्कृति में इन चारों को कार्यों के अनुरूप बाँटा गया था। आश्रम-व्यवस्था पुरातन भारतीय संस्कृति का एक प्रमुख तत्व है। भारतीय संस्कृति में मनुष्य जीवन को चार आश्रमों में विभाजित किया है। जो निम्न हैं— ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास।

ब्रह्मचर्य—आश्रम ज्ञान की साधना का प्रथम द्वार है, उपनयन संस्कार (आठ वर्ष की आयु पूर्ण करने पर) के पश्चात् बच्चे को गुरु के समीप विद्या अध्ययन हेतु भेज दिया जाता था। पच्चीस वर्ष की आयु तक वह गुरुकुल के पास वेदादि का अध्ययन करता था ताकि जीवन को वह सार्थकता सहित व्यतीत करें। 'ब्रह्मचर्य का अर्थ है सारी इन्द्रियों की शक्ति को ध्येय के ऊपर केन्द्रित, करना जिस प्रकार काँच के ऊपर सूर्य की किरणें केन्द्रित करके आग पैदा करते हैं, उसी प्रकार सर्वत्र फैलने वाली इन्द्रियों की शक्ति एक जगह केन्द्रित करके उसमें से अद्भुत तेज निर्माण करना ही ब्रह्मचर्य है।[19] ब्रह्मचर्य संयम का प्रतीक है। इसमें शारीरिक और मानसिक, दोनों वृत्तियों का संयम समाविष्ट है। गृहस्थाश्रम में मनुष्य ब्रह्मचर्य के बाद प्रवेश करता है। ब्रह्मचर्य पालक व्यक्ति जब गृहस्थ जीवन में प्रवेश करता था तो उसमें जीवन के प्रति उत्साह रहता है, भारतीय संस्कृति गृहस्थ जीवन का अर्थ वासनापूर्ति नहीं, वरन् उच्च आत्मिक प्रेम का प्रतीक मानती है। पति के लिए पत्नी में दिव्यता है और पत्नी के लिए पति में आध्यात्मिकता है गृहस्थाश्रम मोदन की ओर जाने का एक मार्ग है। इसमें व्यक्ति आसक्ति के मार्ग से अनाशक्ति तक पहुंचता है।

---

18. साने गुरु जी (हिन्दी अनुवादक—बाबू राम जोशी) भारतीय संस्कृति पृ० 206।
19. साने गुरु जी (अनुवाद—बाबूराम जोशी) भारतीय संस्कृति पृष्ठ 164-65।

भारतीय संस्कृति में जीवन यात्रा की तीसरा चरण वानप्रस्थ आश्रम को माना है। इसमें व्यक्ति अपने गृहस्थ-जीवन का भार अपने बच्चों पर छोड़कर स्वयं निवृत्त हो जाता है। वानप्रस्थी समस्त कर्त्तव्यों से मुक्त होकर समाज सेवा करने को निकलता था। वह वैयक्तिक न रहकर सामाजिक सम्पत्ति बन जाता था और वनों के शान्त वातावरण में रहते हुए अपना जीवन व्यतीत करता था।

जीवन यात्रा का चौथा पड़ाव संन्यास आश्रम को माना गया है। वानप्रस्थ में व्यक्ति अपने परिवार को छोड़कर जंगल में जाकर रहता है और अपने निकटवर्ती समाज की सेवा करता है। ऐसी स्थिति में अपनत्व-परत्व की भावना शेष रह जाने की सम्भावना रहती है अतः त्याग की पराकाष्ठा पर पहुंचने के लिए आश्रम-व्यवस्था मूल मन्तव्य है। जीवन के अन्तिम भाग तक पहुंचते-पहुंचते मनुष्य पूर्ण-त्यागी, मोहममता से रहित और अपने 'पराये की भावना को शून्य कर देता है। संन्यास आश्रम में आते ही उसकी दृष्टि विशाल हो जाती है, अब सारा संसार ही उसके लिए अपना हो जाता है।

इसी प्रकार भारतीय संस्कृति में तीन वर्णों की परिकल्पना की गई है, उसमें व्यक्ति को तीन प्रकार का ऋणी माना गया है। इन तीनों ऋणों की पूर्ति चार आश्रमों के द्वारा ही की जाती है। ये हैं—ऋषिऋण, पितृऋण और देवऋण आदि। ऋषिऋण का सम्बन्ध ब्रह्मचर्य आश्रम से है। ऋषिऋण को स्वाध्याय द्वारा चुका सकते हैं, ऐसी धारणा भारतीय संस्कृति में है। ब्रह्मचर्याश्रम में व्यक्ति विद्या प्राप्ति के द्वारा अपने आन्तरिक व्यक्तित्व की परिष्कृत करता है। प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह ब्रह्मचर्या श्रम में शिक्षा प्राप्त करके ऋषि ऋण को चुकाये। विद्यार्जन की सतत् रुचि रखने वाला व्यक्ति ही ऋषिऋण से मुक्त हो सकता है।

पितृऋण का सम्बन्ध गृहस्थाश्रम से है। पितृऋण माता-पिता के ऋण का सूचक है। बचपन से युवावस्था तक की समस्त जिम्मेदारी माता-पिता उठाते हैं। पितृऋण के उऋण होने के लिए सन्तानोत्पत्ति के साथ-साथ उसे अच्छी शिक्षा, चरित्रवान् बनाना सात्विक एवं उच्च-विचारों से युक्त करना भी पितृऋण ही है। 'पितृऋण का वास्तविक अर्थ है, परिवार भाव के प्रति दायित्व का बोध। आदमी अपने आप में इकाई नहीं है, वह परिवार से संयुक्त होकर ही इकाई है।[20] इसके बाद देवऋण का सम्बन्ध वानप्रस्थ और सन्यासा श्रम से है, इसमें दिव्य शक्ति से सम्पन्न व्यक्ति को देव कहा जाता है, जब भी धर्म की हानि और अधर्म का विस्तार होता है, दिव्य शक्ति से सम्पन्न देवात्माएं समाज में धर्म की स्थापना का महत्

---

20. अ० विद्या निवास मिश्र हिन्दू धर्म : जीवन में सनातन की खोज, पृष्ठ 25।

कार्य करती हैं। मानवता की सेवा करने वाला व्यक्ति अप्रत्यक्ष रूप से देव ऋण चुकाता है। यदि जीवन के अन्तिम भाग तक पहुंचकर भी कोई व्यक्ति सम्पूर्ण समाज की सेवा को अपना एक मात्र लक्ष्य नहीं बना लेता है तो उसे किसी भी अर्थ में देवऋण से उऋण नहीं मानते अतः मानव मात्र की भलाई देवऋण चुकाने का प्रमुख उद्देश्य है।

इसके बाद संस्कृति को मजबूत बनाने में चार पुरुषार्थों का भी योगदान रहा है। जिनकी प्राप्ति के लिए मनुष्य सदैव प्रयत्नशील रहता है। चार पुरुषार्थों में में से दो का सम्बन्ध परलौकिक जीवन से है और शेष दो लौकिक जीवन से सम्बन्धित हैं। भारतीय संस्कृति के व्यवहारिक दृष्टिकोण के सूचक ये चार पुरुषार्थ ही हैं। जिसमें जीवन रूपी रथ को अर्थ और काम के घोड़े खींच रहे हैं, धर्म की लगाम से ये नियंत्रित होते हैं और मोक्ष रूपी मंजिल की ओर बढ़ते हैं।

भारतीय संस्कृति के साथ जुड़े पांच महायज्ञ भी हैं। उनका क्रम इस प्रकार है—ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ और नृयज्ञ। ब्रह्मयज्ञ ज्ञानार्जन एवं स्वाध्याय का यज्ञ है। पितृयज्ञ को मृत पितरों को प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रखने के लिए करते हैं। देवयज्ञ देवताओं को प्रसन्न करने के लिए होता है। भूतयज्ञ में जो भोजन बना हो उसका तनिक भाग अग्नि में डालना या अपाहिज व्यक्ति अथवा पशु-पक्षी को खिलाने पर सम्पन्न मानते हैं। नृयज्ञ में अतिथि की सेवा-सत्कार करना माना गया है। इन महायज्ञों का महत्व केवल कर्मकाण्ड की दृष्टि से नहीं बल्कि इनका महत्व इनके मूल में निहित धर्म एवं दया और परोपकारिता की भावनाओं के कारण अधिक है। जीवन की पवित्रता को प्राप्त करने के लिये, भारतीय संस्कृति ने शाश्वत सत्य निर्धारित किये हैं। जिन्हें यम-नियम की संज्ञा दी गई है। यम और नियम दोनों का सतत् पालन करने वाला व्यक्ति ही सात्विक एवं पवित्र जीवन में हो सकता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ये पांच यम हैं, जिनका पालन मनुष्य को सम्पूर्ण जीवन में करना चाहिये। इसी प्रकार पवित्रता, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान—ये पाँच नियम हैं।

भारतीय संस्कृति में संस्कारों की विशेष भूमिका है। भारतीय संस्कृति का आधार अगर हम संस्कारों को माने तो भी अनुचित नहीं है। संस्कार के दो प्रायोजित रूप हैं, एक तो जैसा किजैमिनि ने पूर्व मीमांसा के सूत्र में कहा है, जिसके होने पर कोई पदार्थ, होने के योग्य होता है, उसे ही संस्कार कहेंगे। दूसरा यह कि—यह संसार एक प्रकार का नवजन्म है। सोलह तो प्रसिद्ध संस्कार हैं पर कुछ और हैं जो नियम-कालिक न होकर अवसर-विशेष या यज्ञ-विशेष के लिए अपेक्षित होते हैं। जैसे सात पाक यज्ञ, सात हर्षि यज्ञ, सात सोमयज्ञ और अशौच निवृत्ति हेतु किये अनुष्ठान आदि दीक्षात्मक संस्कार हैं। कुछ लोग वानप्रस्थ और संन्यास को भी संस्कार मानते हैं। उससे जीवन क्रिया में नवीन मोड़ लाना सम्भव

होता है। संस्कार में मुख्य रूप से दो बातें पायी जाती हैं, एक तो, अनुष्ठान को पुरुषार्थ की पूर्ति में सहायक मानना, दूसरा अनुष्ठान को जीवन समबद्ध सोपान का प्रतीक बनना।

भारतीय जीवन पद्धति में एक व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन सोलह संस्कारों से बंधा हुआ है। इन सोलह संस्कारों में गर्भाधान, पुंसवन, सीमान्तोन्नयन और कुछ लोगों के मत से विष्णुवलि भी जन्म से पूर्व किये जाने वाले संस्कार हैं। संस्कार निम्नलिखित हैं—

1. गर्भाधान संस्कार
2. पुंसवन संस्कार
3. सीमान्तोन्नयन संस्कार
4. जातकर्म संस्कार
5. नामकरण संस्कार
6. निष्क्रमण संस्कार
7. अन्नप्राशन संस्कार
8. चौलकर्म संस्कार
9. विद्यारम्भ संस्कार
10. कर्णवध संस्कार
11. उपनयन संस्कार
12. वेदारम्भ संस्कार
13. केशोन्त या गोदान संस्कार
14. समावर्तन संस्कार
15. विवाह संस्कार
16. अन्त्येष्टि संस्कार

भारतीय संस्कृति की एक विशेषता कर्म तथा पुर्नजन्म का सिद्धांत है। समाज में कोई विपुल साधन सम्पन्न है तथा कोई निरीह व दीन हीन है। इन दोनों में सामान्य तथा विशिष्ट व्यक्तियों की यही धारणा बनती है कि यह सब तो व्यक्ति के कर्म का परिणाम है। कार्य तथा कारण का नियम भौतिक जगत का एक अटल नियम है। स्वामी विवेकानन्द जी के शब्दों में—'हमारा हंसना, रोना, सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, हमारी शुभकामनाएं एवं अभिशाप, स्तुति और निंदा ये सब हमारे मन के ऊपर बहिजगत के घात-प्रतिघात के फलस्वरूप उत्पन्न हुए हैं और हमारा वर्तमान चरित्र इसी का फल है। ये सब घात-प्रतिघात मिलकर 'कर्म' कहलाते हैं।[21]

---

21. स्वामी विवेकानन्द, कर्मयोग, तृतीय संस्करण पृष्ठ 5।

भारतीय दृष्टाओं ने इस सर्वव्यापक सिद्धांत के विषय में कहा है कि अपनी शुभ-अशुभ परिस्थितियों के लिए उत्तरदायी होने के कारण यदि हम चाहे तो अपने प्रयत्नों द्वारा अपनी मनोवांछित वस्तु को प्राप्त कर सकते हैं। हमारी आत्मा अजर अमर है। शरीर धारण करने की प्रक्रिया को परिधान धारण करने तथा उतारने की क्रिया से समझा जा सकता है—'अमर आत्मा एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर को उसी प्रकार धारण करता जाता है जिस प्रकार की कोई व्यक्ति जीर्ण वस्त्रों को छोड़कर नये वस्त्र धारण करता है।[22] बार-बार शरीर धारण करने को कर्म का ही फल कहा गया है। पुनर्जन्म के कर्मों का परिणाम भोगने के लिए पुनर्जन्म की आवश्यकता अनिवार्य है। इस जन्म तथा मृत्यु को दुःख का कारण मानकर भारतीय मनीषियों ने इस कर्म बचन से मुक्त होने में ही स्थाई सुख माना है। यही भारतीय संस्कृति का चरम लक्ष्य है। और इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए व्यक्ति को सतत् प्रयत्नशील रहने का उपदेश दिया गया है। भारतीय संस्कृति के कर्म तथा पुनर्जन्म के सिद्धांत में भाग्यदण्ड निराशा तथा उत्साह-हीनता को स्थान नहीं है, वह तो व्यक्ति को निरन्तर प्रयत्न रहने की ही प्रेरणा देता।

समस्त जड़-चेतन प्रकृति के प्रति एकात्मकता की भावना भारतीय संस्कृति को गौरव प्रदान करती है। भारत समस्त चेतन सृष्टि में मातृभाव का रूप धारण किया है जिसमें सभी प्राणी हमारे शरीर हैं। इस सिद्धांत के अनुसार मनुष्य मात्र का ही नहीं अपितु पशु-पक्षी एवं छोटे-छोटे प्राणियों तक को आत्मवत मानने लगते हैं जिसके परिणामस्वरूप जीवमात्र के लिए करना स्वयं सहानुभूति की भावना विकसित हुई है। भारतीय संस्कृति की दृष्टि से विवेकशील वही है जो कि निकृष्ट से निकृष्ट पशु तक के साथ श्रेष्ठ पुरुष की तरह समदृष्टि रखें। इसी अनुभूति के कारण भारतीय संस्कृति का निर्देश है कि हम दूसरों के साथ ऐसा व्यवहार कभी न करें जो कि हमारे साथ होने पर प्रतिकूल प्रतीत हो।[23] इस दृष्टिकोण द्वारा भारतीय जीवन में, विश्वबन्धुत्व, अहिंसा, दया, क्षमा, तथा प्राणिमात्र की सेवा आदि गुणों के विकास के साथ-साथ लोक कल्याण की भावना का विकास हुआ।

प्राकृतिक सौन्दर्य ने भारतीयों के मानस पटल पर आध्यात्मिक रहस्य की छाप डाली। उनकी प्रकृति प्रियता यहाँ तक बढ़ी कि ऊषा और संध्या के सुनहले दृश्य नवजीवन प्रदान कर मानसिक आनन्द के सहायक बन गए। इसका प्रभाव यहां के जीवन में इतना गंभीर पड़ा कि यहां की धार्मिक एवं सामाजिक मान्यताओं उत्सवों,

---

22. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय द्वितीय, श्लोक 22।
23. आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समानारेत। पद्मपुराण, सृष्टिखंड, 19-357।

रीति, नीतियों में प्रविष्ट होकर सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में अपना अधिकार बना लिया। शरद और बसन्त के उत्सव इसी का परिणाम हैं। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार—'संस्कृत का शायद ही कोई उल्लेख योग्य कवि हो, जिसने किसी न किसी बहाने इन दो उत्सवों की चर्चा न की हो।[24] कोयल और मोर को पवित्र मानने, घरों में तुलसी वृक्ष रोपने, गंगा, यमुना, सरस्वती, गोदावरी, नर्वदा, सिन्धु आदि नदियों के प्रति पूजा भाव, पृथ्वी के प्रति मातृ भावना तथा इनमें मानवीय गुणों का आरोप विशेष महत्वपूर्ण है। मानव की संवेदना के साथ प्रकृति भी संवेदनशील है। पशुपक्षी हमारी ही तरह हंसते-बोलते और सुख-दुःख का अनुभव करते हैं। इस प्रकार समस्त जड़-चेतन प्रकृति के साथ आत्मीयता की दृष्टि ने भारतीय संस्कृति को महत्वपूर्ण बल दिया है।

लोक कल्याण तथा लोक मंगल की भावना भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता है। समस्त प्राणियों को सुख पहुंचाना तथा अपनी सेवा द्वारा उन्हें प्रयत्न एवं सबको कल्याणकारी पथ पर प्रतिष्ठित करना। इस प्रकार के कार्य को यहां ईश्वरीय कार्य माना जाता है। ऐसे कार्य सदैव, वर्जित माने जाते हैं जिसमें दूसरों की हानि हो; यहां अपने स्वार्थ सुख, साधन, धन-सम्पदा आदि को त्याग कर परमार्थ में हमारी शक्ति बनाने का महत्व है। प्रसिद्ध है कि गौतम बुद्ध जब निर्वाण को प्राप्त होने को थे तब वे एक ओर हट गए और बोले कि जब तक संसार का एक भी प्राणी दुःखी है तब तक वे निर्वाण नहीं चाहते।[25] परोपकार का प्रत्येक कार्य, सहानुभूति का प्रत्येक विभार दूसरों की सहायता किया गया प्रत्येक कार्य हमारे छुद्र अहं भाव को कम करता है और हममें यह भावना उत्पन्न करता है कि हम किसी से बड़े नही हैं। सम्पूर्ण आत्म त्याग ही हमारी नीति की नींव है जो समस्त नैतिक आदर्शों में व्याप्त है।

उपर्युक्त समस्त विवेचन से निष्कर्ष रूप में भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की विशेषताओं की आध्यात्मिक तथा लौकिक तत्वों के रूप में देखा जा सकता है। आध्यात्मिक तत्वों में परलोक सम्बन्धी धारणा, मोक्ष तथा स्पर्श, साधना मार्ग, तथा जीवन को आदर्श बनाने के लिए विविध साधन आते हैं। लौकिक तत्वों में, जीवन कृत, संस्कार तथा सामाजिक उत्सवादि, दिनचर्या, मर्यादावादी भाव, मनोरंजन के विविध साधन, उद्योग धन्धे वाला अलंकार, भोजन तथा सामाजिक रूढ़ियाँ और लोक विश्वास व लोक मान्यतायें तथा विविध कलायें।

---

24. प्राचीन भारत के कला विनोद, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 109।
25. हिन्दुओं का जीवन दर्शन, डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन पृष्ठ 87। अनुवादक-कृष्ण किंकर सिंह।

भारतीय संस्कृति की सर्वप्रधान विशेषता आध्यात्मिकता की है जो उसकी सभी विशेषताओं को किसी न किसी रूप में प्रभावित करती है। लक्ष्य युक्त जीवन की विशेषता के अन्तर्गत धर्माधारित अर्थ तथा काम के सम्पादन के पाश्चात इसी उद्देश्य सिद्धि का साधन बताया गया है। जड़ चेतन प्रकृति के प्रति आत्मीयता की भावना में भी यही दृष्टिकोण प्रेरणा देता है तथा लोक कल्याण तक के सामाजिक आदर्श में उक्त साधना की परिणित मानी जाती है।

मुस्लिम संस्कृति और सभ्यता:

इस्लाम धर्म मानने वाले मुसलमान कहलाते हैं।[26] एशिया और अफ्रीका के इस्लाम धर्म स्वीकार करने वाली जातियों द्वारा बनी मुस्लिम संस्कृति से यह अभिप्राय है—इस्लाम के प्रकाश में समाज और जीवन के सर्वांगीण संस्कार, सुधार और विकास। इसकी सीमा में व्यक्ति, समाज तथा जीवन से सम्बन्धित तत्व आ जाते हैं, जैसे—रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, साहित्य कला, दर्शन-राजनीति आचार-व्यवहार, रीति-नीति, रुचि-धर्म, अर्थ आदि।

पंडित जवाहर लाल नेहरू ने अपनी पुस्तक 'डिस्कवरी आफ इण्डिया' में मुस्लिम संस्कृति के सम्बन्ध में कहा है—'जो संस्कृति अरब लोग अपने साथ विभिन्न देशों को ले गये, वह निरन्तर परिवर्तनशील और विकासवान् रही क्योंकि इस पर इस्लामी नवीन विचारों की दृढ़ छाया रही, केवल इसलिए इसको पूर्णतया इस्लामी सस्कृति तो कहा नहीं जा सकता।'[27] विजेता मुसलमानों ने विजित देशों की इन साँस्कृतिक परम्पराओं को उदारतापूर्वक अपनाया जिनका कि इस्लाम से सैद्धाँतिक विरोध नहीं पड़ता था। इसी समन्वयात्मक उदारता के कारण हिजरी सन् के सौ साल होते-होते मुसलमानों के राज्य के समान शक्तिशाली राजा दुनिया में और कोई नहीं रह गया था।[28] मुस्लिम संस्कृति और सभ्यता की स्पष्ट छाप हमें सूफी काव्य में मिलती है, जिसकी चर्चा हम इस्लाम धर्म के मूल सिद्धांतों से आरम्भ करेंगे।

तौहीद—अरबी भाषा में तौहीद का अर्थ खुदा को एक समझना है। दूसरे शब्दों में धार्मिक दृष्टि से मुस्लिम संस्कृति का आधार शिला, तौहीद या एकेश्वरवाद में दृढ़ विश्वास और उस पर अमल है, विभिन्न धार्मिक मतावलम्बियों को अल्लाह की ओर उसकी बंदगी में लगा देना भी तौहीद का अंग है। कुरान शरीफ में स्पष्ट आदेश है

---

26. शारटर—इनसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम पृष्ठ 417।
27. डिसकवरी आफ इण्डिया पृष्ठ 206।
28. संस्कृति के चार अध्याय, डा० रामधारी सिंह दिनकर, पृष्ठ 224।

कि तेरे रब की यही आज्ञा है कि तुम लोग उस खुदा के अतिरिक्त किसी दूसरे की बन्दिगी न करो।[29] कुरान में कई जगह तौहीद पर जोर देते हुए अल्लाह को ही माबूह (आराध्य) बताया गया है और साथ ही यह भी कि उसके सिवा कोई दूसरा माबूद नहीं।[30] तौहीद के सिद्धांत के कारण मुस्लिम संस्कृति में सामाजिक सुव्यवस्था दृढ़ हुई और पुरोहितवाद को स्थान नहीं मिल सका।[31] इस्लाम में मनुष्य और अल्लाह के बीच कोई अन्य सत्ता नहीं आती। इसमें रंग, नस्ल, जाति या व्यवसाय के आधार पर भेद-भाव, छूत-पाक नहीं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सब प्रकार के मत, वाद देवी-देवताओं को छोड़कर बिना किसी पुरोहित के खुदा की इबादत तौहीद है।

सूफी कवियों ने अपनी रचनाओं के प्रारम्भ में तौहीद की चर्चा की है, यह प्रायः कुरान की आयतों का अनुवाद प्रतीत होती है। सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी एक महान विद्वान थे और कुरान का उन्हें विशद ज्ञान था, वे खुदा को अलम्ब और अवरन तथा खलिक (शृष्टा) व कादिरे मुतलख (सर्वशक्ति-सम्पन्न) मानते हैं। इसके प्रमाण में उनका निम्नपद दृष्टव्य है जो कि कुरान की सूरे इखलाश (112) का भावानुवाद है। इसकी अंतिम पंक्ति तो द्वोवल अव्बलों-वल आखिरों बज्जाहिरो बल बातिन' का शब्दशः अनुवाद है—

अलख अरुप अवरन सो कर्ता।
ना ओहि पून न पिता न माता। न ओहि कुटंक न कोई संग नाता।।
जना न काहू, न कोई ओहि जाना। जहंलीज सब ताकर सिरजना।।
लै सब कीन्ह जहाँ लोग कोई। वह नहि, काहु कर होई।।
हुत पहिले अरु अब है सोई। पुनि सो इहै नहिं कोई।।[32]

इसी प्रकार कासिम शाह ने तौहीद का वर्णन करते हुए कहा—

सिर्जन हार एक है, काहू जान न सोई।
आप न काहू सों जना, वह समान नहिं कोई।[33]
ऐसे अलख जो अहै अकेला। परघट गुप्त सभी रंग खेला।।

---

29. कुरान, सूरे बनीठ इस्त्रईल (16), आयत 23।
30. कुरान, सूरे बकर (2) आयत 255।
31. दि स्प्रिट आफ इस्लामिक कल्चर, पृष्ठ 3।
32. जायसी ग्रंथावली, पृष्ठ 3।
33. इन्द्रावली, पृष्ठ 136, ले० नर मुहम्मद 1906 ई०।

वह करतार जो जगत विधाता । सब मंगल वह सबकर दाता ।।
न वह माता-पिता नहिं भाई । न वाके कोई कुटुम्ब सगाई ।।
ना वह होय कि होकर बारा । वह किन रचा रचा वह सारा ।।[34]

इसी प्रकार कुरान के अनुरूप जायसी ने खुदा की जात और शिफात को परिभाषित करते हुए पुराण और वेद जैसे शब्दों का प्रयोग कुरान के लिए किया है—

एहि विधि चीन्हहु कहहु गियानू । जस पुरान मंह लिखा बखानू ।।
जीऊ नाहिं पै जियै गुसाईं । कर नाहीं पै करे सबाईं ।।
जीभ नाहि, पै सब किछु बोला । तन नाहिं, सब ठाहर डोला ।।
अवन नाहिं, पै सब किहु सुना । हिया नाहिं, पै सब किछु गुना ।।
नयन नाहिं पै सब किछु देखा । कौन भाँति इस जाई सिखा ।।
है नाहिं कोइ ताकर रूपा । ना ओहि सन कोई अहि अनूपा ।।
न ओहि ठाऊं, न बिन ठाऊं । रूपरेखा विन निरमल नाऊ ।।[35]

रामचरितमानस के बालकाण्ड में गोस्वामी तुलसीदास ने भी ईश्वर का ऐसा ही भाव चित्र खींचा है—

आदि अन्त कोउ जासु न पावा । मति अनुमानि निगम उस गावा ।।
विन पद चलई सुनई बिनु काना । कर विनु करम करइ विधि नाना ।।
आनन रहित सकल रस भोगी । बिन बानी वकता बड़ जोगी ।।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा । ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा ।।
असि सब भाँति अलौकिक करनी । महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ।।[36]

कियामत—यह अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ हश्र या निर्णय का दिन होता है । कियातम पर विश्वास रखना अनिवार्य बताते हुए कुरान में कहा गया है—'जो कोई अल्लाह पर और उसके फरिश्तों और आसमानी किताबों और रसूलों पर तथा कियामत पर विश्वास नहीं रखेगा वह पथभ्रष्ट हो जायेगा ।[37] कियामत के

---

34. हंस जवाहर, पृष्ठ 3 ले० कौसिमशाह, प्रकाशक तेकुमार प्रेस बुक डिपो, लखनऊ ।
35. जायसी ग्रन्थावली, पृष्ठ 3 पद 8 ।
36. रामचरितमानस बालकाण्ड, 118, पृष्ठ 102 ।
37. कुरान, सूरे निशा (4), आयत 136 ।

दिन पूछताछ है, लेखा-जोखा होगी ।'[38] और जिस दिन कियामत आएगी, दोषी निराश होंगे और उनके देवी-देवताओं में कोई उनका सिफारशी नहीं होगा ।'[39] कियामत का विवरण कुरान-शरीफ में इस प्रकार भी मिलता है कि—'सारी पृथ्वी कियामत के दिन उसके वश से होगी और सब आकाश उसके दाहिने हाथ में (वशीभूत) लिपटे होंगे तथा नरसिंघा फूंका जाएगा, फिर दोबारा (अपने आदेश से) पुन: सुर के फूंकने पर जीवित हो खड़े हों । पृथ्वी अपने रब (खुदा) के नूर से देदीप्यमान हो उठेगी, और कर्म लेखा यानी आमाल नामें रखे जायेंगे तथा प्रत्येक प्राणी को जो उसने किया है, उसका बदला मिलेगा ।[40] इस प्रकार कियामत के दिन जंजा (पुरस्कार) और सजा (दण्ड) का विधान मुस्लिम संस्कृति को पुष्टता प्रदान करता है ।[41] अच्छे कर्मों के लिए स्वर्ग और बुरे कर्मों के लिए नर्क (दोनख) के प्रावधान के द्वारा कुरान ने अपने अनुयायियों का एक सुसंस्कृत और पुष्ट मुस्लिम समाज के आधार शिला रखी है । कुरान में कहा गया है कि 'जो ईमान लाए और नेक काम किए, अल्लाह उन्हें उन बागों में (स्वर्ग के) प्रविष्ट करेगा जिनके नीचे लहरें बहती हैं, उसमें उन्हें सोने के कंगन और मोती पहनाए जायेंगे और उनकी वेश भूषा रेशम की होगी ।[42] (संसार में मुस्लिम मर्द के लिए रेशम हराम इसलिए कर दिया है कि उसके पहनने से अनेक विकार, वासना, घमण्ड पैदा होता है) और जो काफिर हैं, उनके लिए नर्क की अग्नि है और उनसे दोजख का अजाब भी कम नहीं किया जाएगा । प्रत्येक नाशुक्र गुजार को हम यों ही दण्ड दिया करते हैं और वह दोजख में चीत्कार करेंगे कि ऐ रब हमारे, हमें निकाल, अब हम ऐसा नहीं करेंगे, उत्तर मिलेंगे कि क्या हमने तुम्हें इससे पहले सोचने और समझने की मोहलत न थी—अवश्य दी थी—और पैगम्बर भी भेजे थे ।[43]

मलिक मोहम्मद जायसी ने अपनी रचना आखिरी कलाम में कुरान और हदीस के आधार पर कियामत का विधिवत विस्तृत वर्णन किया है ।[44] यह वर्णन बहुत

---

38. कुरान, सूरे अनकबूत (29) आयत 13, सूरेबनी इस्जाईल (17), आयत 13-14 ।
39. कुरान, सूरे रूम, (30) आयत 11-13 ।
40. कुरान, सूरे जमर (39), आयत 66-70 ।
41. कुरान, सूरे फज्र (89), आयत 22-30, सूरे त्वाहा (20), आयत 74-75 ।
42. कुरान, सूरे हज्ज (22), आयत 23, सूरे फातिर (35), आयत-33 ।
43. कुरान, सूरे फातिर (35), आयत 36-37 ।
44. जायसी ग्रन्थावली, आखिरी कलाम, पृष्ठ 339 से 361 तथा कियामत का वर्णन है ।

ही रोचक और विद्वतापूर्ण है। इसमें मुस्लिम संस्कृति के अनेक सिद्धांत और अन्तर्कथाएं यथा फरिश्ते, आवेकोसर, फुलसिरात, सफाअत, आदम हव्वा, रिसालत, करबला, जन्नत, शराबेतहूरा, हुरे आदि का वर्णन है। अपने प्रसिद्ध गन्थ पद्मावत में जायसी ने रत्नसेन से उसकी माँ को समझवाया है कि कियामत के दिन कदा अच्छाई और बुराई का हिसाब-किताब करेगा—

> **गुन अवगुन विधि पूछब, होईहिं लेख और जोख।**
> **वैकिन उब आगे होई, करब जगत का मोख।।**
> **हाथ- पाँव सरबन और आखी। ए सब उहां भरहिं मिलि साखी।।**
> **सूत-सूत तन पोलहिं दोखू। कहु कैसे होईहिं गति मोखू।।[45]**

इस प्रकार कियामत के इस्लामी व भारतीय दृष्टिकोण में यह अन्तर है कि इस्लाम में पुनर्जन्म को नहीं माना गया है जबकि यही भारतीय धर्मों का आधार है। इस्लाम में तो कियामत इस सृष्टि का आखिरी दिन होगा, अर्थात् खुदा ने न तो इससे पहले कोई सृष्टि की थी, न करेगा। एक सामान्यजन की भांति दादू स्वयं अपने कर्मों का लेखा-जोखा करते हुए खुदा से बख्से जाने की कामना करते हैं—

> **दादू गुनाहगार हैं मैं देख्यामान माहिं। भावै बन्दा बकसिये, भावै गहिकरि मारि।।[46]**
>
> **पल-पल में मुनहीं तेरा, बकसो अवगुण मेरा।[47]**

इस प्रकार कियामत की परिकल्पना ने मुस्लिम समाज को बुराई की ओर जाने से रोकने में सफलता प्राप्त की।

हराम-हलाल—समाज के सुचारु रूप से संचालन के लिए कुरान में हराम और हलाल का प्रावधान किया गया है। हराम अरबी भाषा का वह शब्द है जिसका अर्थ है—जिसका खान-पान आदि धर्म में वर्जित हो।[48] तथा हलाल का अर्थ है जाइज, विहित, जिसका खाना और पीना आदि धर्म में वर्जित न हो।[49] सुअर का

---

45. जायसी ग्रन्थावली, (जोशी खंड), पृष्ठ 55।
46. दादू-बानी भाग 1 पृष्ठ 242।
47. वही, पृष्ठ 234।
48. शास्टर, इनसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, पृष्ठ 133-136।
49. वही।

गोश्त[50], जुआं[51], शराब[52], यतीम (अनाथ) का माल हड़पना[53], सूदखोरी[54] कम तोलना[55], पर स्त्री गमन[56], चोरी[57], झूठ[58] आदि समस्त अमानवीय कुकर्मों को कुरान में हराम कहा गया है। और हराम खोरियों के अनुपातानुकूल दोजख आदि के दण्डों का स्पष्ट उल्लेख है जो कियामत के दिन भोगने होंगे। हलाल के विषय में कुरान में कहा गया है कि 'ऐ ईमान वालों पाक चीजों में, जो तुम्हें दी है खाओ और अल्लाह का शुक्र अदा करो।

नैतिक और सामाजिक दृष्टि से इस विधि निषेध के कारण मुसलमान कियामत के दिन जवाबदेही से डरता है। मुस्लिम समाज में यदि मुसलमान झूठ बोल दे या कम तोल दे तो लोग कहते हैं—मियां, मुसलमान होकर झूठ बोलते हो, मियां मुसलमान होकर कम तौलते हो, शर्म नहीं आती, अल्लाह के घर जाना है ? इसका एक उदाहरण हिन्दी साहित्य में मशहूर है। एक बार अकबर ने करनेश बंदीजन की कविता से प्रसन्न होकर अपने खजांची को इनाम देने को कहा, कोषाध्यक्ष बहुत दिनों तक टालमटोल करता रहा और कुछ भी हाथ से नहीं दिया। कवि को एक दिन क्रोध आ गया, और उसे एक छन्द सुनाकर फटकारा। केवल टाल-मटोल करने पर ही मुसलमान दोषी ठहराया जा सकता है, उसके रोजे अकारथ चले जाते हैं, न केवल यह बात करनेश को मुस्लिम दरबार के सम्पर्क से मालूम हुई बल्कि हराम-हलाल में फर्क, दोजख के अजाब, मरने के बाद कफन मिलना न मिलना आदि मुस्लिम संस्कृति के धार्मिक संस्कारों से भी करनेश भली-भांति परिचित हुए। करनेश के खजांची को मुस्लिम संस्कृति से परिचित करने वाली निम्न पंक्तियां कवि ने क्रोध में कहीं—

खांत 'हराम' दाम करत हराम काम घट-घट तिनहीं के अपयश छावेंगे।
दोजख हूं जैहे तब काटि-काटि इवैहै खोपरी को गूदो काग टोंट निउगवेगें।।

---

50. कुरान सूरे बकर (2), आयत 173।
51. कुरान सूरे, आयत 219।
52. आयत 219।
53. कुरान, सूरे वनी इस्त्राईल (17) आय 35।
54. कुरान, सूरे बकर (1) आयम 175 आले इम्रान (5), आयत 134।
55. कुरान, सूरे वनी ई० आयत 35।
56. कुरान सूरे मायदा (5) आयत 38।
57. कुरान सूरे वकर ई० (10) आयत 32-35।
58. कुरान सूरे बकर (2) आयत 172।

कहै करनेस अब घूस खात लाज नहीं, रोजा जौ निमाज अन्तकाम नहिं आवेगें ।
कविन के मामलें में करै जौन खामी तौन निमक हरामी मरै कफन न पावेगें ।।[59]

जजा-सजा

जैसा कि कुरान पर आधारित कियामत के वर्णन पर लिखा है कि कियामत के दिन जजा-सजा का एक निश्चित विधान है, हिन्दी के अनेक कवियों ने अरबी-फारसी के उन्हीं शब्दों के माध्यम से तत्सम्बन्धी विचार भी अभिव्यक्त किए हैं, आखिरी कलाम में जायसी ने इसका सविस्तार वर्णन किया है—

जबहिं अन्त कर परलै आई । धरमी लोग रहै ना नाई ।[60]
होयगा हिसाब जब मुख से न आवै ज्वाब ।
सुंदर कहत लेखा लेत राई-राई को ।।[61]
जुलम कूं करता है, धनीं सूं न डरता है, दोजख कूं मारता है खजाना बनाई का ।
होयगा हिसाब जब आवेगा न ज्वाब तब, सुन्दर कहत गुनेहगार है, खुराई का ।।[62]

अस्सिरात या फुलसिरात—ये अरबी-फारसी भाषा के शब्द हैं और मुसलमानों के अकीदे के अनुसार यह जन्नत और दोजख के बीच का एक पुल है ।[63] जिसे कियामत के सब जीवों को पार करना पड़ेगा । इसके नीचे घोर अन्धकार पूर्ण भयानक नरक है । यह पुल बल से भी अधिक बारीक और खड़ग की धार से भी तेज बताया गया है । पापियों के लिए यह ऐसा ही रहेगा और पुण्यात्माओं के लिए अच्छा खासा चौड़ा हो जाएगा ताकि वे सीधे जन्नत में पहुंच जाएं । पापी कट कट कर दोजख (रौख नरक) में गिर पड़ेंगे, जहां उन्हें दहकती आग में जलना होगा । हिन्दी में इस वैतरणी को पुल कहते हैं । हिन्दी के सूफी कवि तो मुसलमान होने के नाते इससे भली-भांति परिचित ही थे । जायसी ने अखरावट में नाम सहित और पद्मावत् में इसके नाम के बिना इसका उल्लेख किया है—

---

59. मिश्रबन्धु विनोद, प्रथम भाग, पृ० 324 ।
60. जायसी, ग्रन्थावली, पृ० 344 ।
61. सुन्दर विलास, पृ० 18 ।
62. (क) सुन्दर विलास, पृ० 19 ।
    (ख) है गुनेहगार भी गुनाह ही करत है, खायगा मार तो फिरे रोता ।
    जिन तुझे खाल से अजब पैदा किया, तू उसे क्यु फरामोश होता ।
    सुन्दर विलास, पृ० 12 ।
63. शारटर-इनसाइक्लोपोडिया आफ इस्लाम (कियाम), पृ० 262 ।

तीस सहस्त्र कोस कै बाटा। अस सांकर चील सकै न चाँटा।
खाड़ें चाहि पैनि बहुताई। बार चाहि ताकर पतराई।।[64]
नासिक 'फलसरात' पथ चला। तेहि कर भौहें है दुई पला।[65]
जेतने परे सब सलरि। 'फुलसरात' कर पंथ रैगावो।
'फुलसरात' पुंनि सेइग्र मेरा। लेखा हो उभत सब केरा।।
एक दिसि बैठि मुहम्मद रोई है। जिब रईल दूसर दिसि होइ है।
बार-पार किछु सूझत नाहीं। दूसर नाहिं, को टेके बाहीं।।
तीस सहस्त्र कोस कै बाटा। अस सांकर जेहि चलै न चाँटा।
बारहु तें पतरा अस झीना। खड़ग-धार से अधिको झीना।।
दोउ दिसि नरक-कुण्ड हैं भरे। खोज न पउव तिन्ह महं परे।
देखत कांप लागै जांघा। सो पथ कैसे जैहे नांथा।[66]

जन्नत-दोजख—कियामत के दिन जजा-सजा के निर्णय के पश्चात् क्रमानुकूल ही सत्यकर्मियों को जन्नत और कुकर्मियों को दोजख दिया जाएगा। इसका विवरण हम कियामत में जो कुरान की आयतें उद्धत की हैं उसमें दे आए हैं। यहां तो मुस्लिम सम्पर्क से हिन्दी में जो विवरण मिलता है उसको देखना है। कुरान में कहा गया है कि जो ईमान में लाए और जिन्होंने नेक काम किए, उन्हें हम जन्नत में दाखिल करेंगे।[67] मां के कदमों (पैर) के नीचे जन्नत है, यह भी इस्लामी विचार है।[68] दादू दयाल ने मोमिन को जन्मत मिलने की बात कही है—

जोरन करै हराम न खाई। सो मोमिन भिस्त में जाई।।

---

64. जायसी ग्रन्थावली (पद्मावत्) पृ० 66 एवं पृ० 349।
65. जायसी ग्रन्थावली (अखरावट्) पृ० 309।
66. जायसी ग्रन्थावली (आखिरी कलाम) पृ० 347।
67. शारटर-एनसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, पृ० 88।
68. (क) माता पिता को जो रहसावा। सो बैकुंठ फल पावा।
इन्द्रावती, पृ० 36।
(ख) दादू बानी भाग-1, पृ० 129।
(ग) हो अछरी कविलास के जेहिसूरि पूजे न कोई।
जायसी ग्रन्थावली, पृ० 91।
(घ) मिलि हरै नेवछावरि करिहै सबके फूल असि झरिहैं।
जायसी ग्रन्थावली, पृ० 359।
(ङ) चालीस चालीस 'हूरै' सोई। औ सग लागि वियाहीजे।
जायसी ग्रन्थावली, पृ० 358।

जायसी ने हूराने-विहिश्त (स्वर्ग की अप्सराएं) के लिए अछरी कविलास का शब्द प्रयोग किया है। आखिरी कलाम के पद सैंतालीस में जन्नत के चिरंतन सुख का जो इन्होंने वर्णन किया है वह इस्लामी विश्वास के अनुरूप ही है तथा जन्नत में शराबे-तहूरा (पवित्र-शराब) जो मोमिनों को मिलेगी, उसका जायसी ने स्पष्ट उल्लेख किया है—

एक तो अमृत, वास कपूरा। तेहि कहं कहा शराब-तहूरा।[69]
फिरे संबोल, मया से कहब अपुन लेई खाहु।
भा परसाद, मुहम्मद उठि, 'विहिस्त' मंह जाहु।[70]

दोजख जहन्नम—कुकर्म करने वालों को जहन्नम का कठोर दण्ड दिया जाएगा। कुरान में इसका विस्तृत विवरण मिलता है।[71] इस्लाम में दोजख का विचार सांस्कृतिक दृष्टि से इसलिए महत्वपूर्ण है कि इसके भय से दुराचारी व्यक्ति सदाचार की ओर आ सकता है।[72] और सदाचारी व्यक्ति सभ्य एवं संस्कृत समाज का महत्वपूर्ण अंग है। हिन्दी कवि दोजख (जहन्नम या नरक) की इस्लामी धारणा से भलीभाँति अवगत हो गए थे। हरामखोरी के परिणामस्वरूप कुकर्मी को नरक में जाना होगा। करनेश कवि ने इसे यों अभिव्यक्त किया है—

खात है हराम दाम करत हराम काम घट-घट हिन्दी के अपयश छावेंगे।
दोजख हूं जैहै तब काटि-काटि खैहै खोपरी को गूदो काम टोटनि उड़ावेंगे।[73]

ईमान—ईमान का अर्थ है, धर्म पर दृढ़ विश्वास करना या रखना। अकीदा, यकीन इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है।[74] कि ईमान लाने वाले मोमिन को यह मानना चाहिए कि 'मैं ईमान लाया अल्लाह पर और (सत्य जाना) इसके फरिश्तों

---

69. जायसी ग्रन्थावली
70. जायसी ग्रन्थावली
71. शारटर. इनसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम (जन्नत) पृ० 88।
72. जिसकानित नोन खात मतलक भीना डरात।
    कौल से बेकौल हुआ किसी कीन लेत दुआ।
    'दोजख' के लिए दिल कौन-कौन मारा है॥ रैदास की बानी, पृ० 29।
73. मिश्रबन्धु विनोद, प्रथम भाग, पृ० 324।
74. ईमाने-मुफस्सल-आमन्तों विल्लाहि व मलाइकतिहि व कुतोबेही व रूसलेही बल्योमिल आखिरे बलकाद्रि खैरेही व शर्रिही मिनल्लाहि तआला बल्वभसे बादलमौत।

पर और पैगम्बरों को भेजी हुई किताबों पर और रसूलों पर और कियामत पर ईमान लाया तथा मृत्यु के पश्चात् जो उठने पर तथा उसकी ओर से भेजे हुए आदेश पर। इनमें से अनेक बातों की व्याख्या हम इससे पहले कर चुके हैं, यहां तो केवल इतना कहना है कि हिन्दी कवि मुस्लिम सम्पर्क के कारण शब्द ईमान तथा इसकी आत्मा से कितना परिचित हुए हैं। दादूदयाल ने 'आमन्तों विल्लाहिं' का कैसा सुन्दर अनुवाद किया है

अल्लाह आप 'ईमान' हैं, दादू के दिल माँहि।
सोई स्यावति राखिएं, दूजा कोई नाँहि।।[75]

मुसावात—यह अरबी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है समानता, बराबरी, सबको एक समान अधिकार मिलने का सिद्धांत। भाई चारा या साम्यवाद भी इन्हीं अर्थों में आता है। मुसावात का सिद्धांत तौहीद से प्रेरित है। इस्लाम से पूर्व के इतिहास में भाईचारे का विचार केवल एक ऐसे दार्शनिक विचार तक सीमित मिलता है, जिसका दैनिक जीवन के व्यावहारिक रूप में प्रचलन नाम मात्र तक ही सीमित था।[76] मुसावात इस्लाम धर्म की मुख्य विशेषताओं में एक है। तौहीद का अर्थ, जैसा कि इसके पूर्व स्पष्ट किया जा चुका है, एक होना और एक करना है।[77]

इस्लाम के व्यावहारिक (कर्मवाद) में जितने भी धार्मिक अनुष्ठान (धार्मिक कृत्य) है, आचार या सदाचार के दृष्टि से उन सबका एक महत्व यह भी है कि मुस्लिम समाज में मुसावात को इनसे बहुत बल मिलता है।

कुरान में कहा गया है—'लोगों! हमने तुम्हें (अपने हुक्म से) एक मर्द और एक औरत (आदम, हव्वा) से पैदा किया और तुम्हारे कुनवे बनाये ताकि तुम आपस में पहचाने जाओ तुम में सबसे अधिक महान (बुजुर्ग) अल्लाह के नजदीक वह हैं जो तुममें सबसे अधिक हमारा कहना मानता है।[78] एक हदीस में कहा गया है कि खुदा की सब खलकंत (रचना) एक कुनवा है और खुदा को वह सर्वाधिक प्रिय है जो उसकी मखलूक ले सर्वाधिक भलाई करें।[79]

---

75. दादूबानी-1, पृ० 60।
76. इस्लाम : ए स्ट्डी पृ० 8।
77. शारटर एनसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम पृ० 586।
78. कुरान, सूरे हिजरात (49) आयत 13-14।
79. (क) ग्लिम्पसेज आफ हदीस, नं० 38, पृ० 2।
    (ख) उनकी नजर न आवते, कोई राजारंक। मलूक-वानी, पृ० 7।

यह सब मानव भाई-भाई हैं मैं तुम्हारा रब हूं ।[80] औरत (नारी) के अधिकारों के विषय में एक सूख (4) 'सूरे निसा' रखी गयी है जिसमें एक स्थान पर यह भी कहा है—'ऐ लोगों उस रब से डरो जिसने तुम्हें एक व्यक्ति आदम से बनाया और उसी से उसका जोड़ा बनाया और दोनों से बहुत नर नारी पैदा किये ।[81] इसी सूरत में औरत को बाप दादा की जायदाद में से हिस्सा, विरसा मिलने, शादी ब्याह आदि के अनेक अधिकारों का खोलकर वर्णन किया गया है। यही कारण है कि मुस्लिम संस्कृति में माँ के कदमों के नीचे जन्नत होना, माँ का आदर तथा स्त्री के अधिकारों की रक्षा का ख्याल अधिक रखा जाता है। इसीलिये मुस्लिम औरतों का उनके अपने नाम से पहचाने जाने या पुकारे जाने का रिवाज है जैसे—खदीजा, आइंसा, फामिया, जैनव आदि ।[82] इन कुरानी आयतों के तथा अन्य अनेक स्थानों पर बताये हुए खुदा के आदेशों के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि इस्लाम की आत्मा की वास्तविक अभिव्यक्ति इस सत्य में भी है कि 'इस्लाम जाति-पांति, रंग-नस्ल के भेद-भाव तथा मनुष्य और निर्माता के बीच किसी प्रभुत्व, ठेकेदारी या पुरोहितवाद को स्थान नहीं देता । इस्लाम के दृष्टि में समस्त मानव (स्त्री-पुरुष), (धनी-निर्धन) सब एक समान है और यही मुसावत है ।'

हिन्दी साहित्य में जाति व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था मूर्ति पूजा तथा अन्य सामाजिक रीतियों और कुरीतियों एवं विषमताओं का जो चित्र कबीर, दादू, सुन्दरदास तथा अन्य कवियों के रचनाओं में मिलता है यहां उसे उद्धृत नहीं करना है। न हमारा कोई ऐसा आग्रह है कि इस्लाम के मुसावत का कितना अधिक प्रभाव हिन्दी पर पड़ा है। मुस्लिम संस्कृति एवं संस्कृति का सही मूल्य आंकने के लिए कुछ यहां प्रस्तुत है। सभी मानव एक शरीर के अंग की भांति है। दादू के भाव भी ऐसे ही मिलते हैं—

जाति हमारी जगत गुरु परमेशुर परिवार ।[83]
आतम भाई जीत सब एक पेट परिवार ।
दादू भूल विचारिये, तो दूजा कौन गंवार ।।[84]

---

80. कुरान, सूरे अंबिया (21) आयत 92 ।
81. कुरान, सूरे निशा 7 आयत-1 ।
82. दी स्प्रिट आफ इस्लामिक कल्चर पृ० 6-7 ।
83. दादू बानी, भाग-1 ।
84. वही, भाग-1 ।

कासिमशाह कृत हंस जवाहर में शादी के भोज वर्णन में इस्लामी मुसावात की झलक मिलती है।

> **भयो व्याह सायत सुभग, दोउ दिशि भयो हुलास।**
> **पुनि समाज भोजन भये, बैठ लोग चहुं पास।**
> **बैठे लोग छत्तीसों जाति। जो जेहि भांति सी तेहि पाती।**
> **पांति-पंति से सबै बिठावा। और सब के पुनि हाथ धुआवा।**
> **जहलंग पुर अमीर उमराऊँ। सेवक आन भये तेहि ठाऊँ।**
> **राखे भार सम्हार के, सब रस प्रेम मिलाय।**
> **नाउ निरंजन सुमिर के, लाग सबै जो खाय।।**

व्यवहार पत्र तथा कर्मवाद—मुहम्मद साहब ने इस्लाम का प्रवर्तन एक संघीय धर्म के रूप में किया। यह प्रवृत्ति प्रधान मजहब है जहां इस्लाम के सैद्धान्तिक पक्ष के स्तम्भ तौहीद एवं आखिरत और ईमाने-मुफसल (अल्लाह पर, उसके फलाइका-फिरिश्तों, आसमानी किताबों, रसूलों, यौमे-कियामत आदि) पर विश्वास करता है वही दूसरी तरफ व्यवहार पक्ष के नाते धार्मिक-अनुष्ठान अथवा धार्मिक-कृत्यों का भी आदेश जो कि नमाज, रोजा, हज्ज, जलात आदि है।

सांस्कृतिक रूप में यह धार्मिक अनुष्ठान ऐसे हैं जिनसे एक ओर सामूहिक और संघीय बल मिलता है तथा समस्त जीवन एक विशेष रूप से आचार पक्ष का सुधार होता है वहीं दूसरी तरफ धार्मिक दृष्टि से दुनियां और लोक परलोक में उत्तम सिद्धियों की प्राप्ति होती है। और आध्यात्मिकता का एक माध्यम होता है।

कुरान के आदेश के अनुरूप इस्लाम धर्म के अनुयायियों का दृढ़ विश्वास है जो जैसा कर्म करेगा उसको कियामत के दिन वैसा ही फल प्राप्त होगा।

कालिमा—यह अरबी भाषा का शब्द है कालिमा का अर्थ ह् शब्द, वाक्य और मुसलमानों का धर्म-मंत्र मुहम्मद एक और अल्लाह, एक है (लाइलाहा इल्ललाहु मुहम्मदुर्रसूलुल्लाहि (हिन्दी के कवियों ने भी अल्लाह को एक कहा है तथा कलिमः (कलमा) का भी प्रयोग किया है—

> **आप अलेख इलाही आगै, तहं सिजदा करै सलाम।**
> **(दादू) सब तन तसबी कहै करीम, ऐसा कर ले जाप।**
> **रोजा एक दूर करि दूजा, 'कलमा' अपै आप।।**[85]

---

85. दादू बानी, भाग-1 पृ० 63।

कुरानी शव्दावली में इल्लाही, सिजदा, सलाम, तसवी, करीम, रोजा और 'कलमा' शव्द है। इससे मुस्लिम सम्पर्क तो स्पष्ट झलकता ही है, दादू साहित्य का सूक्ष्म अध्ययन कलिमा से अपरिचित नहीं मालूम होते—

दिल दरियाँ में गुसल हमारा, ऊजू करि चित लाऊं।
साहिव आगे करूं बन्दगी बेर-बेर बलि जाऊं।।
(दादू) पचौं संग सभालूं साई, तन मन तौ सुख पाऊं।
प्रेम पियाला पिलजी देवै 'कलमा' ये लय लाऊं।।[86]

मनुष्य यदि नापाक हो तो नमाज से पहले स्नान करें अन्यथा साधारणतया पाँचों समय की नमाज से पूर्व बुजू करके ही नमाज करनी पड़ती है, कलमा उसके बाद।

नमाज तथा अरकान—यहां पर नमाज तथा उससे सम्बद्ध अजान, बुजू, गुस्ल, नमाज के पांच समय, सजदा, रूकूअ, मस्जिद, अन्य उपकरण मुसल्ला, तसबीह तथा उन सब बातों की एक जगह तसबीह की जायेगी।

इस्लाम के व्यवहार पक्ष के अन्तर्गत इस धार्मिक-अनुष्ठान का एक महत्वपूर्ण स्थान है। कुरान में स्थान-स्थान पर नमाज पढ़ने का आदेश आया है तथा तत्सम्बन्धी विषयों की व्याख्या एवं उपयोगिता बतायी गयी है।[87]

नमाज को प्राण की रक्षा के लिए सांस के समान बताया है। जीवन की वास्तविकता को जानने का प्रमुख साधन है। स्वास्थ्य के लिए भी नमाज उपयोगी है। इससे शारीरिक जोड़ों का काम लिया जाता है, जैसे हाथों को कान तक उठाकर 'नीयल' बांधना, सिर झुकाना (रूकुअ) और सजदा करना 'क अदा' में बैठना, सलाम फेरना उंगलियों, कलाइयों, कन्धों, कुहनियों, रीढ़ की हड्डियों घुटनों, टखनों और गर्दन की हड्डियों को काम में लेना होता है। नमाज न केवल आध्यात्मिकता के लिए आवश्यक है अपितु शारीरिक वर्जिस भी है। सब लोग गरीब-अमीर, काजी-मुल्ला, लोहार-बढ़ई, बादशाह-गुलाम सबका एक साथ खड़ा होना मुसावत, भाई चारा और समानता तथा सामाजिकता को बढ़ावा मिलता है।

गुस्ल और बुजू—नमाज पढ़ने वाला यदि किसी मूल-मूत्र या दीर्घ-निष्कासनादि के कारण नापाक है तो केवल बुजू से काम न चलेगा। उसे स्नान करना

---

86. दादू बानी, भाग-1, पृ० 130।
87. कुरान, सूरे बकर (2) आयतें 3, 43, 45, 110, 149, 150, 238।

चाहिए । गुस्ल और बुज़ू के विषय में कुरान में अनेक स्थानों पर उल्लेख है ।[88] नमाज पढ़ने से पूर्व शुद्धि के दृष्टि से हाथ आस्तीन तक, मुंह तथा पाँच विधिवत् धोने को कहते हैं ।[89]

अजान (बांग)—अजान का अर्थ है, घोषणा करना,[90] नमाज का बुलावा; नमाज की सूचना के शब्द जोर-जोर से बोले जाते हैं । मुहम्मद साहब के जमाने में सामान्यत: हजरत विलाल (हब्शी काले रंग वाले) अजान दिया करते थे । ये नमाज पढ़ने की सूचना हेतु दी जाती है ।

नमाज तुम्हारे सुधार का एक मार्ग है और जो एक अल्लाह के लिए पढ़ी जाती है, जो बहुत महान् है, पाक है, मुहम्मद जिसका रसूल है ।[91]

गुरुग्रन्थ साहब राग मारू महला पाँच में अजान सम्बन्धी चर्चा मिलती है ।

सजदा—सजदा का अर्थ है झुकना, माथा टेकना, सर झुकाना जमीन पर सर रखकर खुदा को प्रणाम करना । सजदा नमाज का एक विशेष अंग है जिसमें मनुष्य अल्लाह की महानता, पाकी और सर्व शक्तिमत्ता का ध्यान रख लें, सर को जमीन से लगा देता है ।

मलूकदास ने स्पष्ट रूप में सिजदा को विधिवत् व्यक्त किया—

कहत मलूक महबूब पिया खूब चार ।
सिर लगाय जमीं में सिरदा कराइये ।।[92]

दरूद—नमाज की विशेष दुआ है । यह सलाम रसूल पर भेजा जाता है ।

तसबीह—नमाज के बाद विशेष रूप से तथा वैसे भी नमाजी तसबीह पढ़ता है । इसमें अल्लाह की महानता का वर्णन है ।

मस्जिद (मसीत्र)—नमाज पढ़ने के भवन को मस्जिद कहते हैं । वस्तुकला की दृष्टि से गुम्बद तथा बहुत बड़े-बड़े, दरों, महराबों वाली इमारत होती है । पुराने

---

88. कुरान, सूरे अलमाइद : (5) 5-6 ।
89. बुजू के विवरण के लिए देखिए-दि होली कुरान, प्रिफेस-पृ० 17 ।
90. शारटर एनसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम-पृ० 16 ।
91. वही, पृ० 16 । तथा दि होली कुरान प्रीफेस-पृ० 19 ।
92. (क) मलूक बानी पृ० 29 ।
    (ख) कितने बैठे सिरदा करते, माया जाल लपेटा । मलूक बानी, पृ० 7 ।

समय में इन्हीं मस्जिदों के एक भाग में मदरसा हुआ करते थे। भारत में भी मुस्लिम शासन के काल में अनेक मस्जिदों से ही मदरसा भी सम्बद्ध थे जहां पर ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा दी जाती थी।[93]

रोजा—हिन्दी में इसे व्रत या उपवास कहते हैं। रोजा फारसी भाषा का शब्द है, अरबी में इसके लिए 'सियाम' या 'सौम' शब्द है। कुरान में बताया गया है—रोजा रखना पूर्ण कर्म है, जिस महीने में तीस रोजे रखे जाते हैं वह रमजान का महीना होता है। कुरान में कहा गया है—'रमजान का महीना है जिसमें कुरान नाजिल (उतरा) हुआ कि लोगों के लिए मार्ग दर्शन की खुली निशानियां हैं।[94]

इस्लाम में मनुष्य की मानसिक प्रवृत्तियों के सर्वोत्तोमुखी विकास एवं संस्कार के लिए रोजे के उपयोगिता बताई गयी है।[95] इससे स्वास्थ्य, बुद्धि, आत्मा-शुद्धि एवं दृढ़-संकल्प को बल मिलता है। दादू, मलूक, कबीर आदि कवियों ने भी रोजे का उल्लेख किया है—

'रोजा किया निमाज गुजारी, बंग दे लोग सुनावा।'[96]

× × × ×

रोजा करै निमाज गुजारै।[97]

नमाज और रोजे की नैतिक उपयोगिता की ओर संकेत करते हुए करनेश कवि कहते हैं, कि यदि जो रोजा रखने और नमाज पढ़ने के बाद भी रिश्वत लेता है, उसे शर्म आनी चाहिए, उसकी ये इबादतें नष्ट हो जायेंगी।[98]

हज्जे-कअबा, मक्का, मदीना, आबे-जमजम—हज्ज अरबी भाषा का शब्द है। यह मुसलमानों का एक धार्मिक कृत्य है जो मक्के में अदा होती है। प्रत्येक

---

93. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पृ० 144 से 145, 147।
94. कुरान, सूरे बकर (2) आयतें 183-185।
95. दि होली कुरान, प्रीफेस, पृ० 25-26।
96. (क) कबीर ग्रन्थावली पृ० 133।
    (ख) हिन्दू एकादिस चौबीस, रोजा मुस्लिम तीस बनाय। बीजक पृष्ठ 388।
97. मलूक बानी पृ० 22।
98. मिश्र बन्धु-विनोद, प्रथम भाग, पृ० 324।

धनाढ्य वयस्क के लिए यह अनिवार्य है कि वह जीवन में एक बार जरूर अदा करें। कुरान में हज्ज के विभिन्न स्थानों पर आदेश दिये हुए हैं तथा विधि भी है।[99] कुरान में कहा है कि हम अल्लाह ने खाना-कअबा को लोगों की इबादत का घर बनाया और कहा इब्राहिम (विख्यात पैगम्बर) को, कि नमाज का स्थान इसे बनाओ। काबा मक्का नगर में (अरब में) अल्लाह का पवित्र धन है जिसकी दीवारें अल्लाह के हुक्म से हजरत इब्राहीम (पैगम्बर) और ईस्माइल (पैगम्बर) ने चुनीं थी। इसे मानव जाति का धर्म-केन्द्र माना गया है तथा संसार भर के मुसलमान इसी दिशा में मुंह करके नमाज पढ़ते हैं।

हिन्दी साहित्य में हज्ज, काबा, किबला, मक्का सम्बन्धी विचार मिलते हैं। किन्तु स्थानीय तीर्थ यात्रियों के बिगड़े हुए रूप को देखकर कहीं-कहीं ये संत कवि हज्ज को भी वैसा ही समझकर विश्वास करते हैं जो उन्हें भवसागर से पार करें।

तसब्बुफ—प्रत्येक विख्यात धर्म में तसब्बुफ के तत्व पाये जाते हैं। तसब्बुफ इश्क (प्रेम) पर आधारित है, इसका स्वरूप विश्वव्यापी है जिसमें कोई भी देश, जाति, अछूती नहीं रहती है। परमात्मा से इश्क की हद तक लगाव प्रत्येक देश में व्यक्ति करते हैं। तसब्बुफ को पारिभाषिक रूप से इस प्रकार समझा जा सकता है—'तसब्बुफ उस तरीके का नाम है जिस पर खुलूस, वफा, तसलीमों-रजा के साथ चलने वाले का व्यक्तित्व परमतत्व का अपने दिव्य चक्षुओं से दर्शन द्वारा नैकट्य प्राप्त कर लेता है।[100]

मोहम्मद साहब के जन्म के समय अरब देश समस्त प्रकार के मानसिक एवं नैतिक पतनों से ग्रस्त था। मोहम्मद साहब का व्यक्तित्व और कुरान की शिक्षाओं ने अपने सदाचरण से उसका उद्धार किया। तत्कालीन अरब वालों के लिए मोहम्मद साहब को पैगम्बर या गुरु बनाकर अल्लाह ने भेजा। जिन्होंने कुरान के प्रकाश में खुदा से मिलने का सीधा रास्ता दिखाया। जिस मजहब को उन्होंने तबलीफ (प्रसार) किया वह अत्यन्त सादा था, तौहीद (एकेश्वरवाद) का सिद्धान्त उनके धर्म का मेरूदण्ड था, तथा रोजा, नमाज, हज, जकात आदि को मोहम्मद साहब ने अल्लाह के हुक्म से इबादत बताया। हर चीज नश्वर है सिवाय उसके स्वरूप के[101] और हमने इन्सान को पैदा किया और हम जानते हैं जो कुछ उसके जी में आता है क्योंकि हम उसकी शह-रंग (प्रमुख नाड़ी) से भी ज्यादा उसके निकट हैं।[102] और मैंने

---

99. कुरान, सूरे बकर आयते 125, 158, 191, 196, 203 आदि।
100. आइनाये मारिफत पृ० 11।
101. कुरान, सूरे किसस (28) आयत 88।
102. कुरान, सूरे काफ (50) आयत 15।

इंसान की रूह फूंकी ।[103] पूर्व और पश्चिम (सब) अल्लाह (ही) के हैं। जिस ओर भी मुंह करोगे, उसी ओर अल्लाह का रुख होगा ।[104] जिसको अल्लाह नूर नहीं देता उसके पास कोई नूर नहीं ।[105] खुदा, अपने मानने वालों से कहता है—'खुदा उनसे मुहब्बत करता है और वह खुदा से[106] इसीलिए उसका प्यारा नाम मुहब्बत करने वाला (मावूद) है।

मुस्लिम संस्कृति की प्रवृत्ति आदि काल से उदारता के साथ समन्वयात्मक रही है और इस्लाम के प्रकाश में देशकाल के अनुसार उसके स्वरूप का विकास एवं विस्तार होता रहा है । इस्लाम के प्रकाश में समाज और जीवन के सर्वांगीण विकास और रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, साहित्य, कला, दर्शन, राजनीति, रीति, आचार, व्यवहार, रुचि, धर्म, अर्थ, आदि विभिन्न तत्वों का जीवन से सम्बन्ध रहा है । मुस्लिम संस्कृति की प्रवृत्ति निषेधात्मक नहीं रही, दृढ़ एकेश्वरवाद, मुसायत (साम्यवाद) और हज के कारण इस्लामी दुनिया के विभिन्न भागों में निकटतम सम्बन्ध स्थापित थे जिससे सांस्कृतिक आदान-प्रदान होता रहा । मुस्लिम संस्कृति के दृष्टिकोण के विषय में इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि कुरान शरीफ के अन्तिम आयतों में ऐसे कवियों को पथभ्रष्ट बताया है जो अनर्गल प्रलाप करें तथा अनैतिकतापूर्ण हो खुदा कि स्तुति (हम्द) तथा सदाचार सम्बन्धी कविता को अच्छा कहा गया । काव्य कला तथा साहित्य को मुस्लिम संस्कृति में प्रारम्भ से प्रोत्साहन दिया गया । इस्लाम धर्म में ईश्वर को एक मानने के साथ-साथ विद्या प्राप्त करने के लिये सबको समान अधिकार दिया गया है । यही कारण है कि मुस्लिम सं० की विशेषता रही है जहाँ-जहां भी इस्लाम का प्रसार हुआ इसने स्थानीय भाषा भाव एवं साहित्य को इस्लाम के प्रकाश में समेट कर उन्हें अपना लिया । जिसके परिणाम स्वरूप मुस्लिम शासकों ने संस्कृत भाषा का भी संरक्षण किया ।

इस्लाम में सब अल्लाह के बन्दे हैं, एक आदम की औलाद हैं ऐसा कुरान में अनेक स्थानों पर कहा गया है । इस तरह उनकी प्रवृत्ति उदारवादी एवं समन्वयवादी प्रतीत होती है क्योंकि भारतीय धारणा में भी 'वसुधैव-कुटुम्बकम्' की बात कही गई है । मुसलमानी सम्पर्क में आने के कारण हिन्दी कवियों ने इस्लाम धर्म के अनेक सिद्धांतों का निरूपण किया है जो सूफी कवियों के प्रभाव स्वरूप हिन्दी में आया। सूफियों ने जहां एक ओर इस्लाम धर्म के तत्वों को लेकर काव्य सृजना की वहीं पर उन्होंने

---

103. कुरान, सूरे हिज (15) आयत 29।
104. कुरान, सूरे बकर (2) आयत 115।
105. कुरान, सूरे नर (24) आयत 40।
106. कुरान, सूरे हज्ज (22), आयत 40।

हिन्दू धर्म दर्शन तथा बौद्ध दर्शन के अनेक विचारों को अपने साहित्य में स्थान दिया। दोनों संस्कृतियों में सामंजस्य स्थापित करने में इनका बहुत बड़ा योगदान रहा। दोनों संस्कृतियों के समन्वय को क्रमशः हम इस प्रकार विवेचित करके स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे।

हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति में समन्वय

मुसलमानों के भारत आगमन पर बंगाल की खाड़ी में दो संस्कृतियों का समन्वय हुआ। 15वीं शताब्दी के ऐतिहासिक तथ्यों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि देशस्थ राजनीतिक सामाजिक परिस्थितियों ने बहुत दिनों तक हिन्दु और मुस्लिम समाज को मिलने नहीं दिया। इस सम्बन्ध में डा० मजूमदार तथा राय चौधरी के अनुसार प्रथम एवं सम्पर्क में ही दोनों के बीच जो गहरी खाई बन चुकी थी। वह कठोर प्रयत्नों के होते हुए भी पट नहीं सकती थी। किन्तु कला एवं संस्कृति के क्षेत्रों में वैसा न हो पाया। मध्यकालीन भारत यह साँस्कृतिक सम्मेलन तत्वयुगीन साहित्य को भी प्रभावित करता है। सर जान मार्शल के शब्दों में यह विश्व इतिहास की महत्वपूर्ण घटना है।[107] मुहम्मद तुगलक जैसे बादशाह एवं सुलतान इब्जतूता की विभेद नीतियों से धर्मों के बीच की खाई पाटना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य थी किन्तु 'मानवता' के संरक्षक सम्राट् अकबर ने अपने दूरदर्शिता से हिन्दू-मुस्लिम प्रथक कूलों को धर्म सरिता के प्रवाह से मिलने का सफल प्रयास किया।

लूटमार, संघर्ष, विद्रोहों के बाद हिन्दू और मुसलमानों में सम्पर्क धीरे-धीरे बढ़ता गया। सद्भावना के वातावरण में इस्लामिक जोश को ठण्डा कर दिया और दोनों की विचारधारा में तेजी से उदारता आने लगी। राजनैतिक आवश्यकता ने साँस्कृतिक गठबंधन के लिए बाध्य कर दिया। बंगाल और मालवा के ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि हिन्दुओं के सहयोग के अभाव में मुसलमान शासकों का शासन कार्य चलना असम्भव-सा लगने लगा।

मुस्लिम समाज पर हिन्दू संस्कृति का रंग चढ़ने लगा तथा मुस्लिम समाज अपनी मौलिक विशेषताओं को लुप्त कर हिन्दू सामाजिक परम्पराओं में मिलने लगा। शादी-विवाह, खान-पान, परस्पर आदान-प्रदान हुआ। कितने ही मुसलमान विजेताओं ने हिन्दू राजकुमारियों से विवाह किए, राजा मानसिंह ने अपनी बहन का परिणय सम्राट अकबर से कर इतिहास में ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत किया।

---

107. डा० आर०सी० मजूमदार तथा ए०सी० राय पृष्ठ 40।

हिन्दू प्रथाओं से मुसलमान प्रभावित हुए विशेष रूप हिन्दू नारी के सहज स्वाभाविक गुण-सहिष्णुता, सरलता, एकनिष्ठता ने गहराई तक प्रभाव डाला ।[108]

समाज प्रथाओं, लोक विश्वासों का प्रभाव परस्पर पड़ा । इस्लाम धर्मान्तर्गत सूफी मत हिन्दी प्रेमाख्यान का ही प्रतिफल दिखाई पड़ता है । सूफी मत पर भारतीय वेदान्त का अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा और इसलिए तसव्वुफ पर सबसे अधिक प्रभाव हिन्दू का ही माना जाना चाहिए । इसी प्रकार डा० अशरफ के अनुसार 'गुरु का भारतीय आदर्श पीरों अथवा शेखों से सम्बन्धित मुस्लिम अवधारणा द्वारा अभिव्यक्त हुआ ।

इसी प्रकार हिन्दू धार्मिक त्यौहारों का प्रभाव भी मुसलमानी त्यौहारों पर पड़ा । बसन्तोत्सव का जो वर्णन 'पद्मावत' में आया है उसके अनुसार बसन्त-पंचमी के दिन कुमारियां झुण्ड के झुण्ड वनाकर महादेव के मन्दिर में पूजा के लिए जाती थी तथा उत्तम वर की प्रार्थना करती थी ।[109] इसी प्रकार होली का त्यौहार है । यह सभी वर्गों तथा स्तरों में परस्पर सद्भावना का द्योतक त्यौहार है । इसी प्रकार कंजली तीज, दीपावली आदि को प्रेमाख्यानों में वर्णित पाया गया है । सामाजिक जीवन के अन्तर्गत मुसलमानों ने भी जाति भेद को ठुकरा कर हिन्दू संस्कृति को अपनाया । छोटी आयु में बच्चों का मुण्डन-अकीक (हिन्दू-चूड़ाकर्म-संस्कार) तथा 'किसमिल्ला' (विद्यारम्भ संस्कार) उनमें भी प्रचलित हुए जो कि हिन्दू प्रभाव के परिचायक हैं ।[110] राजपूतों में प्रचलित 'पान के बीड़े को देना तथा स्वीकारा मैत्री के सूचक थे जिसके अतिरिक्त 'कमरबन्द का परस्पर बांधना' भी मित्रता तथा सन्धि के प्रतीक थे और इन सब का बन्धन माना जाता था जो कि हिन्दू प्रभाव के परिणामस्वरूप मुसलमानों में भी प्रचलित हो गए '[111] पारिवारिक स्वाभिमान की रक्षा के लिए जौहर की प्रथा का एक उदाहरण मुसलमानों में मिलता है । मुसलमान समाज पर हिन्दू प्रभाव के दृष्टिकोण से राजपूतों की पगड़ी मुस्लिम समाज में लोकप्रिय हो गई ।[112] इसी प्रकार नारियों के बीच भी हिन्दू संस्कृति का समन्वय प्राप्त हुआ, जिस प्रकार हिन्दू नारियाँ सोलह श्रृंगार करती थी उसी प्रकार मुसलमानों में 'हफतोनूह' का नाम प्रतिष्ठित था । मुगलों के आगमन से पूर्व वास्तु

---

108. भारत का वृहद इतिहास-श्री नेत्र पाण्डेय 338 ।
109. पद्मावत-जायसी दोहा 173 वियोग खंड दो 183-84, 190-191 बसन्त खंड ।
110. के०एस० अशरफ, हेडिंग (डोमेस्टिक इवेन्ट्स) पृष्ठ 144-45 ।
111. वही, अदर मेनर पृष्ठ 233 ।
112. वही ड्रेसेस एण्ड क्लाथ, पृष्ठ 177 ।

निर्माण को छोड़कर शेष कलाओं के क्षेत्र में समन्वित रही। इस युग में हिन्दू प्रभाव का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण मुसलमान समाज प्रतिष्ठित होने वाला भारतीय भाषाओं तथा उनके साहित्य से सम्बन्धित प्रभाव है, क्योंकि मुसलमानों के समय में राजनैतिक समीकरण की प्रवृत्ति को तो आश्रय मिला ही, साथ ही विविध कलाओं में भाषा साहित्य एवं संगीत आदि सभी क्षेत्रों में सांस्कृतिक समन्वय की दृष्टि-पुष्ट भावना मिलती है। मुसलमान विजेताजों ने दिल्ली तथा मेरठ के आस-पास जनभाषा पश्चिमी हिन्दी या खड़ी बोली सीखी तथा साम्राज्य विस्तार करते हुए, कालान्तर में देश के अन्य भागों में जहाँ-जहां गए उसे लेते गए और इस प्रकार उत्तर भारत ही नहीं प्रत्युत देश के विविध भागों में फैलकर वह अन्तर प्रान्तीय विचार विनिमय का साधन भी बनी।[113] इसके अलावा अकबर के राजत्व काल में भारतीय संस्कृति की कलात्मक प्रवृत्ति का निखार अधिक हुआ। मुस्लिम संस्कृति की जिस भावुकता ने स्थापत्य और चित्रकला में मोहकता उत्पन्न की, उसी ने हिन्दी कवित्त में अपूर्व कोमलता का संचार किया।[114] नामदेव ने कई शिष्य मुसलमान थे और रमजान और एकादशी समान रूप से मनाते थे। संस्कृति समन्वय के कार्य में सूफीमत के योगदान से ही साहित्य की अभिवृद्धि हुई। एक ओर हम देखते हैं कि सूफी सन्तों ने इस्लाम का प्रचार किया तो दूसरी ओर भारतीय धर्म साधना के तत्व भी अपनाये। डा० रामधारी सिंह दिनकर ने समन्वयकारी संस्कृति का उल्लेख किया है, जब दो देश, दो जातियाँ या दो संस्कृतियाँ आपस में मिलती है तब वे भी आपस में एक दूसरे को प्रभावित करने लगती हैं और सैकड़ों हजारों सालों के बाद वे मिलकर एक ऐसा रूप पकड़ लेती हैं, जिसमें उनके बिलगाव का लक्षण शेष नहीं रहता। यही संस्कृति समन्वय का सर्वोतम उदाहरण है।[115]

सांस्कृतिक समन्वय के कार्य में सूफी-सन्तों का भी बहुत बड़ा हाथ रहा है। सूफी सन्तों ने जहां इस्लाम की शान्तिपूर्ण प्रचार में योगदान किया वहीं भारतीय योग परम्परा की हठयोग की क्रियाओं को उन्होंने अपनी साधना के अन्तर्गत स्थान दिया, इसके साथ ही उनके प्रभाव से भारतीय हिन्दू जनता में भी पीरों के मजारों की पूजा होने लगी, अनेक सूफी कवियों ने अपनी रचनाओं द्वारा हिन्दी भाषा तथा साहित्य को अलंकृत किया। प्रेम साधना तथा सूफी प्रेम आख्यान काव्यधारा इन्हीं की देन है।

---

113. भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी, डा० सुनील कुमार चटर्जी।
114. मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति में, डा० मदन गोपाल गुप्त, पृष्ठ 135।
115. संस्कृति के चार अध्याय डा० रामधारी सिंह दिनकर पृष्ठ 122।

सांस्कृतिक समन्यव का एक ज्वलन्त उदाहरण वास्तुकला के विकास में मिलता है। इस युग के विविधि प्रदेशों के सुल्तानों तथा राजाओं ने अनेक अद्‌भुत इमारतें, मस्जिदें, मकबरे तथा इमामबाड़े इत्यादि बनवाए। जिनकी उत्कृष्टता के सम्बन्ध में डा० भगवत शरण उपाध्याय ने लिखा है कि भारत के बाहर के किसी भी देश में इतनी विशाल और सुन्दर मुस्लिम इमारतें इस युग में न बन सकीं जितनी कि इस देश में।[116] भवन निर्माण के क्षेत्र में समन्वय जो प्रकट करने वाली जिस मुस्लिम कला का विकास हुआ, उसे न मुस्लिम वैशिष्ट्य का प्रतिनिधि कहा जा सकता है और न विशुद्ध हिन्दू कला का विकसित रूप ही अपितु जान मार्शल के मतानुसार दोनों के संयोग से सम्मिश्रित संस्कृति के स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती है।[117] मुस्लिम संस्कृति में दूसरे के धर्म एवं संस्कृति के लिए सहिष्णुता बहुत कम है। मुस्लिमों में इस सहिष्णुता को कुफ्र कहा गया है, किन्तु भारतीय संस्कृति में सहिष्णुता उसका एक प्रधान अंग है। तलवार के जोर से तो संस्कृति का प्रचार नहीं हो सकता जैसे कि मोहम्मद साहब ने अरब में करने की कोशिश की थी। भारतीय संस्कृति की शक्ति तलवार पर आधारित नहीं है, अतः उसकी जड़ें जनता के हृदय में दृढ़ता के साथ जम चुकी थी, अतः इस्लामी लोगों में भारतीय संस्कृति के साथ समन्वय स्थापित करना ही उचित समझा। भारतीय आचार-विचार एवं संस्कृति के बहुत से उदाहरण पद्‌मावत में प्राप्त होते हैं। चूंकि पद्‌मावत की आधारशिला इस्लाम धर्म से प्रसूत सूफी सिद्धान्त है। अतः प्रच्छन्न रूप में उसमें मुस्लिम संस्कृति के चित्र भी हैं। अस्तु पद्‌मावत की ओर आकर्षित हिन्दू जनता स्वतः मुस्लिम संस्कृति की ओर आकृष्ट हो गयी। इसी प्रकार अन्य सूफी कवियों के काव्य भी मुस्लिम और भारतीय संस्कृतियों से ओत-प्रोत थे जिससे हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति में दूरी कम हो गयी और सामंजस्य की भावना ने जन्म लिया।

इसके साथ ही हिन्दू रीति-रिवाजों, विवाह गौना, सती, जौहर चौपड़ आदि समस्त लोकृत्यों एवं लोक प्रथाओं को भी सूफियों ने अपने काव्य में स्थान दिया। जैसे भारतीय विवाह में वरवधू के पाणिग्रहण संस्कार में सातवें भाँवर में कन्या दूसरी की समझी जाती है। जायसी ने इसे इसी रूप में इस प्रकार व्यक्त किया—

'चांद सूरज सत भौंवर देहिं ॥'

---

116. डा० भगवतशरण उपाध्याय-सांस्कृतिक भारत-चौदहवां अध्याय, पृष्ठ 184।

117. 'एन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इण्डियन, डा० आर०सी० मजूमदार और डा० एच०सी० रिचौधरी पृष्ठ 410। हेडिंग आर्ट एण्ड आरचीटेक्चर।

इस विवाह वर्णन से उस समय प्रचलित सामाजिक संस्कृति तथा विशिष्ट लौकिक रीति-रस्मों, कृत्यों और परम्पराओं पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है । इसे रत्नसेन पद्मावती विवाह खण्ड और 'रत्नसेन-पद्मावती भेट खण्ड' में विस्तृत रूप से देखा जा सकता है ।

भारतीय संस्कृति में क्षत्रिणीयों में जौहर की परम्परा रही है। सूफी काव्य में भी इसको महत्व दिया गया है जैसे अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया तब जायसी लिखते हैं कि—

'जौहर भई सब स्त्री, पुरुष भये संग्राम ।
बादशाह गढ़ चूरा, चितउर या इस्लाम ।।'[118]

इसमें राजपूत जीवन की वीरता और राजपूत स्त्रियों की शौर्य का सुन्दर परिपाक हुआ है ।

विवाह एवं सुहाग के अवसर पर वर-वधू के चौपड़ खेलने की एक अत्यन्त प्राचीन प्रथा है । पद्मावती ने भी रत्नसेन से पासा खेलने का प्रस्ताव किया था ।

ऐसे राजकुंवर नहिं मानौ । खेलु आरि पांसा तब जानौ ।।
रहै न आठ अठारह भाखा । सोरह सतरह रहै न राखा ।।
सत जो धरे खेल न हारा । ढारि इग्यारह जाइ न मारा ।।[119]

भारतीय समाज में प्रचलित शकुन-अपशकुन यात्रा मुहुर्त विचार तथा लोक विश्वासों को भी सूफियों ने अपने काव्य में स्थान दिया—

'पंन्नग पंकज मुख गहे, खंजन तहां बईठ ।
छत्र सिंहासन, राज, धन ताकंह होई जो दीन ।।[120]

सामाजिक उत्सवों में वसन्त, होली, दीवाली, दशहरा आदि को भी सूफियों ने विशेष महत्व दिया है । जैसे—

'फागु खेलि पुनि दाहब होली । सइं तब खेह उडावउव झोली ।'[121]

× × × ×

---

118. पद्मावत-नागमती-पद्मावती सती खण्ड-पृष्ठ 299 ।।
119. पद्मावत ।
120. जायसी ग्रन्थावली नखसिख खण्ड, पृष्ठ 152 ।

अजहूँ निठुर ग्राव ऐहिबारा, परव दिवारी होइ सतारा।
सखि मानहुं त्यौहार सब गाइ दिवारी खेलि, हो का गावो कंत
बिन रही छार सिर मेलि ।।[122]

इस प्रकार सब मिलाकर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सूफियों ने भारतीय जन जीवन में समस्त लोका चारों, लोक विश्वासों, भारतीय जीवन पद्धतियों, सामाजिक उत्सवों तथा दुर्गों के वर्णनों तक को भी नहीं छोड़ा। इस प्रकार सम्पूर्ण भारतीयता के साथ समन्वय करने का प्रयास किया।

मुसलमानों में जो ज्ञान पिपासु थे, उन्होंने भारतीय धर्म और दर्शन का अध्ययन किया तथा इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि इस्लाम ही विश्व का सर्वश्रेष्ठ धर्म नहीं है। उन्होंने जाना कि एकेश्वरवाद का सिद्धान्त हिन्दुओं के लिए नया नहीं है। अत्यधिक वैज्ञानिक एवं आलोचनात्मक दृष्टि वाले अलबरूनी ने भी हिन्दुओं की ईश्वर विषयक मान्यता के विषय में लिखा है 'ईश्वर के विषय में हिन्दुओं को विश्वास है कि वह एक शाश्वत, अनादि, अनन्त, स्वेच्छा से सक्रिय सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सजीव, जीवन दाता, शासक, रक्षक अप्रतिम, प्रभावशाली, समानता एवं विषमता से दूर है। न वह किसी के सदृश है और न कोई वस्तु उससे सादृश्य रखती है।'[123]

विचारशील मुसलमानों ने भारतीय धर्म की उन मान्यताओं को भी प्राश्रय दिया जो इस्लाम के विपरीत पड़ती थी। बदायूनी का कहना था कि अकबर ने आत्म परमात्मा के मिलन सिद्धान्त को स्वीकार किया। यह मान्यता इस्लाम सिद्धांत के विरुद्ध है।[124]

भारत के प्रवेश के पूर्व ही सूफीमत पर भारतीय प्रभाव पड़ चुका था। अपने पूर्व परिचित सिद्धान्तों को भारत में प्रत्यक्ष रूप में पाकर सूफी सन्तों का उनके प्रति आकर्षित होना स्वाभाविक ही था। ऐसी स्थिति में मुल्ला, मौलवीयों की कट्टरता उन्हें आखरी होगी। सूफी सन्त बुल्लेशाह के निम्नांकित शब्दों में इसकी झलक मिलती है—

'बुल्ले को यह कहकर लोग उपदेश देते हैं कि ए बुल्ले जाओ मस्जिद में बैठो, लेकिन मस्जिद में जाने से क्या हुआ, अगर हृदय से प्रार्थना नहीं की—आग में

---

121. जायसी ग्रन्थावली, ना०प्र०स०, पृष्ठ 152।
122. वही, पृष्ठ 155।
123. अलबरूनी का भारत, पृष्ठ 27।
124. इण्डियन इस्लाम, पृष्ठ 160।

जाय नमाज, मिट्टी में मिले रोजा, कलमा पर स्याही फिर गयी। बुल्ला कहता है—मालिक तो मेरे भीतर मिल गया है और लोग उसे दूसरी जगह खोजते हैं।[125]

भारत में प्रवेश के पश्चात् सूफी साधना पर भारतीय धर्म-साधना का अनेक रूपों में प्रभाव पड़ा। भक्ति जिस प्रकार कृष्ण को उपास्य देव मान कर वृन्दावन गोकुल और राधा का नाम लेते हैं, उसी प्रकार सूफियों ने हजरत मुहम्मद को लेकर काव्य-रचना की, सूफी स्वयं अपने को राधा के स्थान पर रखता है, मदीना उसके लिए मथुरा है। गोकुल अथवा वृन्दावन उसका अपना घर है।[126]

सूफी कवियों पर भारतीय प्रभाव इतना गहरा है कि कवि के सम्बन्ध में यह कहना कठिन हो जाता है कि वह हिन्दू तथा मुसलमान। 'मधुमालती' के प्रारम्भिक अंश को यदि छोड़ दिया छोड़ दिया जाय तो मंझन के धर्म के सम्बन्ध में निर्णय करना कठिन हो जाएगा। वह सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की उत्पत्ति कमल से मानते हैं। परमात्मा को ब्रह्मा कहते हैं। बचन की उत्पत्ति हरिमुख से बताते हैं। उस आदि शब्द को ओंकार कहते हैं और विधाता द्वारा चार वेदों के निर्माण की चर्चा करते हैं।[127]

भारत के प्रमुख सूफी सम्प्रदायों में से प्रत्येक ने थोड़े-बहुत हेर-फेर के साथ प्राणायाम को साधना का आवश्यक अंग माना है। प्राण और मन की साधना द्वारा आत्मा का परमात्मा से मिलन सबका लक्ष्य है। जायसी भी मानते हैं कि उस लक्ष्य तक प्राण और मन की साधना द्वारा ही पहुंचा जा सकता है।

'जाइ सो जाइ प्राण मन बन्दी।
ज्यों धसि लीन्ह कान्ह कालिंदी।।'

इस प्रकार सूफी सम्प्रदाय ने हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों में सामंजस्य का प्रयास किया। उन्होंने सामाजिक मान्यताओं से लेकर साधनाओं तथा दार्शनिक विचारों में भी समन्वय की भावना को दर्शाया है। जैसे अद्वैत का मूक मंत्र है—जगत मिथ्या है। एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है। जायसी का दृष्टिकोण निम्न पंक्तियों में इसी प्रकार दृष्टव्य है—

---

125. सूफीमत साधना और साहित्य पृष्ठ 425।
126. पंजाबी सूफी पोयट्स, पृष्ठ 114-119।
127. दृष्टव्य 'मधुमालती' स० डा० माताप्रसाद गुप्त, पृष्ठ 18-19।
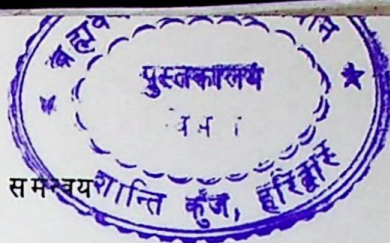
'पानी महं जस बुल्ला । तस यह जगत उतिराया ।
एकहिं आवत देखिए । एक है जात बिलाइ ।।[128]
'यह संसार सपन का लेखा । बिछुरि गए जानो नहिं देखा ।।'[129]
'धार उठाई लीन्ह इक मूठी । दीन्ह उड़ाय पिरिथमी भूठी ।।'[130]
'निमिष न लाग कर ओहि । सबै कीन पल एक ।।'[131]

———

128. अखरावट, 35, 8-9 ।
129. पद्मावत, 132, 3 ।
130. वही, 615-4 ।
131. वही, 2-8 ।

पंचम—अध्याय

साहित्यिक समन्वय

काव्य की आत्मा और उसके कलेवर में समन्वय

सूफी रचनाओं की आधार शिला सूफी-सिद्धान्तों पर रखी गई है, पर उसका ऊपरी आवरण भारतीयता के रंग से रंजित है, अर्थात् सूफी-सिद्धान्तों को भारतीय काव्य और चरित्र, हिन्दी भाषा और छन्द के आवरण में सूफियों ने प्रस्तुत किया है। अर्थात् काव्य की आत्मा तो सूफी सिद्धान्तों से प्राणित है और उसका कलेवर भारतीयता से ओत-प्रोत है। सूफी काव्य में समाहित रचनाओं की धार्मिक गोष्ठियों में मान्यता और इनके रचयिताओं के सूफी ग्रन्थों में मिले उल्लेखों को देखकर इनके मूल लक्ष्य के सम्बन्ध में किसी भ्रांति की गुंजाइश नहीं होती है। सूफियों पर भारतीय विचारधारा का प्रभाव नकारा नहीं जा सकता है। सूफी सम्प्रदायों के विवरणों तथा स्रोतों से ज्ञात होता है कि भारतीय सूफी विचार धारा और साधना पद्धतियों से बहुत कुछ अभारतीय और भारतीय सूफी मतावलम्बियों और सम्प्रदायों ने ग्रहण किया था जिसमें सूफीतर समझे जाने वाले तत्व तो कवियों को सम्प्रदायिक साहित्य में भी उपलब्ध थे इसलिए सूफी साधना को अपनी कविता के माध्यम से प्रकट करने वाले रचनाकारों को समान्तर भारतीय साधना पद्धतियों की विशिष्ट शब्दावली को ग्रहण करने में कोई संकोच न हुआ। इन प्रेम धर्मी महामानों ने इस्लाम की बाहरी बातों को निर्भीकता पूर्वक आडम्बर घोषित किया केवल अन्तःकरण की पवित्रता को ही सर्वोपरि माना, ये मुस्लिम एकेश्वरवाद से भारतीय अद्वैतवाद की ओर सूफियों के बढ़ते हुए चरण हैं। सूफियों की इस चिन्तन पद्धति का विकास हजरत मुहम्मद के लगभग 250 वर्ष पश्चात् हुआ जिस प्रकार हमारे यहां अद्वैतवादी, विशिष्टता अद्वैतवादी, विशुद्धाद्वैतवादी, द्वैतवादी आदि सब श्रुतियों को आधार मानकर उन्हीं के बचनों को प्रमाण में लाते हैं, उसी प्रकार सूफियों ने कुरान के बचनों से अद्वैतवाद का बीज निकाला। जैसे 'अल्लाह के मुख के सिवाय सब वस्तुएं नाशवान (हालिक) हैं, चाहे तू जिधर फिरे अल्लाह का मुख उधर ही

पाएगा। चाहे जो हो कुरान का अल्लाह रूप 'पुरुष विशेष' सूफियों के यहाँ जाकर अद्वैत परमार्थिक सत्ता हुआ।

सूफी साधना में साधक को अपनी गंतव्य की प्राप्ति के लिए चार अवस्थाओं—शरीयत, तरीकत, मारिफत और हकीकत को पार करना पड़ता है। इन चारों अवस्थाओं को एक प्रकार से हमारे यहाँ के कर्मकाण्ड, उपासना काण्ड, ज्ञान काण्ड सिद्धावस्था का प्रतीक माना जा सकता है।

शरीयत—यह सूफी साधक की प्रथम अवस्था है, इसमें मुस्लिम और सूफी दोनों के क्रिया कलाप एक हैं। शरीयत के पालन से मुस्लिम में मोहब्बत का आविर्भाव होता है और उसी मोहब्बत की प्रेरणा से वह अलौकिक प्रियतम की खोज में निकल पड़ता है। इस अवस्था में उसे मोमिन (प्राणयी) की संज्ञा मिलती है। सबसे पहले तो अल्लाह के रास्ते में बाधक उन बातों 'मोमिन' को त्याग और पश्चाताप करना पड़ता है, इन्हें तौबा कहा जाता है। उन्हें इन बाधाओं से लड़ना पड़ता है, जों (जहद) कहलाती है। जब वह अपने प्रयत्न में सफल हो जाता है तब उसे 'सब्र' का सहारा लेना पड़ता है। अन्यथा उसमें गर्व का संचार हो जाता है और शैतान के पंजे में फंस जाता है अत: शैतान के भुलावे से बचने के लिए अल्लाह का शुक्र मानना पड़ता है। ईश्वर के आदेश (रिजाय) पर चलने के लिए उसे भय (खौफ) का होना आवश्यक है। ईश्वर से भयभीत रहने के साथ-साथ उसे ईश्वर पर आस्था भी रखनी चाहिए। और जीविका के फेर में इधर-उधर भटकना यानि तवक्कुल नहीं चाहिए उसे तटस्थ होकर ईश्वर का ध्यान यानि 'रंजा' करनी चाहिए। इस प्रकार निरंतर ध्यान और साधना (फिक्र) से उसमें अल्लाह की 'मोहब्बत' का जन्म होता है। प्रीति उत्पन्न होने से मोमिन या मुस्लिम सूफी (सालिक) बन जाता है और शरीयत से आगे बढ़कर तरीकत में प्रवेश करता है। इस प्रकार मुस्लिम को तसब्बुक के क्षेत्र में पदार्पण करने के लिए सामान्यत: तौबा, जहद, सब्र, शुक्र, रिजाय, खौफ, तबक्कुल, रजा, फिक्र और मोहब्बत का क्रमश: अनुष्ठान करना पड़ता है। कुछ लोग इन्हीं को मुकामात कहते हैं। ये मुकामात मुस्लिमों के हैं सूफियों के नहीं, क्योंकि सूफी मोहब्बत का अपना प्रेम-प्रस्थान समझते हैं, लक्ष्य नहीं।

तरीकत—यह मुस्लिम साधक की द्वितीय अवस्था और सूफी की प्रथम है। दूसरे शब्दों में इसे तसब्बुफ की शरीयत भी कही जा सकती है।[1] फिर तरीकत पर

---

1. तसब्बुफ अथवा सूफी मत, डा० चन्द्रवली पाण्डेय, पृ० 96।

चलने से जिस म्वारिफ का आविर्भाव होता है, उसमें चिन्तन का पूरा-पूरा योग है। म्वारिफ की दशा में जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह वासनात्मक न होकर प्रज्ञात्मक होता है। प्रज्ञात्मक होने के कारण उसको किसी अनिष्ट का भय नहीं रह जाता है। वह सत्य अनुभवी और मारिफत की अवस्था में पहुंच जाता है।

मारिफत—यह ज्ञानावस्था है। यहाँ तक पहुंचते-पहुंचते मुरीद परमसत्ता के आभास के साथ-साथ उसके रहस्यों की कुन्जी भी प्राप्त कर लेता है। इस अवस्था को 'हाल' की दशा भी कहा जाता है। सूफी की संज्ञा 'सालिक' से 'आरिफ' हो जाती है। यह अवस्था अल्लाह की अनुकम्पा का प्रसार है अत: वह बिना शरीयत, तरीकत और व्याकरण के बिना भी उत्पन्न हो सकती है।

हकीकत—इस अवस्था के उपरान्त हकीकत में प्रवेश करता है। हकीकत साधक की अनुभूति अवस्था है साधन नहीं। 'सालिक' सारी योजना इसी अनुभूति की उपलब्धि के लिए करता है। इस अवस्था में आकर साधक 'अन हलक' का उद्घोष करता है। परम सत्ता का वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर साधक ब्रह्ममय हो जाता है। यही फना की स्थिति है। इस अवस्था को 'मकाम' की संज्ञा भी दी गयी है। ध्याता, ध्यान और ध्येय की एकरूपता से भी ऊपर साक्षात्कार का आनन्द प्राप्त करके मनुष्य पूर्ण बन जाता है। उसकी आत्मा ईश्वर में निवास करने लगती है। यही सूफी का चरम लक्ष्य बढ़ा है। फना और 'बका' में अन्तर यह है कि 'फना' में साधक का अहम् भाव तिरोहित हो जाता है और 'वह' सब प्रकार के द्वन्दों से मुक्त होकर प्रीतम में लय हो जाता है जिसे बका की स्थिति कहते हैं। जायसी ने इन अवस्थाओं का उल्लेख 'अखरावट' में इस प्रकार किया है—

'कही 'तरीकत' चिसती पीरू, उधरित असरफ और जंहगीरू।
राह 'हकीकत' परै न चूकी, पैठि 'मारिफत' मार बुड़ की ॥'[2]

सूफी शरीअत को साधना की पहली सीढ़ी कहते हैं जिस पर पैर रखे बिना कोई आगे बढ़ नहीं सकता—

'सांची राह 'सरीअत' जेहि विसवास न होइ।
पांव रखे तेहि सीढ़ी, निभरम पहुंचे सोइ ॥[3]

2. 'अखरावट' पृ० 321।
3. जायसी ग्रन्थावली 'अखरावट', पृ० 322।

जायसी ने 'पद्मावत' की इस पंक्ति 'चारि बसेरे जो चढ़ै, सन्त सो उतरै पार' के 'चारि बसेरे' शब्द से सूफी साधना के इन्हीं चार पड़ावों—शरीअत तरीकत, मारिफत और हकीकत की ओर संकेत किया है।

सूफियों ने उपर्युक्त चारों अवस्थाओं के साथ-साथ चार लोकों की भी कल्पना की है। आत्मा और परमात्मा शब्द एवं अल्लाह की मीमांसा करते हुए हल्लाज ने 'नासूत' एवं लाहूत की कल्पना की है। हल्लाज के उपरान्त इमाम गज्जाली ने 'नासूत' के साथ 'मलूकत' और 'लाहूत' के साथ 'जबरूत' लोकों की कल्पना की। नासूत, मलूकत, जबरूत और लाहूत का स्वागत किया और किसी-किसी ने एक अन्य लोक 'हाहूत' की भी कल्पना कर डाली। सामान्यतः नासूत 'नर लोक' मलूकत (देव लोक) जबरूत (ऐश्वर्य लोक) एवं लाहूत (माधुर्य लोक) है। हाहूत को सत्य लोक कहा जा सकता है। साधक इन्हीं लोकों में विराम करता हुआ परब्रह्म में लीन होकर सांसारिक बन्धन से मुक्त हो जाता है। इस दृष्टि से इन लोकों की तुलना क्रमशः जाग्रति, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीयावस्था से की जा सकती है। हाहूत को तुरीयातीत कहा जा सकता है। 'मोमिन' प्रथमावस्था में 'शरीअत' के नियमों का पालन करते हुए 'नासूत' (नर लोक) में बिहार करता है, द्वितीयावस्था में मुरीद 'तरीकत का पालन कर मलूकत में विचरण करता है।' तृतीय अवस्था में 'सालिक' 'मारिफत' में आकर 'जबरूत' एवं लाहूत है। साधक इन्हीं लोकों में विराम करता हुआ परब्रह्म में लीन होकर पराकाष्ठा को प्राप्त करता है। कुछ लोग इसके भी आगे पहुंचकर 'हाहूत' (सत्यलोक) में बिहार करते हैं पर सामान्यतः सूफी हाहूत के कायल नहीं है।

सालिक को अपने लक्ष्य तक पहुंचने के लिए कतिपय भूमियों को पार करना पड़ता है इन भूमियों को सूफियों ने मुकामात की संज्ञा दी है। पीछे शरीअत में बताये गये मुकामात—जो 'तोबा' से प्रारम्भ होकर 'मोहब्बत' में समाप्त होते हैं सूफियों के वास्तविक मुकामात नहीं हैं। वे मुकामात उनके लिए ठीक है जो शरीबत के आधार पर अल्लाह की मोहब्बत चाहते हैं। सूफियों के लिए तो 'वस्ल' अथवा 'फना' जरूरी है। मोहब्बत का सामान्य सम्बन्ध नहीं। वस्तुतः सूफियों के 'मुकामात' आबूदिया इश्क, जहर, म्वारिफ, वज्द, हकीक, और वस्ल है। अब्द प्रियतम की खोज में शरीअत की मंजिल समाप्त कर लेता है। फिर आंशिक अपने माशूक को अपनाने के लिए अपनी चित्रवृत्तियों का निरोध (जेहाद) कर 'जहद' की भूमि पर पहुंच कर 'तरीकत' की दूसरी मंजिल (मारिफत) को समाप्त करता है। इस मुकाम पर उसे 'हक' का आभास तो मिल जाता है पर उसका संयोग नहीं मिलता, इसलिए वह कुछ और आगे बढ़कर 'वस्ल' की भूमि पर अपने प्रियतम का साक्षात्कार कर उसी के संयोग में निरत हो जाता है। अब उसे प्रियतम के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई देता, जहां तक कि उसका अहं भाव भी नहीं रह जाता और तब उसे शाश्वत 'वफा' का

आनन्द मिल जाता है, जो सूफियों का ध्येय है। डा० चन्द्रवली पाण्डेय का अभिमत है—'अब्द' को यदि सामान्य वाणी मान लें और 'बका' की परिस्थिति को 'फना' से सर्वथा भिन्न माने तो तसब्बुफ के 'मुकामात' क्रमश: इश्क, जब्द, म्वारिफ, बज्द, हकीकी, वस्ल एवं फना है।[4]

सूफियों की इस साधना परख यात्रा का विवरण निम्नांकित तालिका से कुछ अधिक सरलतापूर्वक समझा जा सकता है—

क्र० सं०	अवस्था	लोक	यात्रा की सं०	मुकामात		
				प्रारम्भ	मध्य	अन्त
1.	शरीअत	नासूत	मोमिन	अब्द	—	इश्क
2.	तरीकत	मलकूत	सालिक	इश्क	जहद	म्वारिफ
3.	मारिफत	जबरूत	आरिफ	म्वारिफ	वज्द	हकीक
4.	हकीकत	लाहूत हाहूत	हक	हकीक	वस्ल	नफा बका

जायसी के काव्य में इस सूफी-साधना का पूर्ण विवरण उपलब्ध होता है। जायसी की निम्नलिखित पंक्तियों में—

'सात खंड और चारि निसेनी, अगिम चढ़ाव पथ त्रिवेनी ॥'[5]

सात खंड सूफियों के सात मुकामात—अबूदिया, इश्क, जहद, मारिफ, वज्द, हकीकी और वस्ल या बका के प्रतीक है। तसब्बुफ में जिक्र की चार श्रेणियां मानी गई हैं—जिक्रे जली, जिक्र-खफी, जिक्रे लाइलाह और जिक्रे इल्लल्लाह। इनके माध्यम से सूफी ईश्वर का स्मरण करता है जायसी की उपर्युक्त पंक्ति में आये 'चारि निसेनी' शब्द में जिक्र इन्हीं चारो श्रेणियों की तरफ किया गया है। जो व्यक्ति सूफियों के इन सात मुकामातों को जिक्रे-जल, जिक्रे-खफी, जिक्रे-लाइल्ला और जिक्रे

---

4. तसब्बुफ अथवा सूफीमत, डा० चन्द्रवली पाण्डेय, पृ० 95।
5. जायसी ग्रन्थावली अखरावट, पृ० 320।

इल्लल्हाह के माध्यम से ईश्वर का स्मरण करता हुआ पार करता है, वह अन्त में लाहूत की अवस्था को प्राप्त कर परमात्मा के साथ 'एकमेक' की स्थिति को उपलब्ध कर लेता है।

हिन्दी के सूफी कवियों के नायक (साधक) इस सूफी साधना के मार्ग पर चलते हुए 'हकीकत' की अवस्था में पहुंचकर नायिका (परब्रह्म) को प्राप्त कर उसके साथ एकाकार हो जाते हैं और इस प्रकार उन्ह शाश्वत (बका) का आनन्द मिल जाता है। 'पद्मावत' के नायक रत्नसेन का सूफी साधना के मार्ग पर अग्रसर होने का दृष्टव्य है—

हीरामन सुआ (मुरसीद) उसके (रत्नसेन) के हृदय में इश्क की चिनगारी जागृत कर देता है और रत्नसेन 'साधक' मोहब्बत की प्रेरणा से नायिका (अलौकिक प्रियतम) की खोज में निकल पड़ता है। वह अल्लाह के रास्ते में बाधक नागमती, राज्यादि का त्याग कर देता है। यद्यपि उसकी पत्नी नागमती उसकी माता, भाई-बन्धु, प्रजा आदि उसके समक्ष अनेक बाधायें उपस्थित करते हैं। किन्तु वह इन बाधाओं का सामना (जहद) करते हुए अपने प्रयत्न में सफल होता है, वह सब्र का सहारा लिए हुए बैठा है। पद्मावती (परमात्मा) के निरन्तर ध्यान और फिक्र से उसमें उसकी (अल्लाह) की मोहब्बत का जन्म हो जाता है और वह मोमिन या मुस्लिम सूफी सालिक बन जाता है। उसमें ज्ञान का उदय हो जाता है—

'हिय कै जोति दीप वह सूझा, यह जो दीप अंधियारा बूझा।
उलटि दीठि माया सों रूठी, पलटि न फिरी जानि कै भूठी।।'[6]

रत्नसेन का पहला पड़ाव सागर तट पर होता है। इसे शरीअत कहा जा सकता है। रत्नसेन का यहां तक का मार्ग इतना कठिन नहीं है जितना कि दूसरी अवस्था 'तरीकत' में प्रवेश करते समय समुद्र की भीषणता और भयंकरता का पंथ—

'पै गोसाईं सन एक बिनाती, मारग कठिन जाब केहि भांती।
सात समुद्र असूझ अपारा, मारहिं मगरमच्छ धरि आरा।।
उठै लहरि नहिं जाइ संभारी, भागहि कोइ निबहै बैपारी।
खार, खीर, दधि, जल उदधि, सुर किलकिला अकूत।।
को चढ़ि नाघै समुद्र ए, हैकाकर अस बूत।'[7]

---

6. जायसी ग्रन्थावली प्रेमखण्ड, पृ० 51।
7. वही, राजा गणपति संवाद, पृ० 59।

रत्नसेन प्रेमपंथ का एक सत्यनिष्ठ प्रेमी है। वह यात्रा की कठिनाइयों से झूझता हुआ 6 सागरों को पार करके सातवें समुद्र के पास पहुंचता है। यहां से उसकी तीसरी यात्रा (मारिफत) प्रारम्भ होती है—

> **'सतएं समुद्र मानसर आये, मन जो कीन्ह साहस सिधि पाये।**
> **देखि मानसर रूप सोहावा, हिय हुलास पुरइनि होइ छावा।**
> **गा अंधियार, रैन-मसि छूटी, भा भिनसार किरिन-रवि फूटी।।'[8]**

मारिफत की इस अवस्था में पहुंचकर मुरीद को परम सत्ता का आभास मिलता है वह महादेव के द्वारा परमात्मा को प्राप्त करने के रहस्य की कुंजी प्राप्त कर लेता है।[9] इस प्रकार अब उसे 'सालिक' से 'आरिफ' की दशा उपलब्ध हो जाती है।

'म्वारिफ' के मुकाम से 'आरिफ' (रत्नसेन) और आगे बढ़ता है गंधर्वसेन के नागफांस डलवाने पर भी उसके मन में कोई हर्ष या विषाद की भावना नहीं उत्पन्न हुई। उसे सत्य (वज्द) की झलक मिलने लगती है। वह कहता है कि अब मैं—मैं करता हुआ धोखे में था परन्तु अब जब मैं सिद्ध हो गया अर्थात् मुझे पूर्ण ज्ञान हो गया तो मेरा 'अहंभाव' समाप्त हो गया और मेरी समझ में आया कि मैं (रत्नसेन अर्थात् जीवात्मा) पद्मावती (परब्रह्म) की परछाई मात्र था। मेरा अस्तित्व उसी के कारण था, यह ज्ञान होते ही 'अहंभाव' तिरोहित हो गया अर्थात् जीव ब्रह्म की छाया है यह द्वैत भावना न रह कर अद्वैत भावना आ गयी।[10]

इसी प्रकार रत्नसेन (आरिफ) 'हकीक' के मुकाम पर तृतीय मंजिल (मारिफत) को समाप्त करता है। इस मुकाम पर उसे 'हक' का आभास तो मिल जाता है पर उससे संयोग नहीं हो पाता। आगे चलकर महादेव की सहायता से 'पद्मावती' (परब्रह्म) की प्राप्ति हो जाती है। वह वस्ल के मुकाम पर परमब्रह्म का साक्षात्कार कर उसी के संयोग में निरत हो जाता है। इस प्रकार फना के मुकाम पर रत्नसेन अपनी यात्रा समाप्त करता है इस अवस्था में आकर उसे शाश्वत बका का आनन्द मिल जाता है, जो सूफी साधना का चरम लक्ष्य है। सूफी साधना में भावाविष्टावस्था (हाल) का एक महत्वपूर्ण स्थान है 'हाल' साधक की बेसुध अवस्था का प्रतीक है जायसी ने पद्मावत में नायिका पद्मावती (परब्रह्म) के गुण-श्रवण द्वारा नायक रत्नसेन (जीवात्मा) का जो मूर्छित होना दिखाया है वह इसी

---

8. वही, सात-समुद्र खण्ड, पृ० 67।
9. जायसी ग्रन्थावली, पारवती-महेश-खण्ड, पृ० 93।
10. वही, गन्धर्वसेन-मैत्री-खण्ड, पृ० 105।

'हाल अवस्था' का प्रतीक है। इसके अतिरिक्त सूफी-साधना के अन्य प्रतीकों को भी सूफियों ने ग्रहण किया है। जैसे पद्मावत में स्वर्ग में बहने वाली नदियां और स्वर्ग के तूबा वृक्ष को प्रतीक माना है। सूफियों का विश्वास है कि स्वर्ग आठ हैं जिनमें सबसे भीतरी और सबसे ऊंचा स्वर्ग 'जन्नतेअदन' है।

इसी प्रकार इस्लाम धर्म में बताया गया है कि कियामत के दिन सब जीवों को 'पुलेसरात' पार करना पड़ेगा यह पुलेसरात पूर्णयात्माओं के लिए खास चौड़ा और पापियों के लिए बाल बराबर पतला हो जायेगा। पुलेसरात के मार्ग पर पापी और पुण्यात्मा का पता चलता है जिन्होंने संसार में पुण्य एवं धर्म किया है वे क्षण-मात्र में ही उस पुल को पार कर लेते हैं—

'जो धरमी होइहि संसारा, चमकि बीजु अस जाइहि पारा ॥'

किन्तु जो पापी हैं, उनमें से बहुत तो उस नर्क में गिर जाते हैं और बहुत से रक्तपीत में पड़ जाते हैं—

'बहुतक नरक-कुण्ड मंह गिरहीं, बहुतक रक्तपीव मंह परहीं ॥'[11]

पद्मावत के 'सात-समुद्र-खण्ड' में वर्णित किलकिला समुद्र इसी 'पुलेसरात' के प्रतीक के रूप में हैं इसे पार करने में वही समर्थ हो पाता है। जो अति धर्मात्मा एवं पूर्णयवान होता है इस समुद्र का वर्णन कवि ने 'पुलेसरात' की भांति ही किया है—

'एहि किलकिला समुद्र गंभीरू, जेहि गुन होई सो पावै तीरू।
इहै समुद्र-पंथ मझधारा, खाड़े के असि धार निनारा ।।
तीस सहस्त्र कोस कै पाटा, अस साँकर चलि सकै नचाँटा।
खाड़े चाहि पैनि बहुताई, बार चाहि ताकर पतराई ।।
एही ठांव कहं गुरु संग लीजिए, गुरु संग होइ पाइ पार तो कीजिए।
मरन जियन एही पर्थाहि, एही आस निरास।
परा सो गये पतारहिं, तरा सो गा कविलास ।।[12]

आखिरी कलाम में विशेष रूप से इस्लामी मजहब के हश्र (प्रलय) के दिवस की कहानी है। जायसी ने अपने इस कलाम में पाक, कुरान और इस्लाम की

---

11. जायसी ग्रन्थावली—'आखिरी कलाम' पृ० 349।
12. जायसी ग्रन्थावली, सात समुद्र खण्ड, पृ० 66।

ईमानी सिद्धान्त-ग्रन्थों का सहृदय प्रतिपादन किया है साथ ही सूफी सिद्धान्त और मुस्लिम एकेश्वरवाद का स्वरूप निर्धारण भी।

'अखरावट' में सृष्टि की उत्पत्ति, शरीर रचना आदि विषयों पर भी विचार व्यक्त हुए हैं 'कुरान' में सृष्टि के सम्बन्ध में कहा गया है कि परमात्मा ने 6 दिनों में सृष्टि का निर्माण किया। एक प्रकार के वाष्प से सब कुछ ढका था। उस वाष्प से परमात्मा ने जल, धरती, पर्वत और फिर जीवधारियों की सृष्टि की; सबसे अन्त में शुक्रवार को आदम और होवा की रचना की। अल्लाह ने नूर (ज्योति) से देव दूतों की सृष्टि की। इनका स्थान पैगम्बरों के बाद माना गया है। इन देव दूतों में 'इब्लीस' नामक एक देव दूत था जिसका कार्य लोगों को अच्छे मार्ग से बहकाना था। कहा जाता है कि वह अल्लाह का प्रिय था। अल्लाह ने जब आदम को बनाया तो सभी देवदूतों को उसके सामने झुकने का आदेश दिया पर इब्लीस ने उनकी आज्ञा की अवहेलना की जिससे चिढ़कर ईश्वर ने उन्हें स्वर्ग से निकाल दिया। इस प्रकार इब्लीस को शैतान की संज्ञा मिली आदम और हौवा को उसी ने स्वर्ग से वंचित कराया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त सूफी सिद्धांत जो कि इस्लाम धर्म के प्रमुख तत्व हैं। उनमें से सूफियों ने बहुत कुछ लिया है अर्थात् सूफी प्रेमाख्यानों की आत्मा सूफी सिद्धान्त और इस्लाम धर्म ही है। तथा उनका कलेवर भारतीयता से ओत-प्रोत है। आत्मा और कलेवर में सूफियों ने समन्वय इसलिए किया कि वह हिन्दू और मुसलमान के भेदभाव को समाप्त कर एक दूसरे को धर्म की ओर आर्कषित करना चाहते थे।

'पद्मावत' ने रानी पद्मावती की कहानी भारतीय लोक-जीवन की अत्यन्त प्रिय कहानी है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस कहानी की परम्परा और भी प्राचीन है 'कथा साहित्य सागर से' आज तक पद्मावती की कथा लोक कंठ में बसती और साहित्य में समाहित होती चली आई है। लगभग सम्पूर्ण उत्तर भारत में यह कथा कई ढंग से कही जाती है। इसी प्रकार मृगावती में 'कुतबन' ने रानी मृगावती और राजकुंवर की कहानी को विशुद्ध भारतीय प्रेम से परिपूरित कर लिखा है। आलमकृति माधवानल-कामकंदला को एक महत्वपूर्ण सूफी ग्रन्थ माना गया है। अन्य सूफी प्रेमाख्यानों के नायक और नायिका जब कि प्रेम की पीर में मूर्छित होते दिखाए जाते हैं, तब इस काव्य में नायक-नायिका का पारस्परिक प्रेम अनन्यता और तन्मयता के उस उच्च धरातल पर पहुंच गया है जहां एक के बिना दूसरे की स्थिति ही असम्भव हो जाती है। माधवानल और काम कुंदला एक-दूसरे की मृत्यु समाचार सुनते ही प्राण त्याग देते हैं। इस काव्य में प्रेम और विवाह की उत्कृष्टता का शुद्ध भारतीय रूप में मार्मिक चित्रण किया है। इसके अलावा उसमान कृत चित्रावली, शेखनबी कृत ज्ञानदीप, जानकवि कृत लैला-मजनू आदि सभी प्रेमाख्यानों

की आत्मा तो इस्लामिक है पर उसका कलेवर भारतीय प्रेम कथाओं से ओत-प्रोत है। इन सभी सूफी कवियों ने अपने काव्यों में अवधी भाषा का प्रयोग किया है। कुछ सूफी कवियों ने ब्रज भाषा का भी कहीं-कहीं प्रयोग किया है। सूफी कवियों की लोक दृष्टि बड़ी सजग थी। अपने आस-पास के विस्तृत वातावरण से कहीं पर अदृश्य की निराधार विस्तृत कल्पना इन कवियों ने नहीं की है। इनकी रचनाओं में भारतीय जीवन एवं संस्कृति का बड़ा सजीव चित्रण हुआ है। प्रकृत्ति चित्रण के अन्तर्गत भी भारतीय प्रकृति-छटा के ही दृश्य है। षट्-ऋतु एवं बारहमासे के वर्णन में भारतीय गार्हस्थ जीवन की समस्याओं एवं प्रकृति के उपकरणों का चित्रण है। भारतीय सामाजिक जीवन के आनन्दोल्लास एवं मर्यादा के प्रतीक त्योहारों, उत्सवों सामाजिक रीतियों एवं संस्कारों का वर्णन भी इन प्रेमाख्यानों में यत्र-तत्र प्राप्त होता है। छठीं, नामकरण, लग्न-विचार, पार्टी-पूजन, सगाई, व्याह (भांवर) लहकौर एवं सुहागरात तथा अन्त में निधन एवं सती होने का वर्णन इन कवियों ने अत्यन्त सजीव एवं मार्मिक किया है। माता-पिता की सेवा, स्त्री का समाज में स्थान, श्वसुर-गृह का भय आदि भारतीय सामाजिक समस्याओं पर भी इन कवियों ने अपने विचार प्रकट किए हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों को देखने से यह ज्ञात होता है कि सूफियों ने अपने ग्रंथों में कथानक, पात्र और चरित्र चित्रण, प्राकृतिक वर्णन सभी में भारतीय जन-जीवन की झलक को प्रस्तुत किया है। सूफी प्रेमाख्यानों में भारतीय प्रबन्ध काव्य की शैली और फारसी मसनवी शैली दोनों का सामंजस्य दिखाई पड़ता है। एक तरफ तो इन्होंने अपभ्रंश से प्रयोग में आती हुई चरित्र-काव्यों की रचना-शैली से प्रभावित होकर दोहा-चौपाई वाली भारतीय पद्धति को अपनाया और दूसरी ओर फारसी-काव्य के अनुकरण पर कतिपय अभारतीय विषयों को भी अपनी रचना में स्थान दिया। फारसी मसनवी-शैली से प्रभावित होकर उन्होंने अपनी कथा का विभाजन सर्गों तथा अध्यायों में न करके प्रसंग गत शीर्षकों द्वारा द्वारा विविध खंडों में किया है। फारसी मसनवी-शैली के अनुसार ही इन सूफी काव्यों के आरम्भ में सृष्टि-रचना के इस्लामी-क्रम अल्लाह और रसूल की स्तुति तथा तत्कालीन बादशाह की प्रशंसा को स्थान दिया। सूफी काव्यों में भारतीय कवियों के भाव ज्यों के त्यों पाए जाते हैं—

थल-थल नग न होहि जेहि जोती, जल-जल सीप न उपनहिं मोती।
बन-बन बिरिछन चन्दन दोई, तन-तन बिरहन उपने सोई ।।[13]

यह चाणक्य के इस श्लोक का हिन्दी रूप है—

---

13. जायसी गन्थावली पद्मावती-रत्नसेन मेर खण्ड-पृष्ठ 136।

'शैले-शैले न माणिक्यं, मौक्तिकं न गजे-गजे ।
साधको न हि सर्वत्र, चन्दन न बने-बने ।।'

अतः भारतीय कलेवर से ओत-प्रोत सूफियों के काव्य-प्रबन्ध ने अपनी प्रसिद्ध को उच्च कोटि तक पहुंचाया । इस्लाम धर्म तथा सूफी सिद्धान्तों को काव्य आत्मा बनाई जिससे कुछ अड़चने आयी पर समन्वयात्मक सूफी प्रेमाख्यानों ने विजय पताका को लहराया । इस प्रकार सूफी-काव्य ग्रंथों की आत्मा और शरीर एक दूसरे में समाहित हो गए ।

सूफियों का कलेवर केवल भारतीय है ऐसी बात नहीं, उनका शृंगार-वर्णन भारतीय साहित्य परम्परा और भारतीय वातावरण के अनुकूल है । यहाँ के काव्य-शास्त्रियों द्वारा पूर्व राज की उत्प्रेरित गुण-श्रवन, चित्र-दर्शन, स्वप्न दर्शन तथा प्रत्यक्ष दर्शन ऐ स्वीकार की गई है । सूफी काव्यों में उक्त चारों कारणों की यत्र-तत्र चर्चा की गई है । गुण श्रवणादि से नायक का मूर्छित हो जाना सूफी संस्कारों का अतिरेक मात्र है—'प्रेमिका की प्राप्ति के लिए नायक का प्रयत्नशील होना, केवल फारसी के मसनवी, काव्यों का ही विशिष्ट गुण नहीं है, भारतीय प्रेमाख्यानों में भी प्रिया की प्राप्ति के लिए नायक को प्रयत्नशील दिखाया गया है । बाण की कादम्बरी, तथा सुबन्धु की नामकदत्ता इसके प्रत्येक उदाहरण हैं ।'[14]

इस प्रकार स्पष्ट है कि जहां कथाक्षेत्र में सूफियों ने भारतीय और मसनवी शैली में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया है उसी प्रकार भावपक्ष में भी यह परिलक्षित होता है । इतना अवश्य स्वीकारा जा सकता है कि जहां प्रेम का उन्माद, जुगुप्सा तथा पीड़ा का मादक भाव हो वहाँ पर फारसी साहित्य की ही मादक प्रकृति प्रभावशाली प्रतीत होती है । संक्षेप में कहा जा सकता है कि कथा की शैली, भाषा, छन्द, वर्णन-वैचित्र्य कौतूहल आदि की दृष्टि से इन काव्यों में मसनवी शैली का प्रभाव पड़ा है, किन्तु यह भारतीयता की क्रोड में है । डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार—'वस्तुतः इनमें भारतीय काव्य शैली और मसनवी शैली का सुन्दर सामंजस्य किया है ।'[15]

कथानक में इतिहास और कल्पना का समन्वय

हिन्दी सूफी काव्यों में दूसरा साहित्यिक समन्वय इतिहास और कल्पना का हुआ है । जायसी के अलावा अन्य सभी हिन्दी-सूफी कवियों का काव्य कल्पना पर ही आधारित है । हिन्दी के सूफी कवियों ने कल्पना के आधार पर प्रेम-कथा लिखकर

---

14. हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियां, डा० शिवकुमार शर्मा, पृष्ठ 190 ।
15. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ 448 ।

अपने सिद्धांतों का प्रकाशन किया है, किन्तु सूफी कवियों ने ऐतिहासिक कथानकों को आधार बनाकर उसमें अपनी कल्पना का पुट देकर इतिहास और कल्पना का मणि-कंचन संयोग प्रस्तुत किया है।

'पद्मावत' की कथा का विभाजन दो भागों में किया जा सकता है—पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। रत्नसेन की सिंहलद्वीप की यात्रा से लेकर चित्तौड़गढ़ लौटने तक की पूर्वार्द्ध के अन्तर्गत आती है और राघव चेतन के निकाले जाने से लेकर 'पद्मावती' के सती होने तक की कथा उत्तरार्द्ध के अन्तर्गत। इन दोनों भागों में पूर्वार्द्ध कल्पित है और उत्तरार्द्ध इतिहास पर आधारित है।

भारतवर्ष के सूफी कवियों ने लोक जीवन तथा साहित्य में प्रचलित निर्जधरी कथाओं के माध्यम से अपने आध्यात्मिक सन्देशों को जनता तक पहुंचाने के प्रयत्न किए हैं 'कुतबन' ने अपनी 'मृगावती' में लिखा है कि यह कथा पहले से ही चली आ रही थी। इसमें योग, श्रृंगार और विरह रस वर्तमान थे मैंने दुबारा फिर उसी कथा को लिपिबद्ध किया है। कुतबन का यह दावा अवश्य है कि पहले से ही प्रचलित कथा के अर्थ को उन्होंने नये सिरे से स्पष्ट किया है—

'पुनि हम खोलि अरथ सब कहा ।।'[16]

इसी प्रकार का एक अन्तः साक्ष्य 'पद्मावत' में भी प्राप्त होता है जो इंगित करता है कि पद्मावती की कहानी जायसी की निजी कल्पना की उपज नहीं है। अपितु यह कहानी आदि से अन्त तक जैसी उन्हें प्राप्त हुई, तदनुरूप उन्होंने उसे काव्यबद्ध कर दिया—

सिंहल दीप पदमिनी रानी। रतनसेन चितउर गढ़ जानी ।।
सुना साहि गढ़ छेंका आई । हिन्दू तुरुकन्ह भई लराई ।।
आदि अन्त जस गाथा अहै। लिखि भाषा चौपाई कहै ।।[17]

अन्तिम दो अर्द्धालियों से स्पष्ट है कि यह कहानी अर्थात् सिंहल की पद्मिनी रानी की कहानी जायसी ने 'सुनी' थी। कहानी का आद्यापांत जैसा रूप रहा है, तद्नुरूप भाषा चौपाई में निबद्ध करके उपस्थित कर दिया है। पं० चन्द्रवली पाण्डेय के मतानुसार जायसी का वह दावा है कि पद्मावती की कथा इस पूर्ण और अत्यन्त प्राचीन थी। काव्यबद्ध करने का प्रथम श्रेय जायसी को ही है। पाण्डेय जी अपने की पुष्टि निम्नलिखित उद्धरण से करते हैं—

---

16. हिन्दी साहित्य डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 262।
17. जायसी ग्रंथावली, (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी) पृष्ठ 9।

कवि वियास केवला रस पूरी । दूरि सो नियर नियर तो दूरी ।।
नियरे दूर फूल जस काँटा । इरि सो नियरे जस गुड़ चांटा ।।
भंवर आइ बन खंड सन लेइ केवल के वास ।
दादुर खास न पावई, भले हि जो आछे पास ।।[18]

कवि इस के द्वारा कि भारतवर्ष में एक से एक बढ़कर कवि हुए हैं। यह कथा भी रस से भरी पड़ी है पर किसी भी कवि कि हिम्मत इसे काव्य रूप देने की नहीं हुई। यह कार्य तो मुझे जैसे अहिन्दू से बन पड़ा।[19] इस प्रकार जायसी ने इस कहानी को अपनी पूर्ववर्ती पद्मावती रानी की साहित्यिक कहानी तथा लोक-प्रचलित कहानी की परम्परा से ग्रहण करके विकास तथा काव्य सौन्दर्य प्रदान किया है।

ऐतिहासिक आधार

'पद्मावती' की कथा को एनकेन प्रकारेण इतिहासकारों ने प्रमाणिक सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। 'पद्मावत' आधुनिक काल के ऐतिहासिक उपन्यासों की-सी कविताबद्ध कथा है। कर्नल टांड, फरिश्ता, आइने अकबरी आदि की पद्मावती विषयक कहानी मूलाधार 'पद्मावत' ही है। यह कथा इतनी लोकप्रिय हुई कि इतिहास के अभाव में उसी को इतिहास मान लिया गया। ऐतिहासिक अंश के स्पष्टीकरण के लिए कर्नल टाड के कथन का सारांश इस प्रकार है—

'विक्रम संवत 1331 में लखमसी चित्तौड़ की गद्दी पर बैठा। उसके चालक होने के कारण उसका चाचा भीमसी उसका रक्षक बना। भीमसी ने सिंहल द्वीप के राजा हम्मीर सिंह चौहान की पुत्री पद्मिनी से विवाह किया, जो बड़ी ही रूपवती और गुणवती थी। अलाउद्दीन ने उसके लिए चढ़ाई कर दी। परन्तु उसमें सफल न होने से केवल पद्मिनी का मुख देखकर लौटना चाहा और अन्त में दर्पण में उसका प्रतिबिम्ब देखकर लौट जाना तक स्वीकार कर लिया···किले के बाहर···भीमसी छल से पकड़ लिया गया···गोरा और बादल की संगति से एक ऐसी युक्ति निकाली गई।···सात सौ डोलियां तैयार की गई। कहारों के वेश में कई राजपूत भीमसी की डोली में बैठाकर चल दिए···राजपूतों ने युद्ध छेड़ दिया।···अलाउद्दीन ने फिर चित्तौड़ घेरा······लौट गया। पश्चात् नई सेना के साथ दूसरी बार फिर चढ़ आया। राजपूतों ने विवश होकर जौहर व्रत में रमणियों को अग्नि के मुख में अर्पण

---

18. जायसी ग्रंथावली (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी) पृष्ठ 9।
19. वही पृष्ठ 9।

किया । अर्गला का उद्घाटन किया और वे मुसलमानों पर टूट पड़े । अलाउद्दीन ने चित्तौड़ को आधीन कर लिया, परन्तु जिस पद्मिनी के लिए उसने इतना कष्ट उठाया था, उसकी तो चिता की अग्नि ही उसके नजर आई ।[20]

टांड ने जो वृत्त दिया है वह राजपूताने में रक्षित चारणों के इतिहासों के आधार पर है । दो चार ब्योरों को छोड़कर ठीक यही वृत्तांत 'आइने अकबरी' में दिया हुआ है । आइने अकबरी में भीमसी के स्थान पर रतन सी (रत्नसिंह या रत्नसेन) नाम है । रतनसी को मारे जाने का ब्यौरा दूसरी तरह से है ।

कल्पना का समन्वय—इन दोनों ऐतिहासिक वृत्तों में जब हम जायसी कथा का मिलान करते हैं तो कुछ तथ्य तो ऐतिहासिक है और कुछ कल्पित है । जैसे 'रत्नसेन' नाम कल्पित नहीं है, दूसरा जायसी ने रत्नसेन का मुसलमानों के हाथ से मारा जाना न लिखकर जो देवपाल के साथ द्वंद्वयुद्ध में कुभलनेरगढ़ के नीचे मारा जाना लिखा है । उसका आधार धोखे के साथ बादशाह से मिलने जाने वाला वह प्रवाद है जिसका आइने-अकबरी में उल्लेख किया है ।

काव्योपयोगी स्वरूप को देने के लिए कवि ने कथा के ब्योरों में थोड़ा फेर बदल किया है । कल्पना पात्र के रूप में सर्वप्रथम राघव चेतन मिलता है । इसके उपरान्त चित्तौड़गढ़ घेरने पर अलाउद्दीन से सन्धि की जो शर्त (समुद्र से पाई हुई पांच वस्तुओं को देने की) पेश की गई वह कल्पित है इतिहास में दर्पण के बीच पद्मिमनी की छाया देखन की शर्त प्रसिद्ध है । पर दर्पण में प्रतिबिम्ब देखने की बात अचानक घटना के रूप में वर्णित है, क्योंकि रत्नसेन जैसे पुरुषार्थी व्यक्ति के लिए पद्मिनी की छाया दूसरे को दिखाने पर स्तम्भ होना शोभा नहीं देता है अतः यह भी कवि की कल्पना है । एक परिवर्तन कवि ने यह किया है कि—अलाउद्दीन के शिविर में बंदी होने के स्थान पर रत्नसेन का दिल्ली में बंदी होना लिखा है । रत्नसेन को दिल्ली भेजने से कवि को जोगिन और दूती और वृत्तांत, रानियों के विरह और विलाप तथा गोरा बादल के प्रयत्न विस्तार पूरी आजादी मिल गयी थी । इस आजादी में जायसी ने पद्मिनी के सतीत्व की मनोहर व्यंजना के अनन्तर बालक बादल का वह क्षत्रिय तेज तथा कठोर कर्त्तव्यनिष्ठा दिव्य और मर्मस्पर्शी दृश्य दिखाया है । देवपाल और अलाउद्दीन का दूती भेजना और बादल तथा उसी स्त्री का संवाद इसी निमित्त कल्पित किए हैं । देवपाल भी कल्पित पात्र है ।

डा० रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार—पद्मिनी रानी का सिंहल का होना भी सन्देह जनक है । क्योंकि यदि 'सिंहल' नाम सही माने तो वह राजपूताने या गुजरात का कोई स्थान होगा । न तो सिंहलद्वीप में चौहान आदि राजपूतों की बस्ती का

---

20. राजस्थान, टाड, जिल्द 1, पृ० 307-11 ।

कोई पता है न इधर हजार वर्ष से कूप-मंडूक बने हुए हिन्दुओं के सिंहल द्वीप में जाकर विवाह सम्बन्ध करने का । दुनिया जानती है कि सिंहल द्वीप के लोग (तमिल और सिंहली दोनों) कैसे काले-कलूटे होते हैं । वहां पर पद्मिनी स्त्रियों का पाया जाना गोरखपन्थी साधुओं की कल्पना है ।[21]

पद्मावत की पूर्वार्द्ध कथा के सम्ब्रन्ध में एक और प्रश्न यह होता है । कि वह जायसी की कल्पना है अथवा जायसी के पहले से कहानी के रूप में जन-साधारण के बीच प्रचलित चली आती है । उत्तर भारत में, विशेष रूप से अवध में, 'पद्मिनी' 'रानी और हीरामन सूए' की कहानी अब तक उसी रूप में कही जाती है जिस रूप में जायसी ने वर्णित किया है । जायसी इतिहास विज्ञ थे इससे उन्होंने रत्नसेन, अलाउद्दीन आदि नाम दिए हैं, पर कहानी कहने वाले नाम नहीं लेते है कि 'एक राजा था' 'दिल्ली का एक बादशाह था' इत्यादि । यह कहानी गाकर कही जाती है । जैसे—राजा की पहली रानी जब दर्पण अपना मुंह देखती है तब सूए से पूछती है—

'देश देस तुम फिरौ ही सुअरा । मोरे रूप और कहु कोई !।

सुआ उत्तर देता है—

काह बखानों सिंहल कै रानी । तोरे रूप भरे सब पानी ।।

इसी प्रकार 'बाला लखन देव' आदि की रसात्मक कहानियां अवध में गा-गाकर कही जाती है ।

रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं कि जायसी ने प्रचलित कहानी को ही लेकर सक्ष्म ब्योरों की मनोहर कल्पना करके उसे काव्य का सुन्दर स्वरूप दिया है । इस मनोहर कहानी को कई लोगों ने काव्य के रूप में बांधा । हुसैन गजनवी से 'किस्सए पद्मावत' नाम का एक फारसी काव्य लिखा । सन् 1652 ई० में राय गोविन्द मुन्शी ने पद्मावती की कहानी फारसी गद्य में 'तुकफतुल कुलूब' के नाम से लिखी । उसके पीछे मीर जियाउद्दीन 'अव्रत' और गुलाम अली 'इंशरत' ने मिलकर सन् 1796 ई० में उर्दू शेरों में इस कहानी को लिखा । यह माना जाता है कि मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी 'पद्मावत' सन् 1520 ई० में लिखी ।

इसी प्रकार और भी सूफी कवियों ने भारतीय नायक नायिकों को लेकर अपने प्रेमाख्यानों को काव्यबद्ध किया है लेकिन उन्होंने कहानी तो ऐतिहासिक ली है पर उसमें अपनी कल्पना शक्ति का पूरा-पूरा प्रयोग किया है ।

---

21. जायसी ग्रंथावली—रामचन्द्र शुक्ल, पृ० 24 ।

भाषा और लिपि में समन्वय

सूफी कवियों ने अपनी भाव-लड़ियों को गूंथने के लिए तथा प्रेम-पीर की मार्मिक अभिव्यंजना के लिए बोलचाल की भाषा अवधी को ही उपयुक्त समझा। पर चूंकि फारसी लिपि और अवधी भाषा का सुन्दर ताल-मेल सूफी काव्यों में हुआ है इसी कारण हम लिपि और भाषा को अलग-अलग नहीं कर पाते हैं।

यद्यपि सूफी काव्यों में प्रयोग की गई अवधी संस्कृत के तत्सम शब्दों तथा कोमलकान्त पदावलियों से अलंकृत नहीं है, फिर भी वह तत्कालीन बोलचाल की अवधी भाषा की स्वाभाविक विशेषताओं से मंडित है। सूफी काव्यों की अवधी भाषा पूर्णतः परिकृत, साहित्यिक तथा संस्कृतनिष्ठ नहीं है फिर भी उसका लालित्य तथा माधुर्य हृदय ग्राही है। सूफी कवियों ने बोलचाल की अवधी भाषा में सहज, सरल, किन्तु गूढ़, गम्भीर, अर्थपूर्ण और समर्थ व्यंजनाएं की हैं। 'पद्मावत' में तत्कालीन अवधी भाषा का रूप सुरक्षित रूप में मिलता है इसलिए डा० श्याम सुन्दर दास ने पद्मावत की अवधी की प्रामाणिक अवधी भाषा कहना युक्तिसंगत कहा है। भाषाशास्त्र के वैज्ञानिक अध्ययन के दृष्टिकोण से भी 'पद्मावत' की भाषा का महत्व है। क्योंकि पद्मावत 16वीं शती में अवध प्रान्त में प्रचलित भाषा के समझने का अत्यन्त उपयुक्त माध्यम है।[22] डा० ग्रियर्सन ने ठीक ही कहा है, 'पद्मावत' 16वीं सती में बोली जाने वाली अवधी का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत करता है।[23]

सूफी कवियों ने अपने प्रेमाख्यानों में प्रेम पीर की मार्मिक अभिव्यंजना और काव्याभिव्यक्ति के लिए अवध की बोली को ही चुना। सूफी काव्यों में, शब्द कोश, उसमें प्रयुक्त मुहावरे, लोकोक्तियां 'सूक्तियां' आदि सामूहिक रूप से 16वीं शताब्दी के प्रचलित बोलचाल की भाषा का ही रूप प्रकट करती हैं। इनकी भाषा में संस्कृत बाहुल, कोमलकान्त पदावली का आग्रह नहीं है उसमें तो हमें लोकवाणी की ताजगी, स्वाभावकता तथा मिठास प्राप्त होती है।

जायसी के पद्मावत की भाषा अवध के तत्कालीन जनसाधारण की भाषा है, किन्तु जायसी ने अपनी प्रेम-पीर की अभिव्यंजना के लिए अपने प्रेम भक्ति के उपदेशों के लिए तथा अपनी काव्य साधना में सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए उसमें अपेक्षित संवार श्रृंगार तथा परिष्कार किया है। 'वे अपने उपदेशों को साधारण

---

22. डा० श्यामसुन्दर दास और सत्यजीवन वर्मा, संक्षिप्त पद्मावत।
23. सर चार्ज ग्रियर्सन, पद्मावती, भूमिका।

जनता के बीच फैलाने का प्रयत्न कर रहे थे। इस कारण उनकी भाषा जनसाधारण की परिष्क्रित भाषा थी। इनका यही महत्व है।[24]

डा० बाबूराम सक्सेना ने अवधी के विकास पर प्रकाश डालते हुए इन्होंने लिखा है कि हिन्दी भाषा की चार प्रधान उपभाषाएं हैं। इन चार उपभाषाओं के पूर्वी हिन्दी भी एक उपभाषा है। पूर्वी हिन्दी का विकास प्राचीन अर्द्धभाग भी प्राकृत से हुआ है। पूर्वी हिन्दी की दो प्रमुख बोलियां हैं—अवधी और छत्तीसगढ़ी।[25]

डा० रामकुमार वर्मा तथा सूर्यकाल शास्त्री के शब्दों में हम कह सकते हैं कि 'सूफी प्रेमकाव्यों की लोकप्रियता इसमें भी है कि उसमें उस समय की अवधी का जन बोली वाला रूप सुरक्षित है। इस अवधी में संस्कृत के तद्भव रूप तथा फारसी के शब्दों का भी थोड़ा पुट यत्र-तत्र प्राप्त होता है।[26] सूफी कवियों की भाषा में समर्थ भाषा के सभी गुण उपलब्ध हैं। इस सम्बन्ध में पद्मावत के लब्ध प्रतिष्ठित भाष्यकार डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के निम्नलिखित शब्द उल्लेख्य हैं।' पद्मावत की भाषा ऊपर से देखने पर बोलचाल की देहाती अवधी कही जाती है, किन्तु वस्तुतः वह अत्यन्त प्रौढ़ और अर्थ सम्पत्ति से समर्थ शैली है अनेक स्थलों पर जायसी और अन्य सूफी कवियों ने ऐसी श्लेषात्मक भाषा का वर्णन किया है, जिसके अर्थ लगातार कई दोहों तक एक से अधिक अर्थों में पूरे उतरते हैं।[27] डा० वासुदेव शरण जी अनेक लेखों में और पद्मावत की ठीका में भाषा-शक्ति की प्रशंसा करते हुए अघाते नहीं। भाषा समर्थता के उदाहरण के लिए एक उदाहरण लिया जा सकता है।

> **बरसो मेह चुर्वाहं, नैनाहा। छपर छपर होइ रहि बिनु नाहा।[28]**
> **'बरसे नैन चुर्वाह घर मांहौ'**

ठेढ़ अवधी भाषा के बोलचाल के इन शब्दों में श्लेष के माध्यम से जो समर्थता और चमत्कार शक्ति भर दी गई है, वह प्रभु विष्णु और हृदय स्पर्शी हैं।

---

24. हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य, डा० कमल कुलश्रेष्ठ, पृ० 368।
25. बाबूराम सक्सेना, ने अवधी भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन 'इवोल्यूशन आफ अवधी, नामक प्रबन्ध में प्रस्तुत किया है।
26. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, पृ० 473।
27. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, हीरक जयंती, पृ० 155।
28. जायसी ग्रन्थावली—ना०प्र० सभा काशी, पृ० 157।

प्रस्तुत पंक्ति में नैन का अर्थ नेत्र के अतिरिक्त छप्पर में धुआं निकलने का छेद भी है। जायसी का यह भी आशय है कि टूटे छप्पर में से इन छिद्रों के रास्ते से घर के भीतर पानी टपक रहा है। जायसी की भाषा सहज किन्तु सीधे हृदय को स्पर्श करने वाली भाषा है—

'काह हंसौ तुम मोसों किएउ और सों नेह।
तुम मुख चमकै बीजुरी, हम मुख बरसै नेह ॥'

उक्त पंक्तियों में ठेठ-लोक व्यवहार की अवधी भाषा की व्यंजकता और प्रभाविष्णुता का सौन्दर्य दर्शनीय है। नागमती का उक्त कथन अत्यन्त सहज और सरल भाषा में व्यक्त किया गया है, किन्तु वह अपनी मार्मिकता के कारण सीधे हृदय को स्पर्श कर लेता है। ऐसे सैकड़ों उदाहरण सूफी ग्रन्थों में भरे पड़े हैं। सहज शब्दों में गूढ़, गम्भीर और व्यंजनापूर्ण भावों के बहन की उत्कृष्ट क्षमता भाषा में है। उनकी भाषा अपने देश, काल और समाज की अभिव्यक्ति में पूर्ण समर्थ है।

तुलसी का साहित्य सर्वोदय है। उनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ साहित्यिक भाषा है। सूर का सागर भी संस्कृत ग्रन्थों की प्रेरणा और आधार पर बना है, किन्तु सूफियों आदि की परिस्थिति कुछ दूसरी थी। इनके सामने भागवत जैसा लोक प्रचलित कहानियां इन्होंने ली।' इनका लक्ष्य जनता के हृदय को छूना था। उनके सामने न तो पंडित वर्ग था और न मुल्ला वर्ग। अपने उपदेश को साधारण जनता के बीच फैलाने की कोशिश कर रहे थे। इस कारण उनकी भाषा जन-साधारण, की परिष्कृत भाषा थी। इनका यही महत्व है।[29]

सूफियों ने अवधी भाषा और लोक-प्रचलित कहानियों के माध्यम से जनता के हृदय को प्रेम-पीर के स्पर्श से स्पन्दित करने का प्रयत्न किया है। भाषा की सुबोधता, सारल्य, रमणीयता, पद-लालित्य, एकरूपता तथा प्रवाहमयता के गुणों से अलंकृत व्यंजना—कला का उत्कृष्ट निदर्शन है। वह सहज होते हुए भी शशक्त है। उदाहरण-स्वरूप कुछ पंक्तियां दी जा सकती हैं—

यह तन जारो छारकै, कहों कि पवन उड़ाव।
मकु तेहि मारग उड़ि परै, कन्त धरै जहं पांव ।।

कहीं-कहीं पर अपनी बात को घुमाकर कहते हैं, जो भाव एवं व्यंजना को आश्चर्यजनक मार्मिकता प्रदान करती है—

---

29. हिन्दी प्रेमाख्यान के काव्य, डा० कमल कुलश्रेष्ठ, पृ० 368।

'नोबन जल दिन-दिन जस घटा । भंवर छपान हंस पर कटा ।।

इनमें भ्रमर द्वारा काले केशों और हंस के द्वारा श्वेत केशों की व्यंजना की गई है ।

प्रो० शिव सहाय पाठक के अनुसार काव्य की भाषा केवल अर्थबोध कराने के लिए नहीं होती । वह भावोन्मेष के साथ-साथ चमत्कार पूर्ण अनुरंजन भी कराती है । अन्य वाक्यों —विज्ञान, ज्योतिष, दर्शन आदि की भाषा नियत अर्थ ही व्यक्त करती है । परन्तु कवि की वाणी जितने अधिक से अधिक अर्थों की व्यंजना करेगी उतने ही उत्कर्ष को प्राप्त होगी । नियत अर्थ तक पहुंचने के लिए अन्य वाङ्मय अभिधा शक्ति से ही काम लेते हैं । किन्तु काव्य वस्तुत के अतिरिक्त अन्य अर्थों की व्यंजना के लिए अभिधा के अतिरिक्त लक्षण और व्यंजना का भी सहारा लेता है अतः किसी कवि का काव्य-सौन्दर्य दिखाते समय उसकी भाषा की विवेचना के दोनों पक्ष 1. सांकेतिक और 2. किम्बाधायक अवश्य देखना चाहिए । संकेतिक भाषा में नियत सम्बन्ध द्वारा अर्थ बोध मात्र होता है । दूसरे में वस्तु का बिम्बग्रहण कराया जाता है जिससे वस्तु का बिम्ब या चित्र अन्तःकरण में उपस्थित होता है, मुख्य रूप से कवि द्वितीय पक्ष का सहारा लेता है । जिससे काव्य को इसी को प्रधान्य देने वाले कवियों की भाषा का सौन्दर्य बढ़ जाता है । सूफियों ने ऐसा ही किया है । फारसी परम्परा के प्रभाव वश कभी-कभी ऐसा बिम्ब ग्रहण किया है जो प्रबन्ध के प्रतिकूल हो जाता है । जैसे पद्मावती के रूप वर्णन के सम्बन्ध में उसकी हथेलियों को लाल कहा गया है और यह कल्पना की गई है कि हृदय काढ़ लेने के कारण ये हथेलियां लाल हैं । यहां बिम्ब ग्रहण अवश्य कराया गया है किन्तु प्रस्तुत रस के प्रतिकूलत्व के कारण अच्छा नहीं है—

'हिया काढ़ि जनु लिन्हेसि हाथा । रूहिर भरी अंगुरी तेहि साथा ।'[30]

इसके अलावा तत्सम शब्दों का तदभव शब्दों की अपेक्षाकृत कम प्रयोग है फिर भी कुछ तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है जैसे—काल, दान, भुजदण्ड, ध्रुव, धर्म, इन्द्र, समुद्र, सिद्ध संसार आदि ।

तद्भव शब्दों का बाहुल्य सूफी कवियों में प्राप्त होता है । तद्भव शब्दों का पूर्ण माधुर्य पूरित अवधी रूप ही सर्वत्र दृष्टव्य है । जिस चारून्ता और माधुरी से तद्भव शब्दों का प्रयोग इनके काव्यों में हुआ उतना सम्भवतः हिन्दी के किसी कवि ने नहीं किया है ।

---

30. जायसी ग्रन्थावली, ना० प्र० सभा काशी पृष्ठ 46 ।

सूफी कवियों की भाषा अपने देशकाल और समाज की अभिव्यक्ति में पूर्ण समर्थ है। इनकी भाषा सहज किन्तु सीधे हृदय को स्पर्श करने वाली है। इनमें ठेठ लोक व्यवहार की अवधी भाषा की व्यंजकता और प्रभविष्णुता का सौंदर्य दर्शनीय है। सूफी संस्कृत भाषा नहीं के बराबर जानते थे। यही कारण है कि ऐसे स्थल बहुत ही कम होंगे जहां कहीं भाषा को संस्कृतोन्मुख होता देखा गया हो। जहां कहीं ऐसा हुआ भी है वहां लोक भाषा का ही रूप सुरक्षित रूप में प्राप्त होता है जैसे—

स्रवन सीप हुई दीप संवारे। कुण्डल कनक ने उजियारे।।

यहाँ पर आए संस्कृत शब्द अपने तत्सम रूपों में न आकर अवधी की प्रवृत्ति के अनुरूप लोकोन्मुख हैं। स्रवन (स्रवन-सांस्कृत) दीप। (द्वीप संस्कृत) (कुंडल, संस्कृत) कनक, संस्कृत।

सूफियों की भाषा लोक भाषा है। इस प्रकार उन्होंने न संस्कृत और न ही फारसी शब्दों की बहुलता को महत्व दिया है। उन्होंने भाषा को भारतीय रूप न प्रदान कर उसे निस्प्राण होने से बचा लिया।

काव्य सृजन में ऐसा स्वाभाविक है कि जिस भाषा का काव्य होता है। लिपि भी उसी भाषा की होती है। किन्तु जैसा हम पीछे लिख चुके हैं किसफियो ने अपने काव्य में भारतीय और फारसी साहित्य में सामंजस्य उपस्थित किया है और उनके काव्य की आत्मा अगर फारसी है तो उसका कलेवर भारतीय है। यही बात अवधी भाषा लिपि में भी चरितार्थ होती है। सूफियों ने जहां हिन्दी अवधी भाषा को अपने काव्य का विषय बनाया वहीं पर वे लिपि के मोह को नहीं छोड़ पाए और उनकी लिपि फारसी लिपि ही रही। ऐसा नहीं कि इतनी सशक्त अवधी भाषा का प्रयोग करने वाले कवि हिन्दी लिपि से परिचित न हों किन्तु परिचित होते हुए भी वे अपनी लिपि का मोह छोड़ पाने में असमर्थ रहे।

भारतीय और फारसी उपमानों का समन्वय

सूफी काव्यों में उपमान योजना में भारतीय और फारसी उपमानों का समन्वय हुआ है। इनके प्रेमाख्यानों में भारतीय कवियों की भांति उपमानों का प्रयोग हुआ। चूंकि मध्य युग में मुस्लिम एवं भारतीय संस्कृति एक दूसरे से काफी प्रभावित हो चुकी थी। अत: सूफियों ने दोनों से मिले-जुले उपमानों को अपने काव्य में स्थान दिया। भारत की शस्य-श्यामला भूमि की जो निसर्ग सिद्ध सुषमा है उससे यहां के कवियों को भी अनुराग है। इसके विपरीत अरब तथा फारस आदि देश प्राकृतिक-सौन्दर्य रहित हैं इसी कारण वहाँ के कवि मरुस्थल में बहते हुए साधारण

झरने अथवा ताड़ के पेड़ों में सौन्दर्य का अनुभव करते थे। यथा फारसी भाषा के कवि जामी ने अपनी मसनवी 'युसुफ-जुलेखा' के नख-सिख का वर्णन करते हुए उसके कद के सम्बन्ध में लिखा है कि उसका कद ताड़ के वृक्ष के सदृश था।[31] यहां ताड़ का वृक्ष जुलेखा की लम्बाई गत सौन्दर्य का उपमान है। सूफी कवियों ने भारत तथा अरब एवं फारस दोनों देशों की प्राकृति और जलवायु तथा अन्य से उपमानों का चयन किया है। कमल का फूल भारत देश में पाया जाता है और नरगिस का पुष्प फारस देश में, भारतीय साहित्य में कमल पुष्प को नेत्रों के लिए उपमान स्वरूप ग्रहण किया गया है पर उर्दू भाषा में नरगिस के फूल को नेत्र का उपमान मान लिया गया है यथा—

'राजीवायत लोचनं घतजटाजुटेन संशोभितं।
सीता लक्ष्मण संयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे।'[32]

× × ×

'नील सरोरूह श्याम तरुन अरुन वारिज नयन।
करउ सो मय उर धाम सदा क्षीर सागर सयन।।'[33]
'हजारों साल नरगिस चश्म बेनूरी पर रोती है।
बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा।।'

नरगिस यहां दृष्टि का प्रतीक है क्योंकि रुदन नेत्रों द्वारा होता है। कवि का कथन है कि उपवन की नरगिसी आँखें मानों ओस के बहाने इसलिए रोया करती हैं कि इनके चयन में आंख वाला मुश्किल से पैदा होता है।

हिन्दी के सूफी कवियों ने केवल नूर मुहम्मद और कवि नसीर के नरगिस के पुष्प को आंख का उपमान माना है, यथा—

'अस दोनैन रहे रतनारे नरगिस जेहि के हैं मतवारे।'[34]
'नरगिस तै वह कुंवर समाना, नैन प्रियतमा के पहिचाना।।'[35]

---

31. 'युसुफ-जुलेखा, अंग्रेजी अनुवाद ग्रीथिफ, पृष्ठ 40।
32. 'रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, पृष्ठ 595।
33. वही, बालकाण्ड पृष्ठ 30।
34. 'प्रेम-दर्पण' उद्धृत जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य, कवि नसीर कृत, पृष्ठ 572।
35. सूफी काव्य संग्रह, पं० परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ 195।

अन्य हिन्दी के सूफी कवियों ने नरगिस के बजाय कमल-पुष्प, मृग, खंजन आदि भारतीय उपमानों को ही आँख को प्रतीक रूप में माना है जैसे—

'राते कंवल करहिं अलि भवां, घूमहिं भति चहहिं अपसवां।'[36]
'खंजन लरहिं मिरिग जनु भूले॥'[37]
'अब नैनन की सुनहु निकाई, खंजन वरन मीन चपलाई।
कै संग भूति पर्यो मिग छौना, के कछु इनमें टांमन टोना॥'[38]

इतना ही नहीं, इन कवियों ने भारतीय कवियों की भाँति कमल पुष्प को नायिका का एवं उनके आँख, मुंह, हाथ, पैर सभी का उपमान माना है। जैसे—

'कंवल सूख, पखुरी बहरानी, गलि-गलि कैमिलि छार हेरानी।'[39]
'यह कहि कौन कली कुंभिलानी, भारवि ग्रस्तु, सुखि गा पानी॥'[40]

प्रथम पंक्ति में कंवल रानी पद्मावती का उपमान है और द्वितीय में चित्रावली का।

फारसी काव्य में उरोजों की सुन्दरता को व्यंजित करने के लिए दाख एवं अंगूर की कोपलों को उपमान स्वरूप प्रयुक्त किया है किन्तु भारतीय साहित्य में इसके विपरीत श्रीफल, दाड़िम (अनार) नारंगी, शिव घट आदि उपमानों को इसके (उरोजों के) प्रतीक स्वरूप लिया है। हिन्दी के सूफी कवियों के काव्य में यदि एक ओर दाख और अंगूर की कोपलों के माध्यम से उरोजों की सुन्दरता का बोध कराया गया है तो दूसरी ओर दाड़िम, नारंगी, श्रीफल आदि उपमानों का प्रयोग किया गया है। जायसी ने सरोवर में 'स्नान करती हुई पद्मावती और उसकी सखियों का वर्णन करते हुए लिखा है—

'नवल बसंत संवारी करी, होई प्रगट जानहु रस भरी।
उठी कोंप जस दाखि दाखा, भइ उनंत प्रेम कै साखा॥'[41]

---

36. जायसी ग्रन्थावली, नख-सिख खण्ड, पृष्ठ 42।
37. वही, पृष्ठ 43।
38. कथारतन मंजरी, जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य, कवि जान कृत, पृष्ठ 390।
39. जायसी गन्थावली, नागमती विलाप खंड, पृष्ठ 264।
40. चित्रावली, कुटीचर, खंड, पृष्ठ 113।
41. जायसी ग्रन्थावली, मानसरोदक ,खंड, पृष्ठ 24।

इसी प्रकार 'नख-सिख खण्ड' में भी कवि ने इसके उरोजों के सौन्दर्य को व्यंजित करने के लिए इन उपमानों का प्रयोग किया है—

'दारिउं दाख फरे ग्रनचाखे, अस नारंग दहुं का कहं राखे ।[42]
'हिया थार कुच कनक-कचोरा, जानहु हुवों सिरीफल जोरा ।।[43]

श्रीफल के माध्यम से उरोजों का वर्णन मंझन ने भी किया है—

'दुवौ अनूप सिरीफल नए, भेंट आनि तरुनाए दए ।'[44]
'होत उतुंग सिह निरमरे, एक डारि दोइ नारंगि फरे ।।'[45]

फारसी काव्य में कस्तूरी को केशव के उपमान स्वरूप लिया गया है और भारतीय काव्य में कालिन्दी, भंवर, सर्प, नाग आदि उपमान के केशों की कालिमा और सुन्दरता का बोध कराते हैं।

'दुसर रात कस्तूरीय द्वारा, तासों सुगन्ध कीन्ह संसारा ।।'[46]

यहां पर कस्तूरी इन्द्रावती के केशों का उपमान है जो कि उसके केशों की कालिमा उसकी सुगन्धि और संसार में उसके व्यापक प्रभाव को व्यंजित कराती है।

भारतीय साहित्य में चन्द्रमा मुख का उपमान बनकर प्रयुक्त हुआ है जायसी ने भी इस उपमान को अपनाया है यथा—

'मेघ घटा मंह चंद देखावा ।।'[47]

यहाँ मेघ-घटा केशों का उपमान और चन्द्र मुख का ललाट के लिए फारसी कवियों ने उपमान दुइज के चन्द्र का प्रयोग किया है। जायसी ने भी पद्मावती के ललाट की उपमा दुइज के चाँद से दी है यथा—

---

42. वही नख-सिख खण्ड, पृष्ठ 46।
43. वही, पद्मावती रूप चर्चा, खंड, पृष्ठ 215।
44. मधुमालती, सिंगार, खंड, पृष्ठ 30।
45. चित्रावली, परेवा खंड, पृष्ठ 75।
46. इन्द्रावती, स्वप्न खंड-कुंवर, पृष्ठ 10।
47. जायसी ग्रन्थावली नख-सिख खंड, पृष्ठ 41।

'कहौ लिलार दुइज के जोती, दुइजहिं जोती कहाँ जग ग्रोती ।'[48]

सूफी कवियों ने मांग के लिए दीपक, दामिनी, त्रिवेणी, सूर्य, किरण आदि उपमानों को प्रस्तुत किया है। मांग के लिए दीपक का उपमान फारसी कवियों में भी मान्य रहा है। हिन्दी के सूफी कवियों ने यह उपमान वहीं से ग्रहण किया—

'माँग स्वरूप देखि जिउ हरई, दीपक वदन जोति तो बरई ।'[49]
सूर समान कीन्ह विधि दीया, देखि तिमिर कर फाट्यो हीया ।'
'श्याम रैनि महं दीप सम, जेहि ग्रंजोर जग होई ।
अछ्ज भुमंगम मांहि बसि, दिया मलीन न होई ।।'[50]

यहां दीप और दीया शब्द मांग के प्रतीक हैं और श्याम रात्रि तथा भुवंगम काले केशों का उपमान है। इन उपमानों के माध्यम से काले केशों के बीच में शोभित श्वेत मांग के सौन्दर्य को चित्रित किया गया है।

नासिका का वर्णन करते समय जायसी ने नासिका में पहने गये हीर-फूल के लिए 'सोहलि तारे' का उपमान प्रयोग किया है—

'हीर-फूल पहिरे उजियारा, जनहुं सरद ससि सोहिल तारा ।
सोहिल चाहि फूल वह ऊंचा, धावहिं नखत न जाइ पहुंचा।'[51]

यह सोहिल तारा अरबी भाषा का शब्द है और उसमें 'सुहैल' नाम से प्रसिद्ध है। फारसी और उर्दू की शायरी में इसका नाम बराबर आता है। पर शोभा बढ़ने की दृष्टि से प्रायः हिलाल के साथ। यह तारा भारतीयों में 'अगस्त्य' नाम से सम्बोधित किया जाता है। इसका वर्णन वर्षा का अन्त और शरद आगमन सूचित करने के लिए किया गया है यथा—

'उदित अगस्ति पंथ जल सोषा, जिमि लोभहिं सोषइ संतोषा ।'[52]

हिन्दी के सूफी कवियों ने ठीक इसी प्रकार का वर्णन 'सुहैल' का किया है—

---

48. वही, पृष्ठ 42।
49. मधुमालती, सिंगार खंड, पृष्ठ 26।
50. चित्रावली, परेवा खंड, पृष्ठ 69-70।
51. जायसी ग्रन्थावली, पद्मावती-रूप चर्चा खण्ड, पृष्ठ 212।
52. रामचरितमानस, किष्किन्धा काण्ड, पृष्ठ 669।

'बिछुरता जग भेटै सो बानै जहि नेह ।
सुक्ख-सुहेला उग्गवै दु:ख झरे जिमि मेह ।'[53]

इसका उल्लेख गोरा बादल द्वारा राजा रतनसेन को दिल्ली से छुड़ाकर उनके चलने पर जब बादशाह की सेना उनका पीछा किया तब बादल रतनसेन को लेकर चित्तौड़ की ओर चला जाता है और वृद्ध गोरा मुसलमान सेना की ओर लौज कर इस प्रकार ललकारता है—

सोहिल जैसे गगन उपराहीं, मेघ-घटा मोहिं देखि बिलाहीं ।[54]

इसी प्रकार अगस्त शब्द का उल्लेख भी कवि ने नागमती के वियोग वर्णन और गोरा बादल की प्रतिज्ञा में किया है—

'उम्रा अगस्त, हस्ति-घन गाजा, तुरय पलानि चढ़े रन राजा ।[55]
'उए अगस्त हस्ति जब गाजा, नीर घटै घर आइहिं राजा ।[56]

इसी प्रकार जायसी और अन्य सूफी कवियों की उपमान योजना एक ओर यदि भारतीयता से प्रभावित है तो दूसरी ओर उस पर फारसी का प्रभाव लक्षित होता है । नख-सिख प्रसंग में नायिका की हथेली के वर्णन में यहां जो उत्प्रेक्षा की गई है । वह सर्वथा फारसी ढंग की है—

'जानो रक्त हथौरी बूड़ी, रवि-पटभात तात, वेजूड़ी ।
हिया काढ़ि जनु लीन्हेंसि हाथा, रूहिर भरी अंगुरी तेहि साथा ।[57]

अस्तु संक्षेप में हम कह सकते हैं कि हिन्दी के सूफी कवियों के काव्य में उपमानों का सुन्दर प्रयोग हुआ । चूंकि भारत पर काफी दिनों तक मुस्लिम राज्य रहा । अत: उनकी भाषा संस्कृति हमारी भाषा संस्कृति से अत्यधिक घुलमिल गई है । यही कारण है कि सूफियों ने फारसी तथा भारतीय दोनों देशों के उपमानों को अपने काव्य का उपजीव्य बनाया है। वस्तुत: जब एक देश की भाषा संस्कृति दूसरे देश की भाषा संस्कृति सम्पर्क में आती है तब एक दूसरे के उपमानों का आदान-प्रदान

---

53. जायसी ग्रन्थावली, पदमावती-सुआ-भेंट-खण्ड, पृष्ठ 76 ।
54. वही, गोरा बादल संवाद, पृष्ठ 280 ।
55. वही, नागमती वियोग खण्ड, पृष्ठ 153 ।
56. वही, पद्मावती गोरा बादल संवाद, पृष्ठ 280 ।
57. वही, नख-सिख खंड, पृ० 46 ।

होना स्वाभाविक है। अतः भारतीय उपमानों और फारसी उपमानों को सूफियों ने अपने काव्य में लगभग बराबर का स्थान प्रदान किया।

भारतीय और फारसी लोकोक्तियों और मुहावरों का समन्वय

भारतीय एवं फारसी कवियों के इन भावों को अपनाने के साथ-साथ सूफी कवियों ने भारतीय एवं फारसी सूक्तियों और मुहावरों को भी अपनाया है। सूक्तियों में सहज चमत्कार और वाग्वैदग्ध्य के साथ-साथ सूफियों की भावकता का सौन्दर्य भी दर्शनीय है जैसे जायसी ने वस्तु चित्रण का वैचित्र्य पूर्ण सूक्तियों का प्रयोग सुन्दरता से किया है यथा—

चकई बिछुरि पुकारै कहां मिलै हो नाह।
एक चांद निसि सरग मंह, दिन दूसर जल माँहि।[58]

कवि प्रसिद्ध है कि चकवा और चकवी रात्रि में एक दूसरे से अलग रहते हैं, दिन में उनका मिलाप हो जाता है। पद्मावती के मुख-चन्द्र के कारण दिन में भी रात हो जाती है और चकवा चकवी एक दूसरे से वियुक्त हो जाते हैं। भाव व्यंजना, वस्तु वर्णन और तथ्य प्रकाशन की दृष्टि से आलम्बन की अनुमति का उत्कृष्ट उदाहरण है।

सूफियों के भाषा सौन्दर्य प्रसाधनों में सूक्तियों-लोकोक्तियों, मुहावरों का महत्वपूर्ण स्थान है। ये सर्वत्र भाषा-भाव धारा में प्रकृत्या जल तरंगवत् संयुक्त है। जैसे नूर मुहम्मद ने इन्द्रावती में लोकोक्तियों का प्रयोग काव्यात्मक तथा तीव्ररूप में किया है—

'जाके गोड़ न फटी बेवाई। सो का जानै पीर पराई।
'रहै न एको अन्त कहं नारंग दाड़िम दाख।'[59]
'दिवस चारिकी चांदनी फिर अंधियारी पाख।'[60]
कुछ तो अहै दार मह कारा।[61]

ये उक्तियां सहज और सरल भाषा में अभिव्यक्त हुई हैं। मार्मिकता और हृदय को सीधे स्पर्श करने की शक्ति के कारण इन सन्तों की भाषा में उत्कृष्ट प्रसाधन स्वरूप आती है।

---

58. जायसी ग्रन्थावली ना० प्र० सभा, पृष्ठ 24।
59. नूर मुहम्मद, इन्द्रावती (1906) ई० पृष्ठ 79।
60. वही, पृष्ठ 38।
61. सूरदास लखनवी, नलदमन पृष्ठ 63।

सूफियों ने संस्कृत, फारसी आदि की सूक्तियों के द्वारा सहज किन्तु गम्भीर भाव-व्यंजनाएं प्रस्तुत की हैं—संस्कृत आदि की सूक्तियाँ ज्यों की त्यों ले ली गई हैं। इनसे उनकी काव्य-कुशलता तथा सार ग्रहिणी शक्ति का पता चलता है। जैसे—

'थल थल नग न होहि जेहि जोती। जल-जल सीप न उपर्नाहि मोती।
बन-बन बिरिछ न चन्दन होई। तन-तन विरह न उपजे सोई।।'[62]

जायसी की प्रस्तुत सूक्ति चाणक्य के निम्नलिखित श्लोक का अवधी रूप है।

'शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे-गजे।
साधवो न हि सर्वत्र, चन्दनं न बने-बने।।'

मंझन कृत मधुमालती में भी यह उक्ति प्राप्त होती है।

'रतन की सागर सागरहिं, गज मोती गज कोय।
चन्दन कि बन-बन उपजइ विरह कि तन-तन होय।।

इसी प्रकार फारसी कहावतों की छाया भी कहीं-कहीं दिखाई पड़ती है

'हिन्दी नियरहिं दूर फूल जस काँटा। दूरहिं नियर जइस गुर चाँटा।'
फारसी दूराँ बा-बसर नजदीक वा नजदीकों वेवसर दूर।।

अर्थात् दृष्टि वाले को दूर भी नजदीक और विन दृष्टि वाले को नजदीक भी दूर है।

हिंन्दी परिमल पेम आछै छपा।
फारसी-इश्क व मुश्करा नतवां नेहुफतन।।'

अर्थात् प्रीति और कस्तूरी छिपाये नहीं छिपती है।

इन फारसी लोकोक्तियों के भावों के ग्रहण से सूफियों की ग्राहिका बुद्धि के दर्शन होते हैं। इसी प्रकार हिन्दी की बहुत-सी सूक्तियां सूफियों के काव्य में काव्य-बद्ध हुई हैं—

'जोवन-भरन जान पै बूढ़ा।
मिला न तरुनापा जग ढूंढा।।

× × ×

---

62. जायसी, ग्रन्थावली ना० प्र० सभा काशी, पृष्ठ 155।

दिया बुझाइ होई अंधियारा।
को अब केसि करै उजियारा॥

× × ×

'घर के भेद लंक अस लूटी'

× × ×

भोर होइ जो लागै, उठहिं रोर कै काग
मसि छूटै सब रैनि कै कागहिं केर अभाग।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि सूफी प्रेम काव्य में प्रयुक्त मुहावरों और लोकोक्तियां सर्वत्र स्वभाविक रूप में प्रयुक्त है। भाषा के सर्वांगीण रूप को प्रस्तुत करने के लिए इनका उपयुक्त प्रयोग यदि न किया होता तो इनके काव्य में चलतापन चुस्ती और सारल्य न आ पाता जो किसी लोकभाषा या साहित्य की जीवान्त विशेषता है। इसके प्रयोग से प्रेमाख्यान काव्य सौन्दर्य संवंधित हुआ। तथा उसमें अपेक्षित गुणों का समावेश हुआ। जायसी आदि कवियों ने कथा के अनुरूप लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रचुर प्रयोग किया जिसमें भारतीय प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों की प्रचुरता और भरमार है। जहां कहीं आवश्यकता पड़ी वहां फारसी मुहावरों को भी स्थान दिया गया है। लेकिन इनके प्रयोग कम हैं। इस प्रकार सूफी काव्य में लोकोक्तियाँ और मुहावरों का काव्य सौन्दर्य समन्वित भावभूमि में निर्मित करके उन्होंने अपने काव्य में सर्वत्र स्वभाविकता और चारुता उत्पन्न कर दी। यह उनकी एक बहुत बड़ी विशेषता है।

———

षष्टम्—अध्याय

उपसंहार

हिन्दी सूफी कवियों की समन्वयात्मक दृष्टि और महत्ता

काव्य सृजन की प्रक्रिया में जब समन्वय भावना जन्म लेती है तब उसके पीछे तत्कालीन युगीन परिस्थितियां विशेष अहं भूमिका निभाती हैं। इससे यह सुस्पष्ट होता है कि सामाजिक परिवर्तन कवि की चेतना को प्रेरित करने के मूल कारण होते हैं।

भारतवर्ष में सम्पूर्ण उत्तरी भारत और दक्षिणी भारत में मुसलमानों के आक्रमण हुए और धीरे-धीरे हिन्दू जनता का पतन होता चला गया निराशा और निर्बलता के कारण हिन्दू जनता के समक्ष एकमात्र ईश्वरीय आश्रय रह गया। उस युग के हिन्दुओं की आर्थिक विपन्नता एवं अपमानित अवस्था ने उन्हें ईश्वर की ओर प्रवृत्त किया और यही कारण है कि हिन्दी साहित्य के आदि काल के बाद जिन धर्म भावनाओं का उदय हुआ उनमें हमें भौतिकता के प्रति निराशा दिखाई पड़ती है यही से जीवन जगत और ब्रह्म के बीच समन्वयात्मक दृष्टि का उद्भव होता है।

भारतवर्ष में मुसलमानों के प्रवेश करने से रीति-रिवाजों और परम्पराओं में बड़ी विषमता उत्पन्न हुई। हिन्दू जो कार्य करते थे मुसलमान उसके विरोध में वैसा ही कार्य करते थे ऐसा विश्वास तत्कालीन भारतीय समाज को हो रहा था हिन्दू मन्दिर पूर्व की ओर मुंह करके पूजा करते, मुसलमान पश्चिम की ओर, और इस तरह उनमें आपस में वैमनस्य बढ़ता जा रहा था। सन्त कवियों ने दोनों जातियों की रूढ़ियों पर प्रहार किया और एक-दूसरे के निकट लाने का प्रयास किया, किन्तु यह उनके द्वारा सम्भव नहीं हो सका। इस काम को सूफी कवियों ने कर दिखाया। उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों के सामने मनुष्यता को स्पष्ट किया तथा हिन्दू के घर की प्रेम कहानियों को लेकर फारसी अन्दाज में जो काव्य सृजन की उसने हिन्दू और मुसलमानों को यह सन्देश दिया कि मनुष्य-मनुष्य में कोई भेद नहीं है सब एक ही खुदा के बन्दे हैं सर्वत्र उसका ही प्रकाश प्रकाशित है और इस तरह वैमनस्य के स्थान पर एकत्व स्थापित करके उन्होंने जीवन को समन्वयात्मक दृष्टि प्रदान की।

आचार्य शुक्ल के अनुसार—'जो काम कबीर की डांट-फटकार नहीं कर सकीं वह सूफी कवियों के प्रेम ने कर दिखाया, जायसी आदि सूफी कवियों ने यह सिद्ध किया कि चाहे जिस धर्म का व्यक्ति हो उसके हृदय में प्रेम की तरंग, विरह की व्याकुलता सुख-दुःख की अनुभूति एक ही जैसे कारणों से होती है। फिर वैमनस्य की मनोवृत्ति कितनी व्यर्थ और कष्ट उपजाने वाली है।[1]

सूफी कवियों की मनोवृत्ति मूल रूप से प्रेम परक हैं। उनकी मान्यता के अनुसार मनुष्य प्रेम के द्वारा ही ईश्वर तक पहुंच सकता है। अतः उनकी सम्पूर्ण साधना प्रेम पर आश्रित है। और इस प्रकार वह जीव और ईश्वर की अभिन्नता को स्वीकार करते हैं लेकिन उनकी इस मान्यता से मुसलमान सहमत न थे क्योंकि उनके अनुसार सम्पूर्ण चराचर विश्व उसकी इच्छा मात्र का फल है फिर आत्मा और परमात्मा में एकरूपता कैसे हो सकती है इस प्रकार मुसलमानों के टकराव से बचने के लिए उन्होंने प्रतीकों के माध्यम से अपनी बात कही और इस प्रकार भारतीय अद्वैतवादी परिवेश को भी महत्व मिल गया और एकेश्वरवादी मान्यताओं को भी।

सूफी कवियों का दृष्टिकोण प्रारम्भ से ही समन्वयवादी रहा यही कारण है कि वह विधि-विधान समाज, राजनीतिक, प्रजा-उपासना की पूर्व मान्यताओं को ही लेकर चलें। यही कारण है कि उन्होंने तात्कालिक व्यवस्था के आधार पर दर्शन जैसे अरूप और नीरस तत्व में प्रेम का रस चढ़ा कर उसे लोकप्रिय बना दिया। उनकी समन्वयात्मक प्रवृत्ति का आंचल इतना विशाल है कि सभी वेदान्त पुराण, उपनिषद तथा अन्य सम्प्रदाय के सिद्धान्तों को उन्होंने गम्भीरता के साथ ग्रहण किया और अपने ढंग में रंगकर उनसे अधिक से अधिक तादात्मय स्थापिय करने का प्रयास किया।

सूफी साधकों की दृढ़ता और सच्चाई की यही कसौटी थी कि उन्होंने अपने युग की चिन्तनधारा को समन्वित रूप देकर उसे एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया।

सूफी कवियों ने ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों की व्यंजना करके इन दोनों में समन्वय स्थापित करने का जो प्रयास किया वह कम प्रशंसनीय नहीं है। सगुण और साकार हमारी भावना का आधार है और वही अन्त में निर्गुण रूप में समाहित हो जाता है। निर्गुण और सगुण का सम्बन्ध परस्पर जल और तरंग के समान है। मंझन ने मधुमालती में इसे इस प्रकार व्यक्त किया है—

अति सरूप रस भरे अमोला, जो सोभित सुख मध्य कपोला।
मैं मतिहीन बरनि न आई, मुख कपोल बरने केहि भाई॥[2]

---

1. जायसी ग्रंथावली—पृ० 1।
2. मधुमालती-पुनर्मूल्यांकन-दोहा-83।

ब्रह्म के साथ जब हम अपने मन का एक अनुरागी सम्बन्ध जोड़ लेते हैं तब सगुण ब्रह्म से आत्मीयता स्थापित हो जाती है और तब सुध-बुध खोकर उसे पाने की जो व्याकुलता उत्पन्न होती है वह संसार के समस्त वैभव को क्षणभर में निष्क्रृत कर देती है। इस प्रकार निर्गुण और सगुण का समन्वय सूफियों ने अपने विचारों द्वारा बड़ा बेजोड़ प्रस्तुत किया।

भारतीय दर्शन के गहन और गम्भीर तत्वों को सूफियों ने अपना कर अपने मार्ग को दृढ़ बनाने का प्रयास किया। उन्होंने जीव के विषय में अद्वैत को अपनाया। उनका कथन है जीव और ब्रह्म में वस्तुतः कोई भेद नहीं है वह सर्व निरपेक्ष और स्वयं प्रकाश है सूफी कवियों ने ब्रह्‌म को पाने के लिए विभिन्न साधनाओं को बताया जिनमें चार साधना अवस्थाएं—शरीयत, तरीकत, हकीकत, मारिफत हैं, उनकी मारिफत की अवस्था ज्ञान प्राप्ति की स्थिति है। इस अवस्था में पहुंचकर आत्मा फना हो जाती है और वह 'बका' का अनुभव अर्थात् मैं ही परमात्मा हूं, का अनुभव करने लगता है। ऐसी ही अवस्था में ईश्वर और जीव स्वरूप से भिन्न होते हुए भी गुणों से अभिन्न हो जाते हैं और इसी को मुक्ति की अवस्था कहा जाता है। सूफी साधना के अनुसार प्रेम की पुण्य ज्योति ब्रह्‌म के प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्थ करती है। जिस हृदय में प्रेम निवास करता है वहीं प्रेमी उस परमात्मा को प्राप्त कर सकता है।

सूफियों ने भारतीय हठयोग साधना और प्रेम साधना का भी समन्वय करने का प्रयास किया। सूफियों की क्रियाओं का सम्बन्ध बहुत कुछ योग के प्राणायाम तथा ध्यान आदि से है इसके द्वारा साधक नाना चक्रों को भेदन करके ब्रह्‌मरंध्र तक पहुंचता है इसी के लिए उसे साधना करनी पड़ती है। ब्रह्‌मरंध्र के खुलते ही अमृत धारा फूट पड़ती है। सूफियों की प्रेम मार्गी साधना हठयोग की साधना पर आधारित है जिसका सम्बन्ध शरीर की आन्तरिक क्रियाओं से है। इड़ा और पिंगला को मिलाकर सुषुम्ना में केन्द्रित कर देना इनकी साधना में है—जैसे—जायसी ने रत्नसेन को सूर्य और पद्मावती को चन्द्र कह कर दोनों को मिलाने का संकल्प किया।

'किरन करा भा प्रेम अंकुर, जौ सीस सरग मिलै होइ सूर।[3]

सूफियों ने जो हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति में समन्वय करने का प्रयास किया है वह कम स्तुत्य नहीं है। चूंकि सूफी काव्यों की आधारशिला तो इस्लाम धर्म से प्रेरित हुई जिसके परिणामस्वरूप उसमें मुस्लिम संस्कृति के चित्र होने

---

3. जायसी ग्रंथावली, पृ० 39।

स्वाभाविक थे। लेकिन उन्होंने जिन प्रेम कहानियों को चुना भारतीय वातावरण के अनुकूल थीं। जिसमें स्वत: जनता मुस्लिम संस्कृति की ओर आकृष्ट हो गई और मुस्लिम संस्कृति और भारतीय संस्कृति में सामन्जस्य स्थापित हुआ। उन्होंने रीति-रिवाजों, विवाह, गौना, सतीप्रथा, जौहर, चौपड़ आदि लोककृत्यों और कथाओं के संस्कारों को महत्व दिया।

ईरानी और भारतीय प्रेम पद्धतियों में जो सामन्जस्य हुआ है वह सूफियों की विशेष देन है। ईरानी प्रेम परम्परा से प्रभावित होने के कारण उनमें प्रेमत्व के चित्रण में भावावेश और उत्कृष्टता के रूप भली प्रकार दिखाई पड़ते हैं जिसके परिणामस्वरूप कहीं-कहीं वीभत्सता तक परिलक्षित होती है। लेकिन भारतीय प्रेम पद्धति का भी उन्होंने महत्व कम नहीं होने दिया। प्रेम की विशुद्धि भारतीय भाव-भूमि को हम जायसी की नागमती में देख सकते हैं जहां वह विशुद्ध रूप से एक प्रेमिका के रूप में तो दिखती है भोगी नायिका की तरह नहीं। वह मात्र पति के दर्शन से ही सन्तुष्ट होना चाहती है—

'मोहि भोग सो काज नवारि, सोह दृष्टि कर चाहन हरि।'

इस प्रकार सूफियों ने दोनों प्रेम पद्धतियों में समन्वय करने का प्रयास किया।

सूफी सन्तों के पहले भारत में हिन्दू धर्म और मुस्लिम धर्म दोनों में आडम्बरों का बोलबाला था इसके लिए सन्त कवि अनवरत विरोध कर रहे थे लेकिन उनका प्रभाव अपेक्षित नहीं पड़ पा रहा था। सूफियों ने इस्लाम धर्म और भारतीय धर्म दर्शन का समन्वय करके जो ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत किया उसका प्रभाव हिन्दू और मुसलमानों पर एक साथ पड़ा। सूफियों ने प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए सामान्य जीवन दशाओं को सामने रखा जिनका मानव हृदय पर इतना प्रभाव पड़ा कि हिन्दू और मुसलमान आमने-सामने आकर अपने अज्ञानकीपन को हटाने का प्रयास करने लगे। प्रत्यक्ष जीवन की एकता स्थापित करना इनका लक्ष्य था और उनमें ये सफल भी हुए।

सूफी कवियों की रचनाओं की आधारशिला यद्यपि सूफी सिद्धान्तों पर रखी गई है पर इसका आवरण भारतीयता के रंग से ही रंजित है। सूफी जिस ब्रह्म का साक्षात् करके आनन्द को प्राप्त करते हैं उसका चरम लक्ष्य बका है जिसमें वह द्वंद्वों से मुक्त होकर प्रियतम में लय हो जाता है यह स्थिति चार अवस्थाओं से गुजरने पर आती है, जैसे 'अखरावट' में जायसी ने स्पष्ट किया है।

'कहीं तरीकत जिसकी पीरू, अधरित उतरफ और जहंगीरू।
शह हकीकत परे न चूकि, पैठी मरिफत भाड उडुकि।।

इसी प्रकार से—

चार बसेरो जो चढ़े, सत सो उतरै पार ।

इन चार अवस्थाओं के साथ-साथ चार लोकों की कल्पना की गई है जिनमें नाखूत, मलकूत, जबरूत और लाहूत हैं । साधक को अपने लक्ष्य तक पहुंचने के लिए इन्हीं भावभूमि से आगे बढ़ना पड़ता है जो मोहब्बत में समाप्त होता है इसी तरह से सात खण्ड सूफियों के सात मुकामात हैं जिनका विस्तृत वर्णन हम पीछे कर चुके हैं । इन सबसे ये तो स्पष्ट हो जाता है कि सूफी प्रेमाख्यानों की आत्मा इस्लाम धर्म के प्रमुख तत्वों पर आधारित है लेकिन ऐसा नहीं है कि उसमें केवल इस्लाम को ही परम्पराओं का निर्वाह किया गया हो । जिस प्रेम के माध्यम से वह ईश्वर तक पहुंचते हैं वह भारतीय परम्परा में प्रचुर रूप से रहा अन्तर केवल इतना रहा कि इस्लाम में नायक द्वारा नायिका को प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया भारतीय प्रेम परम्परा में नायिका द्वारा प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया । सूफी काव्यों में हमें इन दोनों ही रूपों को देखने का अवसर मिला लेकिन उसमें अधिकता इस्लामिक प्रेम को ही दिखाई है ।

सूफी प्रेमाख्यानों का कलेवर तो भारतीयता से ओत-प्रोत है हिन्दू घरों की कहानियां उनके रीति-रिवाज संस्कार उनकी परम्पराओं को समाहित करके उन्होंने जिस प्रेम के चित्र को चित्रित किया उसके पीछे उनकी यह दृढ़ धारणा थी कि इसके द्वारा हिन्दू और मुसलमानों के भेद को समाप्त किया जा सकता है । सूफियों ने अपने ग्रन्थों में कथानक, पात्र, चरित्र-चित्रण, प्रवृत्ति वर्णन को भारतीय जनजीवन के अनुकूल बनाया अपने प्रेमाख्यानों में भारतीय प्रबन्ध काव्य की शैली, और भारतीय मसनवी शैली का सामंजस्य प्रस्तुत किया । निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सूफियों ने भारतीय और मसनवी शैली में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया है वह उनके भावपक्ष में भी परिलक्षित होता है ।

सूफियों ने अपने प्रेम काव्यों को काव्योपयोगी स्वरूप देने के लिए इतिहास और कल्पना दोनों में समन्वय करने का प्रयास किया जैसे अगर जायसी के पद्मावत को देखा जाए तो उसका पूर्वार्द्ध कल्पना से ओत-प्रोत है, लेकिन उत्तरार्द्ध में ऐतिहासिक पात्र उभरकर सामने आए हैं कल्पना के क्षेत्र में ये कितना सुस्पष्ट है कि— 'दुनिया जानती है कि सिंहलद्वीप के लोग तमिल और सिंहली दोंनों कैसे काले-कलूटे होते हैं वहां पद्मिनी स्त्रियों का पाया जाना गोरखपंथी साधुओं की कल्पना है । 'इसी प्रकार सूफी कवियों को अपने कथांक आधार खड़ा करने में जहां भी कल्पना का सहारा लेना पड़ा वहां वह कहीं भी संकुचित नहीं दिखाई देते ।

सूफियों ने लिपि और भाषा में जो सामंजस्य स्थापित किया है उसका भी अपना एक महत्व है सूफी-कवियों की भाषा विशुद्ध अवधी है जो देशकाल और

समाज की अभिव्यक्ति में पूर्ण समर्थक है उनकी अभिव्यंजना दर्शनीय है उनकी भाषा लोक भाषा है जिसे उन्होंने शास्त्रीय रूप प्रदान न करके उसे निष्प्राण होने से बचा लिया काव्य सृजना में प्राय: ऐसा होता है भाषा और लिपि एक ही भाषा की होती है। किन्तु सूफी इसके अपवाद है उन्होंने भाषा के रूप में तो अवधी को अपनाया, वही लिपि फारसी रखी। ये उनका लिपि के प्रति एक मोह था क्योंकि सशक्त अवधी का प्रयोग करने वाले कवि ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि हिन्दी लिपिक से अनिविज्ञ हो। फिर भी उन्होंने भाषा और लिपि में जो सामंजस्य स्थापित किया वह अनोखा ही है।

जहां उपमानों की योजना आयी है उन्होंने भारतीय कवियों की भांति ही उपमानों का प्रयोग किया है। चाहे वह नारी सौन्दर्य हो चाहे प्रकृति सौन्दर्य हो। भारतीय काव्य में भवंर, सर्प, नाग, कमल, चन्द्र, बसन्त और अन्य ऋतुओं को जिस प्रकार वर्णित किया गया है वैसा ही वर्णन सूफियों में मिलता है। सूफी कवियों ने मात्र के दीपक त्रिवेणी दामिनी, सूर्य, किरण आदि उपमानों को भारतीय शैली में प्रयुक्त किया है लेकिन सूफी कवियों पर फारसी का प्रभाव भी लक्षित होता है नख शिख प्रसंग में नायिका को हथेली के वर्णन में जो उत्प्रेक्षा की गई है वह फारसी ढंग की है।

'जानो रकत हथोई बूडी, रवि-पटभात तत, वेजूडी।

इस प्रकार के बहुत से उदाहरण सूफी प्रेम काव्यों में उपलब्ध हो जाते हैं। लोकोक्तियों और मुहावरों के रूप भी मिले-जुले हैं भारतीय लोकोक्तियाँ और मुहावरे प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हुए है सूफियों ने संस्कृत और फारसी की सूक्तियों को मिलाकर गम्भीर भाव व्यंजना जिस प्रकार से की है। उससे उनकी सारग्रहणी शक्ति का अनुमान लगाया जा सकता है भावों के अनुसार उन्हें कहीं से भी अर्थ की गम्भीरता को बढ़ाने में आवश्यक उपमान, मुहावरे, लोकोवितयाँ, कहीं से भी लेने में संकोच नहीं है। उन्हें तो अपने प्रेम को पुष्ट करना है उसके लिए युक्ति कोई भी प्रयुक्त हो सकती है। इस प्रकार समग्र रूप से अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है, कि सूफियों ने भारतीय धर्म दर्शन, कला, संस्कृति, सभ्यता काव्य, भाषा सभी के साथ समन्वय की विराट भावना को लेकर जो रंग चित्र प्रस्तुत किए हैं वह उनके प्रेम को पुष्ट करने में सशक्त है ही साथ ही समाज को जोड़ने, उनमें सद्भाव स्थापित करने, संस्कारों के पुनर्जीवित करने, तथा प्रेम के माध्यम से जन-जन में ऐक्य स्थापित करने की धारणा। मैं जो निहित था वह उन्होंने पूर्ण करके दिखा दिया। भारतीय प्रेम पद्धति, अद्वैत भावना हठयोग विचार धारा और भारतीय कवियों की भाषा शैली के साथ-साथ इस्लाम सूफीमत और फारसी काव्य में सम्बन्ध रखने वाले अनेक अभारती तत्वों को भी स्थान मिला है। सूफियों ने अपने

प्रेमाख्यानों द्वारा प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए उन सामान्य जीवन दशाओं को सामने रखा जिनका मानव हृदय पर एक-सा प्रभाव दिखाई पड़ा।

प्राय: सभी हिन्दी के सूफी कवि एक अलौकिक प्रतिभा एवं सत्यानुभूति से युक्त थे। अन्तरतम की गुहा में निहित जिस दुर्लभ निगूढ़ तत्व की अनुभूति उन्हें आत्मचिन्तन के द्वारा खण्ड सत्यों के रूप के माध्यम से व्यक्त करने की चेष्टा की थी मुल्ला, दाउद, जायसी, मंझन, उसमान, जान, नूर मुहम्मद, शेख निसार, ख्वाजा अहमद आदि हिन्दी सूफी कवियों ने प्रेम गाथाओं का सृजन करके हिन्दी में प्रेम-काव्यों की एक धारा ही प्रभावित कर दी।

सूफी साधक स्वयं को पूर्णतया समर्पित कर देने में ही अपनी चरम सार्थकता मानते हैं। आंतरिक प्रेम-निवेदन, सूफियों की आध्यात्मिक जीवन रूपी यात्रा का महत्वपूर्ण पाथेय है। सूफी साधक अबू अब्द अल्लाह अल रूपी कुरैशी का कथन है कि जिसमें परम प्रियतम परमात्मा को अपना सर्वस्व समर्पित करना पड़े और साधक के पास कुछ नहीं रहे वही प्रेम है। सभी धर्मों ने इस बात को एकमत से स्वीकार किया है कि स्त्री से बढ़कर स्फुट साक्षात प्रेममय और माधुर्य प्रतीक हमारे इस लोक में पुरुष के लिए दूसरा नहीं है। इसी के माध्यम से हिन्दी सूफी कवियों ने अपने प्रेम-मार्ग और प्रेम काव्य के उपकरणों का निर्माण किया है। उनके नायक जीवात्मा के प्रतीक है जो नायिका रूपी परमात्मा के प्रेम में आबद्ध होकर अपना घर-बार छोड़ सर्वस्व त्यागकर उसकी प्राप्ति के लिए चल पड़ते हैं। यद्यपि अधिकांश हिन्दी के सूफी कवियों ने अपने प्रेमाख्यानों में रति एवं शृंगार के अनेक उभरे हुए चित्र चित्रित किए हैं पर ये समस्त रागानुरागी काव्य के रसात्मक निर्वाह के लिए ही है अन्यथा फिर ये हिन्दी के सूफी कवि काव्य सृजन न करे 'हठयोग' 'प्रदीपिका' की ही रचना करते।

सूफियों की समन्वयात्मक दृष्टि बहुत तेज थी। जिस समय सिद्ध नाथ एवं सन्त कवियों ने हिन्दू-मुसलमानों के पारस्परिक सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक संघर्षों को समाप्त करने के लिए झाड़-फटकार की शैली अपनाई थी, किन्तु उपदेशात्मक शैली का मानव हृदय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, जितना की अप्रत्यक्ष शैली का अत: इन संघर्षों को दूर करने में सफल नहीं हो सके। इसकी पूर्ति सूफी कवियों ने की। उन्होंने कान्ता सम्मित मधुर उपदेश दिए जिससे उन्होंने हिन्दुओं को इस्लाम धर्म की ओर और मुसलमानों को हिन्दू धर्म की ओर आकृष्ट किया। इसके लिए उन्होंने भारतीय कथा, चरित्र एवं भाषा को अपनाया और इसके माध्यम से उन्होंने सूफी सिद्धांतों एवं इस्लाम-धर्म का निरूपण किया। उनके कांतासम्मित मधुर उपदेशों का भारतीय जनता पर इतता अधिक प्रभाव पड़ा कि प्रत्यक्ष रूप से इस्लाम धर्म को स्वीकार न करते हुए भी वे अप्रत्यक्ष रूप से सूफी-सिद्धांतों, इस्लाम धर्म एवं उसकी संस्कृति की ओर आकर्षित हो गये।

लोकहित समाज कल्याण करना भी इनका एक प्रमुख आदर्श था। हिन्दू मुस्लिम में एकता स्थापित कर एक दूसरे के विचारों और सभ्यता, संस्कृति का आदान-प्रदान कर समन्वय किया था। जिस प्रकार ईरानी प्रेम पद्धति में नायक के प्रेम का वेग अधिक तीव्र रहता है और भारतीय प्रेम पद्धति में नायिका का, किन्तु सूफी कवियों ने तुल्यानुराग की अवस्था को दिखाकर आदर्शों में समन्वय स्थापित कर दिया है। इस प्रकार ईरानी प्रेम पद्धति में पारिवारिक एवं सामाजिक प्रेम की प्रतिष्ठा के लिए कोई स्थान नहीं रहता है किंतु भारतीय प्रेम पद्धति आदि से ही लोक सम्बद्ध और व्यवहारात्मक रही है। उसकी प्रभा जीवन के भिन्न-भिन्न भागों में फूटती और प्रज्वलित होती है। उदाहरण के लिए राम के द्वारा पुल बाँधना, रावण पर आक्रमण करना, आदि को हम केवल प्रेमिका को पाने का प्रयत्न ही नहीं कह सकते हैं, बल्कि उनमें एक प्रकार का लोकहित और शौर्य भी निहित है। सूफी कवियों ने अपने काव्य में इरानियों के एकान्तिक प्रेम के साथ-साथ भारतीय प्रेम पद्धति के मुख्य अंग लोक व्यवहार का भी समावेश कर दिया है। सूफी काव्य में अनेकों प्रसंगों में भारतीय संस्कृति के अनुरूप लोकपक्ष को उभारा गया है, यथा-विहंगम के द्वारा नागमती का पति को संदेश प्रेषित करना, विशुद्ध भारतीय संस्कृति का रूप निखारता है। वह पति से सम्भोग की अभिलाषा नहीं करती है। उसका शरीर धूल बनकर उसके पति के चरणों के नीचे पड़ जाय।[4]

समन्वयात्मक दृष्टि से इनकी महत्ता इसलिए भी है कि सूफियों ने अपने प्रेमाख्यानों में लोक-कथाओं को काव्य का उपजीव्य बनाया है जिससे मौलिक कथा परम्परा नष्ट होने से बच गई। दूसरे इन प्रेमाख्यानों में लोकगीतों के तत्वों के समावेश के अतिरिक्त विभिन्न राग-रागनियों के आधार पर कुछ गीतों की रचना भी हुई। अलीमुराद इस कला में विशेष पुट थे। उनके काव्य में होली, बसन्त और मलहार के गीत प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थे, इससे आध्यात्मिक तथ्यों का उद्घाटन कर इसी परम्परा में हम इन कवियों के द्वारा लिखे गए बारहमासा आदि को ले सकते हैं। लोक गीतों की इस परम्परा को बनाए रखकर सूफी कवियों ने निस्सन्देह हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि की है।

सूफी कवियों की यह विशेषता है कि उन्होंने प्रेम की एक पृथक धारा ही प्रवाहित कर दी। यद्यपि भारत की प्रेमाख्यान परम्परा भी अति प्राचीन है जिसमें ऋग्वेद में यम-यमी 'पुरूरवा, उर्वशी आदि प्रेम कहानियाँ तथा संस्कृत साहित्य में

---

4. यह तन जारौ छार कै कहों कि 'पवन' 'उड़ाव'।
   मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंत धरै जहं पाव।

   जा० ग्र० नागमती वियोग खण्ड पृष्ठ 115।

प्रेमाख्यानों द्वारा प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए उन सामान्य जीवन दशाओं को सामने रखा जिनका मानव हृदय पर एक-सा प्रभाव दिखाई पड़ा ।

प्रायः सभी हिन्दी के सूफी कवि एक अलौकिक प्रतिभा एवं सत्यानुभूति से युक्त थे । अन्तरतम की गुहा में निहित जिस दुर्लभ निगूढ़ तत्व की अनुभूति उन्हें आत्मचिन्तन के द्वारा खण्ड सत्यों के रूप के माध्यम से व्यक्त करने की चेष्टा की थी मुल्ला, दाउद, जायसी, मंझन, उसमान, जान, नूर मुहम्मद, शेख निसार, ख्वाजा अहमद आदि हिन्दी सूफी कवियों ने प्रेम गाथाओं का सृजन करके हिन्दी में प्रेम-काव्यों की एक धारा ही प्रभावित कर दी ।

सूफी साधक स्वयं को पूर्णतया समर्पित कर देने में ही अपनी चरम सार्थकता मानते हैं । आंतरिक प्रेम-निवेदन, सूफियों की आध्यात्मिक जीवन रूपी यात्रा का महत्वपूर्ण पाथेय है । सूफी साधक अबू अब्द अल्लाह अल रूपी कुरैशी का कथन है कि जिसमें परम प्रियतम परमात्मा को अपना सर्वस्व समर्पित करना पड़े और साधक के पास कुछ नहीं रहे वही प्रेम है । सभी धर्मों ने इस बात को एकमत से स्वीकार किया है कि स्त्री से बढ़कर स्फुट साक्षात प्रेममय और माधुर्य प्रतीक हमारे इस लोक में पुरुष के लिए दूसरा नहीं है । इसी के माध्यम से हिन्दी सूफी कवियों ने अपने प्रेम-मार्ग और प्रेम काव्य के उपकरणों का निर्माण किया है । उनके नायक जीवात्मा के प्रतीक है जो नायिका रूपी परमात्मा के प्रेम में आबद्ध होकर अपना घर-बार छोड़ सर्वस्व त्यागकर उसकी प्राप्ति के लिए चल पड़ते हैं । यद्यपि अधिकांश हिन्दी के सूफी कवियों ने अपने प्रेमाख्यानों में रति एवं शृंगार के अनेक उभरे हुए चित्र चित्रित किए हैं पर ये समस्त रागानुरागी काव्य के रसात्मक निर्वाह के लिए ही हैं अन्यथा फिर ये हिन्दी के सूफी कवि काव्य सृजन न करे 'हठयोग' 'प्रदीपिका' की ही रचना करते ।

सूफियों की समन्वयात्मक दृष्टि बहुत तेज थी । जिस समय सिद्ध नाथ एवं सन्त कवियों ने हिन्दू-मुसलमानों के पारस्परिक सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक संघर्षों को समाप्त करने के लिए झाड़-फटकार की शैली अपनाई थी, किन्तु उपदेशात्मक शैली का मानव हृदय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, जितना की अप्रत्यक्ष शैली का अतः इन संघर्षों को दूर करने में सफल नहीं हो सके । इसकी पूर्ति सूफी कवियों ने की । उन्होंने कान्ता सम्मित मधुर उपदेश दिए जिससे उन्होंने हिन्दुओं को इस्लाम धर्म की ओर और मुसलमानों को हिन्दू धर्म की ओर आकृष्ट किया । इसके लिए उन्होंने भारतीय कथा, चरित्र एवं भाषा को अपनाया और इसके माध्यम से उन्होंने सूफी सिद्धांतों एवं इस्लाम-धर्म का निरूपण किया । उनके कांतासम्मित मधुर उपदेशों का भारतीय जनता पर इतता अधिक प्रभाव पड़ा कि प्रत्यक्ष रूप से इस्लाम धर्म को स्वीकार न करते हुए भी वे अप्रत्यक्ष रूप से सूफी-सिद्धांतों, इस्लाम धर्म एवं उसकी संस्कृति की ओर आकर्षित हो गये ।

लोकहित समाज कल्याण करना भी इनका एक प्रमुख आदर्श था। हिन्दू मुस्लिम में एकता स्थापित कर एक दूसरे के विचारों और सभ्यता, संस्कृति का आदान-प्रदान कर समन्वय किया था। जिस प्रकार ईरानी प्रेम पद्धति में नायक के प्रेम का वेग अधिक तीव्र रहता है और भारतीय प्रेम पद्धति में नायिका का, किन्तु सूफी कवियों ने तुल्यानुराग की अवस्था को दिखाकर आदर्शों में समन्वय स्थापित कर दिया है। इस प्रकार ईरानी प्रेम पद्धति में पारिवारिक एवं सामाजिक प्रेम की प्रतिष्ठा के लिए कोई स्थान नहीं रहता है किंतु भारतीय प्रेम पद्धति आदि से ही लोक सम्बद्ध और व्यवहारात्मक रही है। उसकी प्रभा जीवन के भिन्न-भिन्न भागों में फूटती और प्रज्वलित होती है। उदाहरण के लिए राम के द्वारा पुल बांधना, रावण पर आक्रमण करना, आदि को हम केवल प्रेमिका को पाने का प्रयत्न ही नहीं कह सकते हैं, बल्कि उनमें एक प्रकार का लोकहित और शौर्य भी निहित है। सूफी कवियों ने अपने काव्य में इरानियों के एकान्तिक प्रेम के साथ-साथ भारतीय प्रेम पद्धति के मुख्य अंग लोक व्यवहार का भी समावेश कर दिया है। सूफी काव्य में अनेकों प्रसंगों में भारतीय संस्कृति के अनुरूप लोकपक्ष को उभारा गया है, यथा- विहंगम के द्वारा नागमती का पति को संदेश प्रेषित करना, विशुद्ध भारतीय संस्कृति का रूप निखारता है। वह पति से सम्भोग की अभिलाषा नहीं करती है। उसका शरीर धूल बनकर उसके पति के चरणों के नीचे पड़ जाय।[4]

समन्वयात्मक दृष्टि से इनकी महत्ता इसलिए भी है कि सूफियों ने अपने प्रेमाख्यानों में लोक-कथाओं को काव्य का उपजीव्य बनाया है जिससे मौलिक कथा परम्परा नष्ट होने से बच गई। दूसरे इन प्रेमाख्यानों में लोकगीतों के तत्वों के समावेश के अतिरिक्त विभिन्न राग-रागनियों के आधार पर कुछ गीतों की रचना भी हुई। अलीमुराद इस कला में विशेष पुट थे। उनके काव्य में होली, बसन्त और मलहार के गीत प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थे, इससे आध्यात्मिक तथ्यों का उद्‌घाटन कर इसी परम्परा में हम इन कवियों के द्वारा लिखे गए बारहमासा आदि को ले सकते हैं। लोक गीतों की इस परम्परा को बनाए रखकर सूफी कवियों ने निस्सन्देह हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि की है।

सूफी कवियों की यह विशेषता है कि उन्होंने प्रेम की एक पृथक धारा ही प्रवाहित कर दी। यद्यपि भारत की प्रेमाख्यान परम्परा भी अति प्राचीन है जिसमें ऋग्वेद में यम-यमी 'पुरूरवा, उर्वशी आदि प्रेम कहानियाँ तथा संस्कृत साहित्य में

---

4. यह तन जारौ छार कै कहों कि 'पवन' 'उड़ाव'।
   मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंत धरै जहं पाव।
   जा० ग्र० नागमती वियोग खण्ड पृष्ठ 115।

कुमार सम्भव, कादम्बरी, अभिज्ञान शाकुंतलम् आदि उपलब्ध होते हैं, अपभ्रंश जैनी और बौद्धों में भी इस प्रकार का काव्य परिलक्षित होता है किन्तु वह मात्र धर्म उपदेश देता हुआ दिखाई पड़ता है। हिंदी के सूफी कवियों ने अपने प्रेम काव्यों की रचना कर प्रेमाख्यान की परम्परा को ही प्रचलित कर दिया जो भारतवर्ष में कभी नहीं थी। यह परम्परा तब से लेकर बीसवीं शताब्दी तक अनवरत प्रवाहित होती चली आ रही है।

सूफी-कवियों के प्रेमकाव्यों की एक यह भी महत्ता है कि जहां कहीं उन्होंने नायिका के नख-शिख वर्णन एवं काम क्रीड़ा के चित्र प्रस्तुत किए हैं। वही कहीं-कहीं अश्लील होते हुए भी सामाजिक मान्यताओं के प्रतिकूल नहीं है। इनके दाम्पत्य प्रेम की व्यंजना में परमात्मा को केवल प्रेम के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। उन्होंने जीवन की समस्त कटुताओं को परम प्रेम की पावन धारा से धो डालने का प्रयास किया है।

प्रेमाख्यान काव्य लौकिकता से ओत-प्रोत होने के साथ-साथ आध्यात्म की महत्ता से भी युक्त हैं। इनमें इश्क मिजाजी के माध्यम से जीव को इश्क हकीकी की ओर उन्मुख किया गया है। इस प्रकार इन काव्यों ने समाज को लौकिकता से ऊपर उठाकर आध्यात्मिकता की ओर ले जाने का प्रयास किया। ईश्वरीय प्रेम के साथ-साथ विश्व प्रेम की पावन गंगा को प्रवाहित किया जिससे हिन्दू मुसलमानों के पारस्परिक संघर्ष समाप्त होकर उनके बीच ऐक्य स्थापित हुआ।

'सूफी काव्य की एक यह भी महत्ता है कि उसने हिन्दी, उर्दू, बंगला और पंजाबी सभी साहित्यों को प्रभावित किया।' ज्ञान-मार्गी सन्तों की साधना पद्धति में जो हमें माधुर्य भाव दृष्टिगोचर होता है वह भी सूफियों की देन है। उपनिषदों का माधुर्य भाव यद्यपि साकार रूप में था इसलिए वह सन्तों के लिए कम उपयुक्त था। निराकार ब्रह्म में पति-पत्नी का सम्बन्ध स्थापित कर भावाभिव्यक्ति की परिपाटी इन सन्त-कवियों को सूफी काव्य में मिली। आगे चलकर छायावादी कवियों पर भी सूफियों की रहस्यवादी प्रवृत्ति का प्रभाव पड़ा।

सूफी प्रेमाख्यान काव्य का प्रचुर प्रभाव उर्दू साहित्य पर भी पड़ा, क्योंकि साहित्य के प्रारम्भिक कवि कुतुबशाह, अलिमोहम्मद, काजी मोहम्मद मूलतः सूफी थे और उन्होंने फारसी की मसनवियों का अनुसरण किया। सूफी कवि सृष्टि को ईश्वर के सौन्दर्य के रूप में देखता है। उसकी दृष्टि में संसार के विविध नाम, रूप उसी की महत्ता को प्रदर्शित करते हैं। उसी भाव की अभिव्यक्ति उर्दू के प्रारम्भिक कवि मोहम्मद अलीशाह कुतुब ने इस प्रकार की है—

'सम्पूरन हैं तुझ जोत सों सब जगत ।
नहीं खाली है नूर को कोइ शै ॥'

अर्थात् अखिल विश्व उसी की ज्योति में दीप्त हो रहा है । कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं है जो उसके प्रकाश से विहीन हो ।

इसी प्रकार हिन्दी सूफी काव्य हिन्दी साहित्य क्षेत्र में अपनी विशेष महत्ता रखता है । इसके द्वारा मौलिक कथा परम्परा एवं लोकगीत नष्ट होने से बच गए । इन प्रेमाख्यानों में व्यंजना के आधार पर वस्तु का जो विवेचन हुआ है वह अद्वितीय हैं उन्होंने जो धारा प्रवाहित की वह अनवरत किसी न किसी रूप में भारतीय साहित्य को प्रभावित करती चली आ रही है । यही कारण है कि सूफी काव्य का हिन्दी साहित्य में अद्वितीय स्थान है । सूफी कवियों ने जिस काव्य का सृजन किया वह हिन्दी साहित्य कोश का मूल अंग है । इसमें जायसी का पद्मावत काव्य तो एक अमर कृति है ही, इसके अतिरिक्त अन्य प्रेमाख्यान काव्य और मुक्तक काव्य भी सदैव हिन्दी साहित्य के अलंकार रहेंगे । ये काव्य हमें आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित करने के साथ-साथ हिन्दू-मुस्लिम एकता को शिक्षा और विश्व प्रेम की स्मृति दिलाते रहेंगे ।

आज के संघर्षशील युग को हिन्दी सूफी कवियों की देन

हिन्दी सूफी कवियों ने अपनी उदार दृष्टि परिचय से मानव जीवन के महान मूल्यों को आंकने का परिचय दिया है । सूफी कवियों ने छुद्र भावना मानसिक का-लुष्य एवं श्वान प्रवृत्ति-सी युद्ध-लोलुप लिप्सा को मिटाकर संघर्ष रहित विश्व समाज का निर्माण करने का प्रयास किया । इनकी सामाजिक व्यवस्था का आधार प्रेम रहा है । किन्तु आज के इस भौतिकवादी युग में यह प्रश्न उठ सकता है कि उनकी इस आध्यात्मिक प्रेम साधना से विश्व समाज कहां तक प्रभावित हो सकता है ? आज भी उद्दाम भोग लिप्सा लहरा रही है । वहीं पारस्परिक जातिगत भेद-भाव आज भी व्याप्त है । हिन्दू-मुस्लिम की जिस खाई को पूरा करने यानि पाटने में सूफी कवियों ने सफलता प्राप्त की थी वह आज भी हमारी एकता को कायम रखने में पूर्ण सहयोग कर रही है । यद्यपि आज के परिवेश में साम्प्रदायिक दंगे फसादों को देखकर ऐसा लगता है कि सूफी कवियों के मूल तत्वों को लोग भुला चुके हैं । वह खाई आज पुन: चौड़ी हो रही है । अपहरण, शोषण, कुत्सित अभियान एवं दूसरों को नष्ट कर स्वयं का निर्माण सतत गति से हो रहा है । परन्तु हम इस बात को नकार नहीं सकते हैं कि हिन्दी-सूफी कवियों के इन प्रेमाख्यानों से मानव जाति को सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक उत्थान मिला । इसके लिए हम यह कह सकते हैं कि राम-कृष्ण गौतम, गांधी, ईसा मुहम्मद आदि सन्त महात्मा आये और अपने

सन्देश सुना कर चले गए। आने वाले समाज में उनका मौखिक बखान तो किया, उनके आगे अपना गर्वोन्नत माथा तो झुकाया पर उनका अनुकरण करने में असफल रहे।

हिन्दी सूफी कवियों के प्रेम काव्यों का वर्ण्य-विषय साहित्यिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सभी दृष्टियों से अनुपम हैं। इन प्रेमाख्यानों को जहाँ एक ओर साहित्यिक विकास मिला है वहीं दूसरी ओर उनके काव्य में सामाजिक सांस्कृतिक एवं गार्हस्थय जीवन भी साकार हो गया। लोक भाषा में प्रणीत ये कथायें केवल प्रेम गाथायें न रहकर धर्म कथायें भी बन गई, क्योंकि ये सूफी सिद्धांत एवं साधना के नियमों से इतनी अनुप्राणित हैं कि लौकिक कथाओं में दिव्य प्रेम की झाँकी प्रस्तुत करती हैं, किन्तु ईश्वरीय प्रेम के साथ-साथ विश्व प्रेम की भागीरथी प्रवाहित करने में भी इनका बड़ा हाथ रहा है। इस साहित्य का भवन प्रेम के पुट से बड़ा मनमोहक और सर्वग्राह हो गया है। विच्छिन्न होती हुई सामाजिक व्यवस्था में समन्वय स्थापित करके शांति और हृदयगत प्रेम की स्थापना में इन कवियों का अत्यधिक योग है। इनके प्रेमाख्यानों में निरूपित प्रणयवाद मानव समाज के लिए भी वरदान रूप में है। जो मनुष्य मनुष्य से प्रेम नहीं कर सकता वह भला ईश्वर से क्या कर सकेगा ? मानव जीवन के मूल्यों को मापने की बुद्धि उसमें नहीं होगी।

प्रेम जीवन मात्र की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। पशु-पक्षी से लेकर मानव जाति तक सभी इसकी 'प्रेम की' डोर में आबद्ध हैं। हिंस्त्र-सिहनी जब अपने नवजात शिशु को स्तन-पान कराती है तब उसकी क्रूर दृष्टि से भी पुत्र वात्सल्य की स्निग्ध पयस्विनी प्रवाहित होने लगती है। सूफियों की साधना इश्क (प्रेम) की साधना है। मारिफत के भावावेग मय रूप नाम प्रेम है। सूफियों का यह प्रेम प्रच्छन्न के प्रति है जो बहुत कुछ व्यक्तिगत रहस्यवादी अनुभूति पर आधारित है। ईश्वर के प्राप्त करने के जितने साधन बताए गए हैं। उनमें प्रेम सर्वोच्च स्थान पर है। अबूतालिब का कथन है कि प्रेम से परमात्मा सम्बन्धी रहस्यों का उद्‌घाटन होता है और उसके स्वरूप का परिचय मिलता है। सूफी-साधक अल्पशिल्पी के कथानुसार प्रेम हृदय में अग्नि के समान है जो परमात्मा की इच्छा के सिवा अन्य सभी वस्तुओं को जलाकर भस्म कर देता है। इस प्रकार सूफी मत की साधना पद्धति प्रेम पर ही आश्रित है। हिन्दी के सूफी कवियों ने भी आध्यात्मिक प्रेम की उपलब्धि के लिए सांसारिक प्रेम को प्रतीक रूप में ग्रहण किया है। वे इन्दियों द्वारा ग्रहीत सौन्दर्य को उसी सौन्दर्यशाली की एक छटा का प्रतीक मानते हैं। तथा यत्र-तत्र सर्वत्र उसी प्रीतम के सौन्दर्य का दर्शन करते हैं।

सूफी सिद्धांतों के मेल में भक्ति भावना का जैसा रमणीय रूप सूफी काव्य में देखने को मिलता है अन्यत्र दुर्लभ है। भावात्मक रहस्यवाद का रमणीयतम रूप काव्य द्वारा इतनी सफलता और इतनी विस्तार तथा गम्भीरता से प्रस्तुत करने में

सूफी कवि ही सफलता पाए। इतिहास और कल्पना और भावना और बुद्धि, मुस्लिम और भारतीय संस्कृति, भारतीय और सूफी साधना का सुन्दर समन्वय उनके प्रेमाख्यानों में प्राप्त होता है। भावात्मक रहस्यवाद तथा विरह वर्णन इन दो दृष्टियों से जायसी का नाम भी हिन्दी साहित्य में बेजोड़ है। वियोगी के मन की भावना जितनी गहरी जायसी ने जानी है उतनी साधारणतया अन्य किसी में सरलता से देखने में नहीं आती। तुलसी ने जैसे लोकधर्म का आदर्श, कबीर ने अभेद ज्ञान सूर्य ने सर्वतोमुखी सौन्दर्य और प्रेम के गान दिए हैं, सूफियों ने भी इसी महत्व का प्रेम और दर्शन दिया है। तुलसी के रामचरितमानस को छोड़कर तुलसी के रामचरितमानस को ही गरिमा और महत्ता का काव्य सूफियों ने समझा क्योंकि पद्मावत का कवि भी (जायसी) इन्हीं की कोटि का था।

विनम्र तुलसी ने जैसे अपने में 'कवित्व विवेक' का न होना 'कोरे कागज' पर लिखकर स्वीकारा था किन्तु इसके साथ ही अपने 'कवित्त विवेक' के बल पर ही वह साहित्य-संसार में सर्वोच्च स्थान के अधिकारी भी बने, उसी प्रकार अपने को 'पंडितों का पिछलग्गा' कहने वाले जायसी ने ही हिन्दी के सम्पूर्ण भावांग में अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर दिखाया है।

हिन्दू और मुसलमानों की जिस एकता को स्थापित करने में कबीर जैसे सन्त कवि भी असफल रहे थे, मुस्लिम शासक तलवार के बल पर भी जिस कार्य को करने में सफल न हो सके थे, सूफियों ने उसे अपने काव्यों के माध्यम से कर दिखाया। उन्होंने प्रेमाख्यानों को माध्यम बनाकर प्रतीकों की ओर से अपने मत का प्रचार करके मुस्लिम साम्राज्य, धर्म एवं संस्कृति की ओर भारतीय जनता को आकृष्ट कर लिया। वस्तुतः सन्तों की अटपटी बानी से भी हिन्दू और मुसलमान इन दोनों के दिल साफ न हुए थे। मनुष्य-मनुष्य के बीच जो रागात्मक सम्बन्ध थे वह अव्यक्त रहा। अपने नित्य के व्यवहार में जिस हृदय साम्य का अनुभव मनुष्य कभी-कभी किया करता है उसकी अभिव्यंजना उससे न हुई। जिस प्रकार दूसरे के हृदय में प्रेम तरंगे उठती हैं उसी प्रकार हमारे हृदय में, भी, प्रिय का वियोग जैसे दूसरों को व्याकुल करता है वैसे ही हमें भी, माता का जो हृदय दूसरों के यहां है वह हमारे यहां भी, जिन बातों से दूसरे को सुख-दुःख होता है उन्हीं बातों से हमें भी इस तथ्य का प्रत्यक्षीकरण सूफियों ने अपने काव्य ग्रन्थों में किया है।[5] अपनी प्रेमकथाओं द्वारा इन्होंने प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए उन सामान्य जीवन दशाओं को सामने रखा जिनका मनुष्य मात्र के हृदय पर एक-सा प्रभाव दिखाई पड़ता है।

---

5. हिन्दी सूफी काव्य में प्रतीक योजना डा० सरोजनी पाण्डेय।

वर्तमान परिवेश में यदि हम उनके संघर्षों को देखें तो उस बिखरे समाज में जब किसी ऐक्य की बात दुर्लभ लग रही थी तब सूफियों ने हिन्दू और मुसलमानों में सामंजस्य कराने का प्रयत्न किया। जबकि उस समय तो यह वीणा उठाना बड़ी दुरूह बात लगती थी। उन्होंने न तो सीधा प्रहार करके अपनी बात को कहा और न कोई कार्य बलपूर्वक करवाने की कोशिश की। उन्होंने अपनी बात को प्रतीकों के माध्यम से कहकर दोनों के विचारों, संस्कृति, रीति-रिवाजों को समन्वित रूप में प्रस्तुत किया जिससे जनता में उसका असर हुआ।

इस शाश्वत सर्वयुगीन हिन्दी सूफी काव्यों की महत्ता निर्विवाद है, शोषण, उत्पीड़न और भौतिकता के गर्त में विलीन संस्कृति के ध्वंसावशेषों पर जब प्रेमाभिसिंचित नवयुग की संस्कृति का निर्माण होगा तब अध्यात्म से ओत-प्रोत विश्व बन्धुत्व की भावना से प्रेम के एक सूत्र में बंधे समाज की रचना प्रक्रिया में इस सूफी काव्य की देन और भी अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध होगी।

———
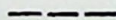
सहायक ग्रन्थ सूची

1. अशोक के फूल—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी — द्वितीय संस्करण
2. अलवरूनी इण्डियन—अनु० सचाऊ — सन् 1910
3. आलवार भक्तों का तमिल प्रबन्धम् और हिन्दी कृष्ण काव्य—डा० मलिक मोहम्मद जायसी — प्रथम संस्करण
4. इन्द्रावती—सम्पादक डा० श्यामसुन्दर दास — सन् 1906
5. इन ऐन ईस्टर्न रोज मार्डेन—हिन्दी अनु०नमर्देश्वर चतुर्वेदी
6. उत्तर भारत की संत परम्परा—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी
7. कबीर ग्रन्थावली—डा० श्यामसुन्दरदास — सन् 1928
8. कबीर ग्रन्थावली—सम्पा० भगवतस्वरूप मिश्र
9. कबीर का रहस्यवाद—डा० रामकुमार वर्मा — सन् 1966
10. कबीर—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी — सन् 1960
11. कल्चरल हेरीटेज आफ इण्डिया—रामकृष्ण सेन्टेनरी पब्लिसर्स — प्रथम संस्करण
12. काव्यशास्त्र—डा० भगीरथ मिश्र
13. कर्मयोग—विवेकानन्द, अनु० विद्याभाष्कर शुक्ल — सन् 1947
14. कश्मीरी और हिन्दी सूफी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन—डा० जियालाल हाण्डू — सन् 1973
15. गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय साधना, व्यवहार—डा० राजेन्द्र सिंह — संवत् 2026 वि०
16. गोरखनाथ और उनका युग—डा० रागेय राघव — प्रथम संस्करण
17. चन्दायन—सम्पा० डा० माता प्रसाद गुप्त — सन् 1976
18. चित्रावली—आलोचक जगमोहन वर्मा — सन् 1912
19. चित्ररेखा—डा० शिव सहाय पाण्डेय — सन् 1959

20. जायसी : एक विवेचन—देशराज सिंह भाटी
21. जायसी ग्रन्थावली—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल संवत् 2003 वि०
22. जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य —डा० सरला शुक्ला संवत् 2013
23. जायसी और उनका साहित्य—प्रो० यज्ञदत्त शर्मा
24. जायसी का पद्मावत काव्य और दर्शन—डा० गोविन्द त्रिगुणायत सन् 1963
25. जायसी का काव्यशिल्प—डा० दर्शनलाल सेठी प्रथम संस्करण
26. जायसी का काव्य—डा० सरोजनी पाण्डेय
27. जायसी—रामपूजन तिवारी सन् 1963
28. तसव्वुफ और सूफी मत—आचार्य चन्द्रवली पाण्डेय सन् 1945
29. तुलसीकृत दोहावली—गीता प्रेस गोरखपुर
30. दादूबानी भाग-1 (ज्ञान सागर) सन् 1963
31. दाददयाल ग्रन्थावली—पं० परशुराम चतुर्वेदी संवत् 2013 वि०,
32. निर्गुण काव्य पर सूफी प्रभाव—डा० रामपति राय शर्मा सन् 1977
33. नारदीय भक्तसूत्र भाग-1
34. प्राकृत साहित्य का इतिहास—उपदेश माला प्रकरण
35. पद्मावत—सम्पा० वासुदेवशरण अग्रवाल संवत् 2018 वि०
36. पद्मावत का काव्य सौन्दर्य—डा० शिवसहाय पाठक
37. प्राचीन भारत के कला विनोद—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी प्रथम संस्करण
38. पुहपावती—दुखहरन दास
39. फारसी साहित्य की रूपरेखा—अली असगर हिकमत
40. भारतीय दर्शन—प्रो० बलदेव उपाध्याय द्वितीय संस्करण
41. भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता—प्रसन्न कुमार आचार्य संवत् 2014
42. भारतीय मध्य युग का इतिहास—डा० ईश्वरीय प्रसाद
43. भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव—डा० असद अली सन् 1979
44. भारत का वृहद इतिहास—श्रीनेत्र पाण्डेय सन् 1953
45. भारतीय संस्कृति—सानेगुरुजी, हिन्दी अनु० बाबूराय जोशी
46. भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी—डा० सुनीत कुमार चटर्जी सन् 1954
47. भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास—डा० सत्यकेतु विद्या अलंकार द्वितीय संस्करण

48. मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति —डा० मदन गोपाल गुप्त — सन् 1968
49. मलिक मोहम्मद जायसी —सैयद कल्बे मुस्तफा
50. मलिक मोहम्मद जायसी और उनका काव्य—डा० शिव सहाय पाठक — सन् 1964
51. मध्यकालीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति—डा० मदन गोपाल गुप्त
52. मध्यकालीन भारतीय संस्कृति—श्री आर्शीवादी लाल — सन् 1967
53. मृगावती—सम्पा० परमेश्वरी लाल गुप्त — सन् 1967
54. मिश्र बन्धु-विनोद : प्रथम भाग—मिश्र बन्धु — तृतीय संस्करण
55. मलूकदास जी की बानी—वेलबेडियर प्रेस — सन् 1964
56. मधुमालती—सम्पा० डा० माता प्रसाद गुप्ता — प्रथम संस्करण
57. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान—डा० श्याम मनोहर पाण्डेय — प्रथम संस्करण
58. मध्यकालीन धर्म साधना—हजारी प्रसाद द्विवेदी — सन् 1962
59. मौलाना रूम—जगदीश चन्द्र वाचास्पति, कलकत्ता
60. मंझन मधुमालती—शिव गोपाल मिश्र — सन् 1957
61. मधुमालती—सम्पा० माता प्रसाद गुप्त — सन् 1961
62. मध्यकालीन सन्त साहित्य—डा० राम खिलावन पाण्डेय — सन् 1965
63. युसुफ-जुलेखा आर०टी०एच० ग्रिफथ, लन्दन
64. रामचरितमानस (टीका) पोद्दार हनुमान प्रसाद, गीता प्रेस — सवत् 2108 वि०
65. रैदास की बानी—प्रका० वेलबेडियर प्रेस
66. राजस्थान—टांठ, जिल्द, 1 — सन् 1987
67. वैदिक संस्कृति और सभ्यता—डा० मुंशीराम शर्मा सोम — प्रथम संस्करण
68. समाज वाद—डा० सम्पूर्णानन्द — प्रथम संस्करण
69. संस्कृति के चार अध्याय—श्री रामधारी सिंह दिनकर — द्वितीय संस्करण
70. सूफी सन्त साहित्य का उद्‌भव और विकास, प्रो० जय बहादुर लाल — सन् 1977
71. सूफी साधना और साहित्य—श्री रामपूजन तिवारी — प्रथम संस्करण
72. सूफी मत और हिन्दी साहित्य—डा० विमल कुमर जैन — सन् 1955
73. सांस्कृतिक भारत—भगवतशरण उपाध्याय — प्रथम संस्करण
74. समाज शास्त्र के मूल तत्व—डा० सत्यव्रत सिद्धांता अलंकार — प्रथम संस्करण

75. सुन्दर विलास—रघुनाथदास पुरुषोत्तम दास अग्रवाल सन् 1950
76. सूफी महाकवि जायसी और रहस्यवाद—डा० नारायण बाजपेई
77. सूफी काव्य सग्रह—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी तृतीय संस्करण
78. सूरसागर—आचार्य नन्ददुलारे बाजपेई प्रथम संस्करण
79. सन्त काव्य संग्रह—परशुराम चतुर्वेदी संवत् 2009 वि०
80. सूफी काव्य विमर्श—डा० श्याम मनोहर पाण्डेय सन् 1968
81. सूफी कवि जायसी का प्रेम निरूपण—निजामुद्दीन अन्सारी
82. सूफी कविता की पहचान—डा० एस० कुलाटी सन् 1979
83. शंकराचार्य और उनके मायावाद तथा अन्य सिद्धांतों का आलोचनात्मक अध्ययन—डा० राममूर्ति शर्मा प्रथम संस्करण
84. हिन्दुओं का जीवन दर्शन--अनु० कृष्ण किंकर सिंह द्वितीय संस्करण
85. हिन्दी ऋग्वेद भाष्य भूमिका—व्या० श्री जगन्नाथ पाण्डेय
86. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल संवत् 2019 वि०
87. हिन्दी प्रेमाख्यान काव्य—डा० कमल कुलश्रेष्ठ सन् 1953
88. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास —डा० रामकुमार वर्मा, सन् 1938
89. हिन्दी साहित्य का इतिहास—डा० जगदीश प्रसाद, श्री हरेन्द्र प्रकाश सिन्हा प्रथम संस्करण
90. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय—डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल संवत् 2007 वि०
91. हिन्दी साहित्य की युग और प्रवृत्तियां —डा० शिव कुमार शर्मा
92. हिन्दू धर्म : जीवन में सनातन की खोज—अनु० विद्या निवास मिश्र द्वितीय संस्करण
93. हंस जवाहर—प्रका० तेजकुमार, प्रेस बुक लखनऊ
94. हिस्ट्री आफ धर्म शास्त्र—पी०वी०कांडे, भाग-4
95. हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका—रामपूजन तिवारी सन् 1960
96. हिन्दी सूफी काव्य में प्रतीक योजना—डा० सरोजनी पाण्डेय सन् 1947
97. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास—सम्पा० डा० चन्द्रवली पाण्डेय प्रथम संस्करण
98. हिन्दी साहित्य का इतिहास—सम्पा० डा० नगेन्द्र ना०प्र० सभा सन् 1973

99. हिन्दी सूफी काव्य में पौराणिक आख्यान सन् 1976
—डा० उमापति राय चन्देल
100. हिन्दी साहित्य की भूमिका—डा०हजारी प्रसाद द्विवेदी प्रथम संस्करण
101. ज्ञानद्वीप (शेखनवी)—सम्पा० श्री उदय शंकर शास्त्री सन् 1961

संस्कृति ग्रंथ

1. ऐतरेय ब्राह्मण
2. ऋग्वेद
3. अणुभाष्य
4. कठोपनिषद
5. छन्दोक्योपनिषद
6. तेतरीययोनिषद
7. दश श्लोकी
8. पुरुष सूक्तम् सम्पादक-विद्याभूषण
9. पूर्ण प्रज्ञ दर्शन
10. पदम पुराण
11. प्रश्नोपनिषद
12. महाभारत
13. मुण्डकोपनिषद
14. मनोस्मृति
15. भागवत
16. रामानुज भाष्य गीता
17. वेदान्त-कौस्तुम्भ-निवासाचार्य
18. वृहदारण्य कोपनिषद
19. सर्वदर्शन संग्रह
20. शतप्रथ ब्राह्मण
21. श्रीमद्भगवत्गीता
22. श्रीभाष्य-रामानुज

उर्दू ग्रंथ :

1. ईरान के सूफी कवि—उमर खैयाम
2. तर्जुमा कुरान शरीफ—श्री अहमद वशीर
3. दि होली कुरान—मौलवी मुहम्मद अली सन् 1920
4. आईनाए मारफत—ले० शैयद एजाज हुसैन सन् 1932
5. कुरान-सेल

अंग्रेजी ग्रंथ :

(1) An Advanced History of India—Dr. R.C. Mazumdar and Dr. H.C. Choudhary.
(2) A History of Indian Literature.
(3) A Survey of Indian Histoy—K.M. Pannikar
(4) Culture and Anarchry—Methew Arnold Ed. 1950.
(5) Culture and Civilization—Shree Prakash-Vol. I

(6) Discovery of India—Pt. Jawahar Lal Nehru London Ed.
(7) Influence of Isom or India—Nitz Ed.I Dr. Tarachand 1962.
(8) Encyclopedia of Social Sciences.
(9) Love the Low of life—Tokyo Kagaw.
(10) Mistizamin English Lit—Mis Sparzan.
(11) Orissizan of Histories—VII Epedey.
(12) Psychology of Sex by Horclock Ellis-Vd. I
(13) Possion and Society—Devisde Rouglmont.
(14) Studies in Islamic Culture in the India.
(15) Equipment—Ajay Ahmed.
(16) Seven faces of Love—Andore Mograise.
(17) Some problems of Indian Literature—Winter.
(18) Sarte—Encyclopedia of Islam.
(19) The Spirit of Islamic Culture—Dr. V.L. Atry 1944.
(20) The Spirit of Indian Civilization—Dr. Dhirendra Nath Ray Ed. 1938.
(21) The Osisen of Family, Private Property and the State.
(22) Tamil Staties.

पत्र-पत्रिकाएं तथा शब्द-कोश

(1) शब्दावली
(2) हिन्दी साहित्यकोश—डा० धीरेन्द्र वर्मा
(3) हिन्दी उर्दू शब्द कोश—मुस्तफा खां उ०प्र० 1959
(4) नागरी प्रचारिणी सभा खोज रिपोर्ट 1947
(5) अखण्ड ज्योति-भारतीय संस्कृति विशेषांक जून 1956.

—o—

लेखिका परिचय

डा० (श्रीमती) माया मिश्र का जन्म ५ जुलाई १९६२ में मेडिकल कालेज परिसर कानपुर में हुआ तथा आपने हिन्दी साहित्य में पी-एच० डी० तथा बी० एड०, की उपाधि कानपुर विश्वविद्यालय से साहित्यिक प्राप्त की। आपकी गतिविधियों से सम्बन्धित आकाशवाणी केन्द्र रोहतक से अनेक वार्तायें प्रसारित हुयी है।

सम्प्रति-—प्रवक्ता-विश्वास सीनियर सेकेण्डरी स्कूल (१० + २) हिसार (हरियाणा) सम्बन्ध सी० बी० एस०सी० नयी दिल्ली।